अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध

लेखक

आर० एन० चौधरी, एम० ए०

इतिहास विभाग,

महाराजा कालेज, जयपुर

प्रकाशक

फ्रैंक ब्रादर्स एण्ड कम्पनी

देहली

प्रकाशक:
फ्रैंक ब्रादर्स एन्ड कम्पनी
चान्दनी चौक, देहली ६

१९५३

मूल्य ४)

प्रस्तावना

इस पुस्तक में मौलिकता अथवा विद्वता का प्रदर्शन नहीं बल्कि सीधे सादे शब्दों में राजनीति तथा इतिहास के विद्यार्थियों के हितार्थ १९१९ से अब तक की महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं तथा परिवर्तनों का संक्षिप्त इतिहास है। मैंने इस पुस्तक की रचना में राजनीति से सम्बन्धित तमाम उच्च स्तर की पुस्तकों से सहायता ली है तथा समाचार पत्रों और पत्रिकाओं से महत्वपूर्ण अंश उद्धृत किये हैं।

मैंने अनावश्यक बातों को छोड़कर केवल उन्हीं महत्वपूर्ण घटनाओं पर प्रकाश डाला है जो पाठकों के लिये बोझ न बनकर ज्ञानवर्धक सिद्ध हों।

इस पुस्तक की रचना करते समय मैंने नेपोलियन के इन शब्दों की ओर विशेष ध्यान दिया है जिसमें कहा गया है कि "समुचित तैयारी में लड़ाई की आधी सफलता नीहित है।"

यद्यपि यह पुस्तक राजनैतिक उथल-पुथल का सीधा बयान है किन्तु जहां तक हो सका है इसे दिलचस्प बनाने की कोशिश की गई है।

मेरी यह मेहनत कहां तक सफल हुई है इसका निर्णय पाठक स्वयं करेंगे।

अन्त में मै निम्नलिखित महानुभावों का हृदय से कृतज्ञ हूं जिन्होंने इस पुस्तक को तैयार करने में मेरी सहायता की हैं। महाराजा कॉलिज

जयपुर के इतिहास विभाग के अध्यक्ष प्रो० जे. एम. घोष एम. ए., जिन्होंने मुझे इस पुस्तक की रचना के लिये प्रोत्साहित किया; महाराजा कॉलिज जयपुर के राजनीति विभाग के प्रो० एस. एल. आदित्य एम. ए., तथा ए. बी. माथुर एम. ए., जिन्होंने हस्तलिपि के पढ़ने और टिप्पणी करने में तथा ताजी सूचनाएं संग्रह करने में मेरी सहायता की।

१५ जुलाई, १९५३
महाराजा कॉलिज जयपुर

आर. एन. चौधरी

विषय सूची

व्याख्यान — पृष्ठ

१. शान्ति समझौता (वर्सेल की सन्धि) १

विषय प्रवेश---विराम सन्धि---पेरिस का शान्ति सम्मेलन---शान्ति सम्मेलन का संगठन---'मुख्य चार' का परिचय---चौदह शर्तें---वर्सेल की सन्धि पर हस्ताक्षर---शान्ति की संधियां---वर्सेल की सन्धि---सेंट जर्मेन की संधि---निऊली की संधि---ट्रायनन की संधि---सेवर्स की संधि---लासेन की संधि---वाशिंगटन सम्मेलन---समीक्षा---परिणाम।

२. राष्ट्रसंघ (लीग आफ नेशन्स) २५

विषय प्रवेश---राष्ट्रसंघ का जन्म---प्रतिश्रव (कवनेन्ट)---साधारण परिषद---सचिवालय---अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय---अन्तर्राष्ट्रीय श्रमसंघ---अमरीका का असहयोग---साधारण मामलों में राष्ट्रसंघ की मध्यस्थता---आलैंड द्वीप विवाद---विलना विवाद---मेमेल मामला---ऊपरी साइलेशिया की समस्या---अलबानिया की समस्या---मोसुल विवाद---कोर्फू घटना---यूनान बल्गेरिया मामला---दक्षिण-अमरीकी विवाद---आर्थिक सहायता---सार का प्रशासन---डांजिग पर शासन---आदिष्ट प्रणाली---अल्प-संख्यकों की रक्षा---बड़े विवादों में मध्यस्थता करने में राष्ट्रसंघ की असफलता---मंचूरिया की समस्या---इथोपिया पर इटली का आक्रमण---स्पेन का

गृह युद्ध--चीन जापान युद्ध--अन्त्येष्टि क्रिया--राष्ट्र संघ के पतन के कारण--राष्ट्रसंघ की सीमायें--प्रतिश्रव के प्रति अविश्वास--सार्वलौकिक हित की भावना का अभाव--एकमत का सिद्धान्त--राष्ट्रीय शस्त्रीकरण को निरुत्साहित करने में असफलता--प्रतिरोध संस्था का अभाव--तानाशाही राज्यों की आक्रमणकारी मनोवृत्ति--आँग्ल-फ्रांसीसी संतुष्टिकरण नीति--राष्ट्रसंघ की असफलताएँ।

३. **क्षतिपूर्ति तथा आर्थिक संकट** ७३

विषय प्रवेश--सम्पूर्ण राशि निर्धारित करने की समस्या--रूर पर अधिकार--डावस योजना (१९२८)--यंग योजना (१९२९)--हूवर मुहलत--लौजान सम्मेलन--मित्रराष्ट्रीय युद्ध-ऋण--विश्व आर्थिक सम्मेलन--नवीन आर्थिक नीति--सिंहावलोकन।

४. **सुरक्षा की खोज में** ९०

विषय प्रवेश--सुरक्षा मैत्री की व्यवस्था (१९२०-२७)--अस्थाई संयुक्त कमीशन--पारस्परिक सहायता संधि का मसविदा--जनेवा प्रोटोकोल (समझौता)--१९२५ का लोकार्नो समझौता--ब्रियां-कैलोग समझौता (पेरिस की संधि)--निशस्त्रीकरण की समस्या--वाशिंगटन नौ सम्मेलन--जनेवा सम्मेलन--लंदन नौ सैनिक संधि--सेनाओं के लिए राष्ट्रसंघ का कमीशन--आम निशस्त्रीकरण सम्मेलन--निष्कर्ष।

५. **द्वितीय विश्व संग्राम** १११

विषय प्रवेश--जर्मनी का उत्थान--नाजी क्रांति--नाजीवाद के उत्थान के कारण--हिटलर की विदेश नीति--वर्सेल संधि का भंग होना--शक्ति सन्तुलन का पुनरुत्थान--फ्रांको सोवियत समझौता--आंग्ल-जर्मनी नौ (नौवेड़ा)

समझौता—राइन भूमि (राइन लेंड) का पुनः सैनीकरण—बर्लिन-रोम मैत्री—नेविल चेम्बरलेन की सन्तुष्टिकरण नीति—आस्ट्रिया का अपहरण—चेकोस्लोवाकिया में संकट—म्युनिक समझौता—चेकोस्लोवाकिया का विनाश—ब्रिटिश नीति में परिवर्तन—रूस-जर्मन संधि (२३ अगस्त १९३९)—पोलैंड—युद्ध काल की घटनायें—स्थिति का पलटना—शान्ति संधियां—जर्मनी (१९४५-५३)—जापानी शान्ति संधि।

६. संयुक्त राष्ट्र १४

विषय प्रवेश—जन्म तथा विकास—प्रशान्त आदेश पत्र—संयुक्त राष्ट्रसंघ और मास्को घोषणा—आर्थिक और सामाजिक समस्याओं सम्बन्धी सम्मेलन—डम्बार्टन ओक और याल्टा—सान फ्रांसिसको सम्मेलन—संयुक्त राष्ट्रसंघ चार्टर—संयुक्त राष्ट्रसंघ के अंग—महासभा—सुरक्षा परिषद—राजनैतिक तथा सुरक्षा प्रश्न—अणु नियंत्रण—अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय—आर्थिक तथा सामाजिक परिषद—संरक्षक परिषद्—सचिवालय—मूल मानव अधिकार—प्रन्यासित प्रदेश—संयुक्त राष्ट्रसंघ तथा राष्ट्रसंघ—संयक्त राष्ट्रसंघ की असफलता के कारण।

७. भारतीय विदेश नीति २१

भूमिका—मूल सिद्धांत—निष्पक्ष रहने का कारण—भारत और संयुक्त राष्ट्रसंघ—ब्रिटिश राष्ट्रमंडल—भारत व अमेरिका—श्रीलंका के भारतीय—समुद्र पार के अन्य भारतीय—दक्षिणी अफ्रीका की रंग-भेद नीति—पाकिस्तान से सम्बन्ध—भारत में विदेशी बस्तियां—कोरियाई गत्यावरोध—नवीन एशियाई नीति—भारत और मध्यपूर्वी संगठन—मंतव्य।

व्याख्यान १

शाँति समझौता (वर्सैल की सन्धि)

ि . ्विश:—प्रसा के प्रिंस विसमार्क ने एक वार कहा था : "मेरी मृत्यु के ् ्र्ष वाद मैं अपने कफन से वाहर आना चाहता हूं और यह देखना चाहता हूं कि दुनिया में जर्मनी की प्रतिष्ठा कायम है या नहीं ।" प्रिंस विसमार्क सन् १८९८ ई० में चल वसे। अगर वह सन् १९१८ ई० में पुनरुज्जिवित हो गये होते तो अपने उत्तराधिकारियों की विचारशून्यता और अयोग्यता को देखकर अत्यन्त ही क्रुद्ध होते। सच तो यह है कि मृत्यु से वहुत पूर्व ही उन्हें इस स्थिति का ज्ञान हो गया था। सम्राट विलियम द्वितीय के वारे में उन्होंने कहा था—"वह युवक किसी दिन अपने राज्य को कुप्रवन्ध के कारण विनष्ट कर देगा।" यह भविष्यवाणी सन् १९१८ ई० में सच्ची निकली। प्रथम विश्व महायुद्ध शुरू होने से कुछ ही महीने पूर्व "वि ् साम्राज्य या विनाश" नामक एक कुप्रसिद्ध पुस्तक प्रकाशित हुई थी ् , जर्मनों ने इसका विचित्र उत्साह के साथ स्वागत किया। इसका ले. . ्र्न हार्डी सफल हुआ। ३ नवम्वर को जर्मन नाविकों ने विद्रोह कर दिया और कई जर्मन शहरों पर लाल झंडा फहराया गया। ९ नवम्वर को वर्लिन तक क्रांति की लहर फैल गई और प्रजातंत्र निर्माण किये जाने की घोषणा की गई। उसी दिन सम्राट ने अपना पदत्याग दिया और राजकुमार के साथ वह हालैंड चले गये।

विराम सन्धि

सन् १९१८ ई० को जर्मनी ने विराम संधि पर हस्ताक्षर किया और ११ बजे दिन में 'युद्ध वन्द' की घोषणा की गई। जर्मनी ने मित्रराष्ट्रों को निम्नलिखित शर्तो पर आत्मसमर्पण किया : (१) हस्ताक्षर के ६ घंटे बाद सैनिक कार्रवाई बंद की जाय (२) आक्रांत देशों–वेल्जियम, फ्रांस, अलसेस लारेन, लक्सेमवर्ग से १४ दिनों के भीतर सारी फौजें हटा ली जांय (३) ख़ास-ख़ास युद्ध सामग्री सौंप दी जाय जैसे १७०० विमान, ५००० इंजिनें ५००० मोटरें और सभी गोताखोर (४) वड़े समुद्री वेड़े को समुद्र में डुबा दिया जाय (५) राइन नदी के वांये तट को मित्रराष्ट्रीय फौज के सुपुर्द किया जाय तथा मित्रराष्ट्रीय फौज को वहां रखने के लिये ख़र्च भी दिया जाय (६) युद्ध-वंदियों की स्वदेश वापसी (७) विराम संधि ३६ दिनों तक रहेगी। इसकी अवधि १३ दिसम्बर १९१८ और सन् १९१९ की १६ जनवरी और १६ फरवरी को पुनः बढ़ाई जाय और (८) अंतिम संधि का आधार अमरीका के राष्ट्रपति श्री वुडरो विलसन की १४ शर्तें और उनके वाद के प्रवचन (विशेषकर २७ सितम्वर १९१८ के भाषण) होने चाहिएं।

पेरिस का शांति सम्मेलन

विराम संधि युद्ध वन्द करने मात्र को कहते हैं। शांति के लिये यह पहला सोपान है। स्थायी शांति के लिये काफी समय तक गंभीर विचार करना पड़ता है। युद्ध वन्द होने और शांति सम्मेलन की प्रथम बैठक होने तक दो महीने वीत गये। विलम्ब का कारण इंग्लैंड में १४ दिसम्वर १९१८ में हुआ नव निर्वाचन था। इसके अतिरिक्त एक कारण यह भी हुआ कि राष्ट्रपति विलसन दिसम्बर से पूर्व यूरोप नहीं पहुंच सके।

पेरिस ने अपने शांति सम्मेलन का केन्द्र होने का नाम सार्थक किया। सन् १९१९ ई० के प्रारम्भ से ही राष्ट्रीय प्रतिनिधिमण्डल वहां आने लगे। कई मण्डलों की संख्या सैकड़ों की थी जिनमें सुशिक्षित कूटनीतिज्ञ, सैनिक,

नभसैनिक, नागरिक प्रशासन कर्त्ता, कानून विशेषज्ञ, वित्त और आर्थिक विशेषज्ञ, उद्योगों के नायक, मजदूरों के नेता, राज्यमंत्री, संसदीय सदस्य और सभी प्रकार के पत्रकार और प्रचारक थे। ३२ मित्रराष्ट्रों के ७० अधिकारी प्रतिनिधियों का समूह, जिम्मेदार विश्व राजनीतिज्ञों का विशिष्ट जमाव था जिनमें साधारण राजनीतिज्ञों के अलावा अमरीका के स्वयं राष्ट्रपति और ११ प्रधान मंत्री और १२ विदेश मंत्री भी थे।

इस विशिष्ट जनसमूह में ऐसे लोगों के नाम उल्लेखनीय हैं जैसे फ्रांस के क्लिमेंसो, पिचोन, टारडियू, और कैम्बन; अमरीका के लांसिंग तथा कर्नल हाऊस; ब्रिटेन के लायड जार्ज, बालफर और बोनरलो; इटली के ओरलैंडो और सोनिनो; बेल्जियम का हुईमन्स; पोलैंड के टिमोस्की; युगोस्लाविया के पैसिट्च; चेकोस्लोवाकिया के बेनेस (जो वहां के प्रथम राष्ट्रपति हुए); यूनान के वेनिजेलोस; दक्षिणी अफ्रीका के स्मट्स और बोथा। पराजित राष्ट्रों के प्रतिनिधियों को आमंत्रित नहीं किया गया क्योंकि उनका काम था तैयार किये गये संधि-पत्रों पर हस्ताक्षर मात्र करना। यह शांति विजयी राष्ट्रों के दवाव से हुई थी, विजित राष्ट्रों के साथ समझौते से नहीं।

शांति सम्मेलन का संगठन

सन् १९१९ ई० की १८ जनवरी को फ्रांस के विदेश सचिवालय में फ्रांस के राष्ट्रपति श्री प्वाइनकर द्वारा शांति सम्मेलन के प्रारम्भिक अधिवेशन का उद्घाटन किया गया। फ्रांस के प्रधान मंत्री श्री क्लिमेंसो सम्मेलन के अध्यक्ष चुने गये और सम्मेलन की कार्यवाही को व्यावहारिक रूप से चलाने के लिये १० व्यक्तियों की एक सर्वोच्च परिषद् बनाई गई। ये दस व्यक्ति ५ प्रधान मित्र-राष्ट्रों—अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस, इटली और जापान—के प्रधान प्रतिनिधि थे। इन '१० प्रधान प्रतिनिधियों' ने यह अधिकार प्राप्त किया कि साधारण अधिवेशन में रखे जाने वाले विषयों का चुनाव वही करेंगे। लेकिन फिर भी १० व्यक्तियों की परिषद् शीघ्रता से कार्यवाही चलाने के लिये तथा उसे गुप्त रखने के लिये बहुत बड़ी साबित हुई और सन् १९१९ ई० के मार्च महीने में वह काम चार व्यक्तियों की

परिषद् को दिया गया। ये चार व्यक्ति अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस और इटली के मुख्य प्रतिनिधि थे। इनके नाम हैं—विलसन, लायड जार्ज, क्लिमेंसो और ओरलैडो।

"मुख्य चार" का परिचय

विलसन—आदर्शवादी राष्ट्रपति विलसन अमरीकी संसद के सन् १९१८ ई० के निर्वाचन मे अपने दल के पराजय के वावजूद भी पेरिस सम्मेलन के सर्वोच्च पुजारी थे। इसमे सन्देह नहीं कि उन्होंने सम्मेलन के प्रारम्भ में वहुत ऊंची प्रतिष्ठा प्राप्त की और इसमे भी सन्देह नही कि उनमे नई दुनिया वसाने की लगन थी। उनके परम मित्र कर्नल हाउस ने लिखा है कि "वह अपने प्रभाव और अपनी सत्ता के उत्कर्ष काल मे सबसे प्रभावशाली व्यक्ति थे क्योंकि वह दुनिया के नैतिक और आध्यात्मिक शक्तियों के प्रवक्ता थे।" श्री स्टेन्नार्ड वेकर का कहना है कि "जिस किसी ने भी राष्ट्रपति विलसन को काम करते देखा उसकी कभी हिम्मत नहीं हुई कि वह विलसन के समक्ष अथवा उनकी पीठ पीछे भी उनकी या उनकी सहनशीलता, शक्ति अथवा साहस की निन्दा या अप्रशंसा करने का साहस करे।" स्वयं श्री लांसिग का कहना है कि "प्रतिनिधियो मे श्री विलसन के प्रति यह साधारण भावना थी कि वह अंतर्राष्ट्रीय नैतिकता और न्याय की प्रतिमूर्ति हैं।" डाक्टरों मे उनकी योग्यता और उनकी कार्यप्रणाली के वारे मे मतभेद है। श्री केनीस का कहना है कि "श्री विलसन वीर या धर्मावतार (पथ प्रदर्शक) नही थे। दार्शनिक भी नही थे.....। उनमे प्राक्-चितन नही था और जव कार्य करने का अवसर आता था तो उनके खयालात असम्बद्ध और अपूर्ण होते थे। उनके पास कोई पूर्व-रचित योजना न थी। न कार्यक्रम था और न ऐसे वुनियादी ख्यालात जो उनके आदेशों के आवरण होते।" श्री विलसन की प्रणाली की गलतियों का कारण उनका चरित्र और व्यक्तित्व था। यूरोपीय समस्याओं और यूरोपीय राष्ट्रीय सम्वन्धो

की उनकी जानकारी सीमित थी। सचमुच में पेरिस शांति सम्मेलन के अन्य प्रतिनिधियों की बराबरी करने लायक श्री विलसन नहीं थे।

लायड जार्ज—डेविड लायड जार्ज ब्रिटेन के मुख्य प्रतिनिधि थे। वह उदारदल के प्रधान थे और १९१६ से प्रधान मंत्री थे। ब्रिटिश जनता से विश्वास प्राप्त करने के लिए उन्होंने १९१८ के दिसम्बर में आम निर्वाचन किया। लायड जार्ज के दल को जबर्दस्त बहुमत प्राप्त हुआ। और उनके संयुक्त दल को २५० सीटें प्राप्त हुई।

पेरिस सम्मेलन में लायड जार्ज का व्यक्तित्व बड़ा ही प्रभावशाली था। वह दूसरों की बातें सदैव सुनने के लिए तैयार रहते थे। वह तेज मस्तिष्क वाले, दूरदर्शी, सजग और आकर्षक थे। डा० गुवा ने ठीक ही कहा है कि "अभी तक कोई भी कूटनीतिक लायड जार्ज के समान थोड़े से ज्ञान से एक बर्बाद दुनिया के पुनर्निर्माण करने के लिए समर्थ नहीं हुआ है।" केनिंज का कहना है कि "लायट जार्ज को ६-७ कुछ ऐसे ज्ञान प्राप्त थे जो एक साधारण व्यक्ति में नहीं पाये जाते जिसमें चरित्र निरीक्षण का ज्ञान; स्वभाव जानने तथा मन की गहराइयों तक पहुंचने के ज्ञान प्रमुख थे।" श्री लांसिग ने भी लायड जार्ज के बारे में कहा है कि "लायड जार्ज चार बड़े प्रतिनिधियों में से सबसे कुशल और बुद्धिमान थे; लेकिन उनका मन स्थिर नही रहता था। बहस मे वह बहुत तीक्ष्ण विरोधी थे। लेकिन ऐसे विशिष्ट व्यक्ति में कुटनीतिक चालें कुछ भी नहीं थीं।" पेरिस सम्मेलन में लायड जार्ज की सफलता का कारण यह था कि उन्हे जो अच्छी सलाह दी जाती थी वह उसे मान लेते थे।

क्लिमेन्सो—जार्जेस क्लिमेंसो की प्रतिष्ठा लायड जार्ज से किसी भी प्रकार कम नही थी। उन्हे 'शेर' का नाम दिया गया था। ६० वर्ष पूर्व अमरीकी गृह-युद्ध के समय वह अमरीका में पत्र के संवाददाता थे। उनके विभिन्न प्रकार के अनुभव और अत्यधिक लोकप्रियता के कारण ही १९१७ से १९२० तक उन्हें फ्रांस का प्रधान मंत्री और युद्ध मंत्री का पद मिला।

शायद क्लिमेंसो पेरिस सम्मेलन में सबसे अच्छे कूटनीतिक थे।

विश्व राजनीति और मानवस्वभाव का ज्ञान क्लिमेंसो में अपने साथियों की अपेक्षा बहुत अधिक था। वह अपने साथियों की हंसी उड़ाया करते थे। एक अवसर पर उन्होंने कहा था "ईसा मसीह भी 'दस आदेशों' से संतुष्ट है लेकिन विलसन १४ आदेश पर जोर दे रहे हैं।" क्लिमेंसो ने कहा कि "लायड जार्ज सोचते है कि वह नेपोलियन हैं और प्रेसिडेन्ट विलसन सोचते हैं कि वह ईसा मसीह हैं।"

वह अपने देश को बहुत महत्त्व देते थे, चाहे कुछ भी हो, किन्तु उनका राजनीतिक सिद्धान्त बिसमार्क का सा था। शांतिसम्मेलन में क्लिमेंसो का प्रभाव सबसे अधिक था। लांसिग ने लिखा है कि "उनमें महान नेतृत्व के सभी गुण थे। वह अच्छी तरह जानते थे कि कब विरोध करना चाहिए और कब समझौता करना चाहिए। वह जो कुछ भी हाथ में लेते थे उसमें वह सफल होते थे।" कर्नल हाउस का कहना है कि "पेरिस सम्मेलन के अपने साथियों में वह सबसे अधिक प्रभावशाली थे। क्लिमेंसो के बारे में कोई छिपी बात नहीं है। उन्होंने शांति और युद्धकाल में समान रूप से संघर्ष किया और अपने देश फ्रांस के लिए खुले आम साहसपूर्वक संघर्ष किया। बहुतों को उनसे प्रेम होता था और सब उनकी प्रशंसा करते थे। उन्हे पूर्ण विश्वास था कि जर्मनी शक्ति के अलावा और किसी चीज में विश्वास नहीं करता है।" क्लिमेंसो ने अपने देश के राष्ट्रपति प्वाइनकर और विदेश मंत्री पिचन को सम्मेलन की रंगभूमि में नहीं आने दिया। पेरिस सम्मेलन के अध्यक्ष क्लिमेंसो फ्रांस की सुरक्षा पर जोर देते रहे।

ओरलैंडो—इटली का प्रधान मंत्री ओरलैंडो विद्वान, सहृदय, और सयाना था। वह सिसली का भूतपूर्व कानून का अध्यापक था और चालाक कूटनीतिक था। इटली के प्रतिनिधिमण्डल का वही प्रधान था। यद्यपि वह तथ्यपूर्ण बात करने में कुशल था पर उसे अंग्रेजी भाषा पर अधिकार नहीं था इसलिए सम्मेलन में वह प्रमुख भाग नहीं ले सका। वह केवल उन्हीं प्रश्नों को उठाता था जिनसे उसके देश का सम्बन्ध था। इसके अतिरिक्त

वह अपने साथी सोनिनो के प्रभाव में था। इटली के शासकों में सोनिनो बड़ा जिद्दी और बड़ा बेदाग आदमी था।

जब जर्मनी के साथ समझौता करने के मसविदे पर विचार होने लगा तो चारों राजनीतिकों में विवाद उठ खड़ा हुआ। टार्डियो का कहना है कि "इस विवाद का स्वर साधारण वार्तालाप का था—यह तीन आदमियों का संभाषण था जो कभी-कभी भयानक रूप और कभी कभी विनोदपूर्ण हो जाता था। विलसन विद्यावेत्ता की तरह बहस करता था जैसे कि वह लेख की समालोचना करता हो। लायड जार्ज पार्लमेंट की प्रतिक्रिया से सदा घबड़ाये रहते थे और कुशल निशानेबाज की तरह अपना मुंह खोलते थे। क्लिमेंसो की तर्क विद्या बड़ी-बड़ी बातों से परिपूर्ण होती थी।" पेरिस सम्मेलन के प्रतिनिधियों के सामने मुख्य समस्या थी विलसन की १४ शर्तों को संधि की शर्तों में परिवर्तित करना।

चौदह शर्त्तें

प्रेसिडेन्ट विलसन ने सार्वजनिक घोषणाओं में बार-बार यह बात दोहराई थी कि शान्ति समझौता न्याययुक्त और स्थायी हो। इस समझौते में केवल विजयी राष्ट्रों के स्वार्थ हित का ही ध्यान न रखा जाय बल्कि उन राष्ट्रों की इच्छा भी ध्यान में रखी जाय जिन पर इस समझौते का असर पड़ता है। हम लोग शान्ति व्यवस्था का राज्य चाहते हैं जिनमें शासित की इच्छा प्रधान हो और जिसे मानवजाति की स्वीकृति प्राप्त हो।

प्रेसिडेन्ट विलसन ने अपने विचार को साकार रूप देने के लिये १४ प्रस्ताव प्रस्तुत किए जो १४ शर्त के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनके विचारानुसार १४ शर्तें ही ऐसी स्थितियां कायम कर सकती हैं जिनके द्वारा स्थायी शांति स्थापित की जा सकती है। ये १४ शर्तें यद्यपि देखने में संक्षिप्त हैं किन्तु इनके कई तरह के अर्थ लगाये जा सकते हैं। ये शर्तें निम्नलिखित हैं:—१. गुप्त कूटनीतिक वार्ता बन्द कर दी जाय। २. समुद्र पर सभी राष्ट्रों का समान अधिकार हो। ३. सभी आर्थिक प्रतिबन्ध (चुंगी) दूर कर दिये जांय।

४. राष्ट्रीय शस्त्रीकरण में कमी इस हद तक की जावे जो केवल गृह रक्षा के लिये आवश्यक हो। ५. औपनिवेशिक दावों का निष्पक्ष रूप से निवटारा किया जाय जिसमें औपनिवेशिक जनता के स्वार्थ को प्रधानता दी जाय। ६. रूस से फौजे हटा ली जांय। ७. वेल्जियम को पुनः स्वतंत्र राष्ट्र बनाया जाय। ८. अलसेस-लारेन फ्रांस को लौटा दिया जाय। ९. इटली की सीमाओं में परिवर्तन किया जाय। १०. आस्ट्रिया-हंगरी के राष्ट्रों को स्वतंत्र विकास का मौका दिया जाय। ११. रूमानिया, सर्विया और मोंटिनेग्रो से फौजे हटा ली जाय। सर्विया को समुद्रीमार्ग दिया जाय। १२. बाल्कान प्रायद्वीप मे तुर्की शासन के अंतर्गत जो राष्ट्रीय समुदाय हैं उन्हे स्वतंत्र विकास का अवसर दिया जाय और अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा के अंतर्गत डार्डनेल्स सदा के लिये सभी राष्ट्रों के लिये खोल दिया जाय। १३. पोलैंड को स्वतंत्र राष्ट्र बनाया जाय और इसे स्वतंत्र समुद्री मार्ग दिया जाय। १४. निश्चित शर्तों के आधार पर सभी राष्ट्रों का एक संघ बनाया जाय जिसमें बिना भेद-भाव के छोटे-बड़े सभी राष्ट्रो की राजनैतिक स्वाधीनता की गारंटी हो और उनकी प्रादेशिक सीमा की सुरक्षा की समुचित व्यवस्था हो।

वर्सेल्स की संधि पर हस्ताक्षर

शांति सम्मेलन ने १६०० बैठकें करके अपने ५८ आयोजकों द्वारा जर्मन संधि का मसविदा तैयार किया।

२९ अप्रैल को जर्मन प्रतिनिधि वर्सेल्स पहुंचे। मित्र राष्ट्रो के अफसर उनकी सुरक्षा की देखभाल कर रहे थे। प्रतिनिधियों को ट्रायनन पैलेस होटल मे ठहराया गया। यह होटल कांटेदार तारों से घिरा हुआ था और उन जर्मन प्रतिनिधियों को मनाही कर दी गई थी कि वे मित्रराष्ट्रों के किसी भी प्रतिनिधि से किसी प्रकार का सम्पर्क न रखें। ७ मई को २३० पृष्ठों की मित्रराष्ट्रों की संधि की शर्तें जर्मन प्रतिनिधियों को दी गई जिस पर विचार-विमर्श करने के लिये उन्हें एक सप्ताह का समय दिया गया। २६ दिनों के बाद जर्मनों ने संधि शर्तों पर विरोधी प्रस्ताव प्रस्तुत किये। प्रस्ताव में शिकायत की गई थी कि जर्मनी ने जिन शर्तों पर आत्मसमर्पण किया था उन सिद्धान्तों

का संधि प्रस्ताव में उल्लंघन किया गया है। उनका कहना था कि नई सरकार संपूर्ण गणतंत्री है और वह समान अधिकार के साथ राष्ट्रसंघ में प्रवेश-प्रार्थी है तथा सैनिकीकरण कमी करने की शर्त केवल जर्मनी पर ही नहीं अपितु समस्त राज्यों पर लागू की जावे। जर्मनी के प्रस्ताव में इस बात को अस्वीकार कर दिया गया कि जर्मनी ही महायुद्ध के लिये उत्तरदायी है और प्रस्ताव में यही कहा गया कि सभी शर्तों को मानना असम्भव है। जर्मनों का कहना था कि यह वह संधि नहीं जिसका आश्वासन उनसे किया गया था। संधि की शर्तें आत्मसमर्पण की शर्तों की बिल्कुल विरोधी हैं। एक बड़े राष्ट्र को कुचलकर तथा उसे गुलाम बनाकर स्थायी शांति कायम नहीं हो सकती।

१६ जून को मित्रराष्ट्रों ने अपने उत्तर में शर्तों में सामान्य परिवर्तन किया। विशेषकर पोलैंड की सीमा के सम्बन्ध में। जर्मनी को ५ दिन के भीतर ही संशोधित संधि पर हस्ताक्षर करने को कहा गया और यह भी कहा गया कि हस्ताक्षर न करने का अर्थ आक्रमण होगा। शिडेमान सरकार ने संधि को अस्वीकार कर दिया और त्याग-पत्र दे दिया। इसके बाद गुस्टाव-बौर प्रधान मंत्री हुए। सरकार में परिवर्तन होने के कारण मित्रराष्ट्रों ने अंतिम तारीख दो दिन के लिये और बढ़ा दी। २३ जून को निर्धारित समय से दो घंटे पहिले जर्मनी के नये प्रतिनिधि हेनिमल ने संधि पर हस्ताक्षर करना स्वीकार किया। उसने कहा कि "मेरा देश दबाव के कारण आत्म-समर्पण कर रहा है किन्तु जर्मनी यह कभी नहीं भुलेगा कि यह अन्यायपूर्ण संधि है।" २८ जून को तीन बजे दिन में "हौल आफ मिरर्स" में चीन को छोड़ कर जर्मनी तथा सभी मित्रराष्ट्रों ने संधिपत्र पर हस्ताक्षर किए।

शांति की संधियां

शांति की शर्तें पांच संधियों में रखी गई जिनके नाम इस प्रकार हैं: जर्मनी के साथ वर्सेल की संधि (२८ जून १९१९), आस्ट्रिया के साथ सेंट जर्मन की संधि (१० सितम्बर १९१९), बलगारिया के साथ निऊली की संधि (१७ नवम्बर १९१९), हंगरी के साथ ट्रायनन की संधि (४ जून १९२०)

तुर्की के साथ शेवर्स की संधि (१० अगस्त १९२०)। इसमें कोई संदेह नहीं कि जर्मनी के साथ संधि ही शांति सम्मेलन की सबसे महत्त्वपूर्ण सफलता थी।

वर्सेल की संधि

वर्सेल का संधिपत्र इतिहास में सबसे बड़ा संधिपत्र है। इसके १५ भाग हैं तथा ४४० धारायें हैं। वर्सेल की संधि की शर्त्तें निम्नलिखित हैं:

१. **राष्ट्रसंघ**—वर्सेल संधि के राष्ट्र इस बात पर सहमत हुए कि एक राष्ट्रसंघ का निर्माण किया जाय जिसका उद्देश्य अंतर्राष्ट्रीय सहयोग को बढ़ाना तथा अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को कायम करना है। इस राष्ट्रसंघ की शर्तों पर जिसमें २६ धारायें हैं बाद में विचार किया जायेगा।

२ **प्रादेशिक**—जर्मनी ने अपने पश्चिमी भाग के अलसेस और लारेन का हिस्सा फ्रांस को दे दिया। प्रसा का मोरेसनेट, यूपेन और मालमेड़ी नामक क्षेत्र बेल्जियम को दे दिये गये। उत्तर में स्लेजविग डेन्मार्क को दे दिया गया। ऊपरी साइलेसिया का छोटा हिस्सा चेकोस्लोवाकिया को, पोसेन और पश्चिमी प्रसा पोलैंड को, मेमेल नामक बाल्टिक तटवर्ती बन्दरगाह मित्र-राष्ट्रों को दे दिया गया (जो १९२३ में लिथुआनिया को दे दिया गया)। राष्ट्र संघ के संरक्षण में डानजिग एक स्वतन्त्र शहर बनाया गया जिसके अदिवासी पूर्ण रूप से जर्मन होते हुए भी पोलैंड चुंगी संघ के अधिकार में थे। सार की घाटी १५ वर्ष के लिए फ्रांस को समर्पित की गई। लक्सेमबर्ग जर्मन अगम संघ से बाहर हो गया और राइन नदी के बायें किनारे का निशस्त्रीकरण कर दिया गया। सम्पूर्ण जर्मन उपनिवेश साम्राज्य समर्पण कर दिया गया और विजयी राष्ट्रों ने उसे आपस में बांट कर उस पर अधिष्ठ प्रणाली कायम कर दी। चीन का आवचोदोउ जापान के अधिकार में कर दिया गया। जर्मन दक्षिण पश्चिमी अफ्रीका ब्रिटिश दक्षिणी संघ का अंग हो गया। जर्मन पूर्वी अफ्रीका भी ग्रेट ब्रिटेन के हाथ लगा। फ्रांस ने तामरून और तोगोलैंड पर अधिकार कर लिया। दक्षिणी प्रशान्त द्वीप आस्ट्रेलिया को, सेमोआ न्यूजीलैण्ड को और मोरु का द्वीप ग्रेट ब्रिटेन को दे दिये गये।

३. निशस्त्रीकरण—जर्मन सेना में सैनिकों की संख्या १२ वर्ष के लिए एक लाख कर दी गई। जर्मन प्रधान सैनिक कार्यालय उठा दिया गया। शस्त्र-अस्त्र गोलाबारूद तथा अन्य युद्ध सामग्रियों का उत्पादन सीमित कर दिया गया। अनिवार्य सैनिक सेवा बंद कर दी गई। एक साल में सारी फौज के ५ प्रतिशत से अधिक को घटाने पर रोक लगा दी गई। जलसेना की संख्या सीमित करके उससे ६ युद्धपोत, ६ हल्का गश्ती जहाज, १२ विध्वंसक-पोत और १२ टारपीडो जहाज कर दिये गये और स्वयं सेवक सेना घटाकर १५ हजार कर दी गई। राइन के पूर्वी किनारे पर ३० मील तक असैनिकीकरण किया गया। पनडुब्बी जहाज का बनाना बन्द कर दिया गया। बाल्टिक सागर पर किलेबन्दी करना बन्द कर दिया गया और हेलीगोलैंड का किला तोड़ दिया गया। जर्मनी के खर्च से मित्रराष्ट्रों ने अपना एक कमीशन नियुक्त किया जिसे निशस्त्रीकरण धाराओं को कार्यान्वित किये जाने के निरीक्षण के लिए कहा गया।

४. युद्ध अपराध—जर्मनी के सम्राट विलियम द्वितीय को सार्वजनिक तौर पर अंतर्राष्ट्रीय नीति और संधियों के विरुद्ध अपराध करने का दोषी ठहराया गया। मित्रराष्ट्रों अमरीका, इंग्लैण्ड, फ्रांस, इटली और जापान ने मिलकर एक मित्रराष्ट्रीय अदालत नियुक्त की जिसको विलियम द्वितीय के मुकदमे की जांच का भार दिया गया।

५. क्षति पूर्ति—मित्र राष्ट्रों ने सारी क्षति और नुकसान का उत्तरदायी जर्मनी को ठहराया। जर्मनी से कहा गया कि वह ५ सैकड़े के हिसाब से बेल्जियम को सारे रुपये लौटा दे जितना कि बेल्जियम ने युद्धकाल में मित्र-राष्ट्रों से ऋण लिया था। संधि में एक क्षतिपूर्ति आयोग नियुक्त करने का आदेश दिया गया था। इस आयोग का कार्य निश्चय करना था कि जर्मनी १ मई १९२९ से ३० वर्षों तक कितना रुपया क्षतिपूर्ति के लिए देता रहे। इसी बीच में जर्मनी को सोना, जहाज और सिक्युरिटी कुल मिलाकर २५ अरब रुपये देने को कहा गया। जर्मनी से कहा गया कि उसके पास ४४ हजार ८

तुर्की के साथ शेवर्स की संधि (१० अगस्त १९२०)। इसमें कोई संदेह नहीं कि जर्मनी के साथ संधि ही शांति सम्मेलन की सबसे महत्त्वपूर्ण सफलता थी।

वर्सेल की संधि

वर्सेल का संधिपत्र इतिहास में सबसे बड़ा संधिपत्र है। इसके १५ भाग है तथा ४४० धारायें है। वर्सेल की संधि की शर्त्तें निम्नलिखित हैं :

१. **राष्ट्रसंघ**---वर्सेल संधि के राष्ट्र इस बात पर सहमत हुए कि एक राष्ट्रसंघ का निर्माण किया जाय जिसका उद्देश्य अंतर्राष्ट्रीय सहयोग को बढ़ाना तथा अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को कायम करना है। इस राष्ट्रसंघ की शर्तो पर जिसमें २६ धारायें हैं बाद में विचार किया जायेगा।

२ **प्रादेशिक**---जर्मनी ने अपने पश्चिमी भाग के अलसेस और लारेन का हिस्सा फ्रांस को दे दिया। प्रसा का मोरेसनेट, यूपेन और मालमेड़ी नामक क्षेत्र बेल्जियम को दे दिये गये। उत्तर में स्लेजविग डेन्मार्क को दे दिया गया। ऊपरी साइलेसिया का छोटा हिस्सा चेकोस्लोवाकिया को, पोसेन और पश्चिमी प्रसा पोलैंड को, मेमेल नामक बाल्टिक तटवर्ती बन्दरगाह मित्र-राष्ट्रों को दे दिया गया (जो १९२३ में लिथुआनिया को दे दिया गया)। राष्ट्र संघ के संरक्षण में डानजिग एक स्वतन्त्र शहर बनाया गया जिसके अदिवासी पूर्ण रूप से जर्मन होते हुए भी पोलैंड चुगी संघ के अधिकार में थे। सार की घाटी १५ वर्ष के लिए फ्रांस को समर्पित की गई। लक्सेमबर्ग जर्मन अगम संघ से बाहर हो गया और राइन नदी के बायें किनारे का निशस्त्रीकरण कर दिया गया। सम्पूर्ण जर्मन उपनिवेश साम्राज्य समर्पण कर दिया गया और विजयी राष्ट्रों ने उसे आपस में बांट कर उस पर अधिष्ट प्रणाली कायम कर दी। चीन का आवचोदोउ जापान के अधिकार में कर दिया गया। जर्मन दक्षिण पश्चिमी अफ्रीका ब्रिटिश दक्षिणी संघ का अंग हो गया। जर्मन पूर्वी अफ्रीका भी ग्रेट ब्रिटेन के हाथ लगा। फ्रांस ने तामरून और तोगोलैंड पर अधिकार कर लिया। दक्षिणी प्रशान्त द्वीप आस्ट्रेलिया को, सेमोआ न्यूजीलैण्ड को और मोरु का द्वीप ग्रेट ब्रिटेन को दे दिये गये।

३. **निशस्त्रीकरण**—जर्मन सेना मे सैनिकों की संख्या १२ वर्ष के लिए एक लाख कर दी गई। जर्मन प्रधान सैनिक कार्यालय उठा दिया गया। शस्त्र-अस्त्र गोलाबारूद तथा अन्य युद्ध सामग्रियों का उत्पादन सीमित कर दिया गया। अनिवार्य सैनिक सेवा बंद कर दी गई। एक साल मे सारी फौज के ५ प्रतिशत से अधिक को घटाने पर रोक लगा दी गई। जलसेना की संख्या सीमित करके उससे ६ युद्धपोत, ६ हल्का गश्ती जहाज, १२ विध्वंसक-पोत और १२ टारपीडो जहाज कर दिये गये और स्वयं सेवक सेना घटाकर १५ हजार कर दी गई। राइन के पूर्वी किनारे पर ३० मील तक असैनिकी-करण किया गया। पनडुब्बी जहाज का बनाना बन्द कर दिया गया। बाल्टिक सागर पर किलेबन्दी करना बन्द कर दिया गया और हेलीगोलैंड का किला तोड़ दिया गया। जर्मनी के खर्च से मित्रराष्ट्रो ने अपना एक कमीशन नियुक्त किया जिसे निशस्त्रीकरण धाराओं को कार्यान्वित किये जाने के निरीक्षण के लिए कहा गया।

४. **युद्ध अपराध**—जर्मनी के सम्राट विलियम द्वितीय को सार्वजनिक तौर पर अंतर्राष्ट्रीय नीति और संधियों के विरुद्ध अपराध करने का दोषी ठहराया गया। मित्रराष्ट्रों अमरीका, इंग्लैण्ड, फ्रास, इटली और जापान ने मिलकर एक मित्रराष्ट्रीय अदालत नियुक्त की जिसको विलियम द्वितीय के मुकदमे की जांच का भार दिया गया।

५. **क्षति पूर्ति**—मित्र राष्ट्रों ने सारी क्षति और नुकसान का उत्तरदायी जर्मनी को ठहराया। जर्मनी से कहा गया कि वह ५ सैकड़े के हिसाब से बेल्जियम को सारे रुपये लौटा दे जितना कि बेल्जियम ने युद्धकाल मे मित्र-राष्ट्रों से ऋण लिया था। संधि मे एक क्षतिपूर्ति आयोग नियुक्त करने का आदेश दिया गया था। इस आयोग का कार्य निश्चय करना था कि जर्मनी १ मई १९२९ से ३० वर्षो तक कितना रुपया क्षतिपूर्ति के लिए देता रहे। इसी बीच मे जर्मनी को सोना, जहाज और सिक्युरिटी कुल मिलाकर २५ अरब रुपये देने को कहा गया। जर्मनी से कहा गया कि उसके पास ४४ हजार ८

सौ मन से अधिक वजन के जितने व्यापारी जहाज हैं वे सभी मित्रराष्ट्रों को सौंप दे और ५ वर्षों तक मित्रराष्ट्रों के लिए प्रतिवर्ष ५६ लाख मन वजन का जहाज बनाता रहे।

६. आर्थिक—जिन क्षेत्रों पर आक्रमण हुआ था उन क्षेत्रों के पुनर्निर्माण के लिए जर्मनी को आर्थिक साधन लगाने को कहा गया। जर्मनी ने १० वर्षो तक प्रतिवर्ष निम्नलिखित हिसाब से कोयला देना मंजूर किया : १९ करोड़ ६० लाख मन फ्रांस को, २२ करोड़ ४० लाख मन बेल्जियम को, १९ करोड़ ६० लाख मन इटली को इसके अतिरिक्त प्रतिवर्ष फ्रांस को ९ लाख ८० हजार मन बेंगोल, १४ लाख मन कोलतार, ८ लाख ४० हजार मन अमोनियम सल्फेट आदि देना स्वीकृत किया गया।

७. विशेष शर्तें—सन् १८७० के युद्ध में जर्मनी ने फ्रांस से जो ट्राफी, झंडा, कलात्मक वस्तुएं प्राप्त की थीं उन्हें लौटाने के लिए कहा गया। लोमेन विश्व विद्यालय के कागजात और हस्तलेख जो युद्ध में नष्ट कर दिये गये थे उसकी प्रति लौटाने को कहा गया। हैजाज के बादशाह को खलीफा ओथमन के मूलकुरान को लौटा देने को कहा गया और जर्मन पूर्वी अफ्रीका के सुल्तान मकावा की खोपड़ी ब्रिटेन को लौटा देने को कहा गया।

८. टेक्निकल बातें—संधि की बहुत सी धाराओं मे टेक्निकल बातों के सम्बन्ध म आदेश दिया गया था। जैसे युद्ध बन्दी और कब्रगाह, हवाई यातायात, कर्ज, सम्पत्ति अधिकार, ठेका इत्यादि। अन्तर्राष्ट्रीय कमीशन निम्नलिखित नदियों पर नियंत्रण के लिए नियुक्त किये गये। ये नदियां हैं—राइन, ओडर, एल्ब, निमेन और डेन्यूब ताकि जमीन से घिरे यूरोपियन देशों को समुद्री मार्ग मिले। हेम्बर्ग और स्टेटिन के बन्दरगाहों मे जर्मनी ने चेकोस्लोवाकिया को ९९ साल के लिए स्वतन्त्र क्षेत्र दिये। काल नहर सबके लिए मुक्त घोषित किया गया।

९. संधि पालन की विशेष व्यवस्था—संधि में ही सधि को कार्यान्वित करने के लिये कुछ व्यवस्थाए की गई थीं। राइन नदी से पश्चिम की

और जर्मन देश का हिस्सा और उसके साथ सैनिक चौकियां मित्रराष्ट्र के सैनिकों को संधि के कार्यान्वित होने की तारीख से १५ वर्ष के लिये दे दिया गया। अगर जर्मनी की कारंवाई संधि के खिलाफ सिद्ध हो तो अधिकारी फौजों का जर्मनी पर फौजी अधिकार अनिश्चित काल के लिये बढ़ा दिया जाये। (यंग योजना के प्रयोग किये जाने के बाद सन् १९३० में मित्रराष्ट्रों की सारी फौजें हटा ली गई।)

सेंट जर्मेन की संधि

१० सितम्बर १९१९ में पेरिस के निकट सेन्ट जर्मेन नामक स्थान में इस संधि पर हस्ताक्षर हुए। आस्ट्रिया-हंगरी की सम्राट-शाही के बदले में आस्ट्रिया को प्रजातंत्र बनाया गया। संधि में जर्मनी के साथ आस्ट्रिया को मिलाने पर रोक लगा दी गई। इटली को आस्ट्रिया ने दक्षिणी टाईरॉल दे दिया (यद्यपि उनमें ढाई लाख जर्मन थे), ट्रन्टिनो, ट्रिस्ट, इस्ट्रिया, और डालमेटियन तट से दूर दो द्वीप भी इटली को दे दिये गये। चेकोस्लोवाकिया को आस्ट्रिया ने अपने देश का निचला भाग दे दिया। इसके अतिरिक्त उसे मोराविया और बोहेमिया और साईलेशिया भी चेकोस्लोवाकिया को देने पड़े। पोलैंड के गलेशिया रूमानिया को बोको-विना; युगोस्लाविया को वासनिया; हर्जगोभिना और डालमेटियन तट और द्वीप देने पड़े। क्षेत्रफल और जनसंख्या के विचार से आस्ट्रिया के तीन चौथाई हिस्से की हानि हुई। डेन्यूब नदी का अंतर्राष्ट्रीयकरण करने का आदेश दिया गया। परन्तु आस्ट्रिया को एड्रियाटिक सागर तक स्वतंत्र मार्ग मिला। फौज की संख्या घटाकर ३० हजार कर दी गई। जलसेना और हवाईसेना समाप्त कर दी गई। आस्ट्रिया को युद्ध-अपराधियों के समर्पण के लिये तथा ३० वर्ष तक मुआवजा देने को कहा गया। राष्ट्रीय कला की निधियां २० वर्ष के लिये जब्त कर ली गई।

निऊली की संधि

२७ नवम्बर १९१९ को निऊली की संधि के अनुसार बल्गारिया

को उन जमीनों का बहुत सा हिस्सा लौटा देना पड़ा जो उसने १९१२-१३ के युद्ध में जीता था। उसे उन विजित क्षेत्रों को भी लौटाना पड़ा जो उसने विश्वयुद्ध में जीता था। दोब्रुजा रूमानिया को दिया गया, मकदूनिया का अधिकाश हिस्सा युगोस्लाविया को, और थ्रेस का किनारा यूनान को दिया गया। युद्ध की क्षतिपूर्त्ति के लिये बल्गारिया ने २ अरब ५० करोड़ रुपया देने का वायदा किया और फौज की संख्या घटाकर ३३ हजार कर देने का भी वायदा किया। मित्रराष्ट्रों ने बल्गारिया को वायदा किया कि वे एजियन सागर तक उसके आर्थिक यातायात को सुरक्षित रखेंगे।

ट्रायनन की संधि

ट्रायनन की संधि ४ जून १९२० को हुई। इसके अनुसार हंगरी ने स्लोवाकिया चेकोस्लोवाकिया को, ट्रांसलवानिया रूमानिया को, क्रोशिया युगोस्लोविया को दिया। बनात को युगोस्लाविया और रूमानिया ने आपस में बांट लिया। आस्ट्रिया को हंगरी का पश्चिमी हिस्सा बीर्जनलैंड मिला। हंगरी को समुद्री मार्ग फ्यूम का निर्णय इटली और युगोस्लाविया के समझौते पर छोड़ दिया गया लेकिन मगयार्स को इससे हाथ धोना पड़ा। उसकी सेना घटाकर ३५ हजार कर दी गई।

सेवर्स की संधि

१० अगस्त १९२० को सेवर्स की संधि हुई जिसको तुर्की के सुलतान ने कभी मंजूर नहीं किया फिर भी अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के पाठकों के लिये इसका महत्त्व है। इस संधि के अनुसार सुलतान को मिस्र, अरब, सूडान, साइप्रस, ट्रिपोलिटानिया, मोरक्को, ट्यूनिसिया, फिलिस्तीन, मेसोपोटामिया, आर्मीनिया और थ्रेस से अपने सारे अधिकार त्यागने को कहा गया।

इस संधि को तुर्की की राष्ट्रवादी पार्टी ने अस्वीकार कर दिया। राष्ट्रवादी पार्टी ने १९१९ की जुलाई में अपने नेता मुस्तफा कमाल पाशा के नेतृत्व

में एक समानान्तर सरकार की अंकारा में स्थापना कर ली थी जब कि सुलतान की सरकार कुस्तुनतुनिया में थी। राष्ट्रवादी तुर्कियों ने यूनानियों को दो वर्ष के लगातार युद्ध के बाद अपने देश से मार भगाया और मित्र-राष्ट्रों को सेवर्स की संधि को बदलने के लिये मजबूर किया।

लासेन की संधि

२४ जुलाई १९२३ को ब्रिटिश विदेशमंत्री लार्ड कर्जन के प्रयत्न से लासेन की संधि पर हस्ताक्षर हुआ। इस संधि के अनुसार यूनान ने तुर्की को पूर्वी थ्रेस, एड्रियनेपोल तथा इम्ब्रोज और टेनेडोस के द्वीप दे दिये। अडालिया, सिमिर्ना, स्लीसिया, थ्रेस, कुस्तुनतुनिया और अनोटोलिया को तुर्की के अधिकार में छोड़ दिया गया जिस पर उसका सर्वाधिकार स्वीकार किया गया। सेवर्स संधि की धारायें जिनका सम्बन्ध जुर्माना, हर्जाना और निशस्त्रीकरण से था हटा दी गई। तुर्की ने इटली को रोड्स, डूडाकेनिज और कास्टेलोरोजो दे दिया और मेसोपोटामिया अरब, सिरिया, फिलिस्तीन, मिस्र, सूडान और साईप्रस पर से उसे अपना सारा अधिकार त्यागना पड़ा। राष्ट्रसंघ द्वारा अंतर्राष्ट्रीय मुहाना आयोग नियुक्त किया गया। इसका काम उन मुहानों पर नियंत्रण करना था जो सभी राष्ट्रों के उपयोग के लिये छोड़ दिये गये थे और जिनका निशस्त्रीकरण कर दिया गया था। संधि में यह भी एक शर्त्त थी कि यूनानी मुसलमान और कट्टर तुर्कों की अदला बदली अनिवार्य रूप से की जाय।

कमालपाशा की तुर्की के लिये लासेन की संधि एक बड़ी विजय थी। तुर्कों ने वे सारी चीज प्राप्त की जिनके लिये वे लड़े थे। वे थीं सांस्कृतिक सीमाबन्दी, अंतर्राष्ट्रीय गुलामी से मुक्ति तथा राष्ट्रीय स्वाधीनता। अक्तूबर १९२३ ई० में तुर्की की राष्ट्रीय महासभा ने तुर्की को प्रजातंत्र घोषित किया और कमालपाशा को अपना पहला राष्ट्रपति और अंकारा को राजधानी बनाया। सन् १९२४ में खलीफाशाही का अंत कर दिया गया और धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र की घोषणा की गई।

वाशिंगटन सम्मेलन

प्रथम विश्वयुद्ध में रूसी और जर्मन नौसेनाओं के नष्ट हो जाने के कारण प्रशान्त महासागर में जापानी नौसैनिक शक्ति इतनी वढ़ गई कि अमरीका घवड़ा गया। सुदूर पूर्व की वड़ी-वड़ी अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं को हल करने के लिये अमरीकी राष्ट्रपति हार्डिंग ने सन् १९२१ नवम्बर में वाशिंगटन में ८ राष्ट्रों का एक सम्मेलन बुलाया। सम्मेलन में ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, वेल्जियम, जापान, इटली, चीन, नीदरलैंड तथा पोर्तुगाल सम्मिलित हुए। सन् १९२२ की फरवरी में कुल मिलाकर ७ संधियां की गई जिनमें से तीन उल्लेखनीय है।

पहली संधि 'चार राष्ट्रों की संधि' थी जो अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस और जापान के वीच हुई। संधिकर्त्ता राष्ट्रों ने स्वीकार किया कि प्रशान्त महासागर में वे एक दूसरे राष्ट्र के अधिकारों को स्वीकार करेंगे और किसी दूसरे राष्ट्र द्वारा आक्रमण किये जाने पर वे आपस में सलाह मशविरा करेंगे। दूसरी संधि थी 'पांच राष्ट्रों की संधि' जिसके अनुसार ब्रिटिश साम्राज्य और अमरीका को नौसेना का समान अधिकार दिया गया। इस संधि के अनुसार जापान के जहाजों की संख्या ब्रिटिश और अमरीकी जहाज संख्या की ६० प्रतिशत कर दी गई। फ्रांस और इटली का अंश ३५ प्रतिशत कर दिया गया। संधिकर्त्ता राष्ट्रों ने इस वात को भी स्वीकार किया कि वे नई किलेवन्दी नहीं करेंगे और न नये सैनिक अड्डे ही वनायेंगे। सम्मेलन में सभी राष्ट्रों ने एक 'नौशक्ति-संधि' पर हस्ताक्षर किये जिसके अनुसार चीन की सीमा की सुरक्षा और एक पृथक चीन-जापान समझौता के अनुसार जापान ने 'चाहो' चीन को लौटाना स्वीकार किया। यह चाहो क्षेत्र वर्सेल्स संधि के अनुसार जर्मनी ने जापान को दिया था।

वाशिंगटन सम्मेलन का मूल्यांकन करना कठिन है। श्री कार के कथनानुसार यह एक अपूर्व सफलता थी क्योंकि इसके द्वारा प्रशान्त क्षेत्र का युद्ध पूर्व असन्तुलन समाप्त होगया। आंग्ल-अमेरिकन गुट के दवाव से

भयभीत होकर, चीन को अकेले हथियाने के इरादों को जापान को स्वयमेव ढीला करना पड़ा। परन्तु जापान द्वारा यह "अनिश्चित अवरोध" क्षणिक ही रह सका। वाशिंगटन के निर्णय से जापानी दवद की क्षति को पूरा करने के लिये जापान किसी भी उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा में तभी से लग गया; यद्यपि चीन के दृष्टि-कोण द्वारा जापान पर कोई नया प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया था। वाशिंगटन कांफ्रेंस के निर्णयों से चीन को अपनी निर्बल राष्ट्रीय स्थिति को संभालने का स्वर्णीय अवसर हाथ लग गया। परन्तु सुदूरपूर्व में आंग्ल-अमरीकी आधिपत्य रहे या जापानी, इस प्रश्न का हल फिर भी अधूरा ही रहा। वाशिंगटन कांफ्रेंस को ही यह अभिमान मिल सका कि आने वाले १० साल तक स्थिति ज्यों की त्यों ही रही।

समीक्षा--सन्धि की धाराओं के प्रत्येक शब्द से यह ध्वनित होता था कि तत्कालीन दो प्रतिद्वंदी राजनैतिक कूटनीतिज्ञों का एक पारस्परिक संघर्ष तब चल रहा था। उनमें से एक तो "क्रिया शील" कहे जाते थे जो कि "मैकवेली" के पद चिन्हों रूढ़िवादी का अनुसरण कर रहे थे दूसरे "अग्रगामी", जो कि समय की नवीन विचारधारा के पोषक समझे जाते थे। दोनों ही तरह के विचार छा जाने को सचेष्ट थे। एक ओर तो यह प्रयत्न जारी था कि न्याय के वर्नन में पूर्ण निष्पक्षता तथा अखंड सत्य का आश्रय लिया जाय। दूसरी ओर कांफ्रेंस की पुरानी प्रथा के अनुसार "शक्ति संतुलन" को स्थिर रहने देने की पूरी कोशिश की जा रही थी। इसके लिये आर्थिक तथा भौगोलिक क्षति-पूर्ति हासिल करने पर भी विजता को विजित से सदा के लिए निर्भय कर देने की कुचेष्टा में भी कान्फ्रेंस लीन थी। अन्त में कहना न होगा कि पहली विचार धारा पर दूसरी विचार धारा ने ही विजय पाई।

पेरिस सन्धि के जहाँ समर्थक व्यक्ति थे वहां आलोचक भी थे। तत्कालीन शान्ति-स्थापकों के समक्ष शान्ति स्थापित करने का कार्य अत्यंत जटिल था। क्योंकि एक ओर तो यह मामला ही पेचीदा था तथा दूसरी

और पारस्परिक स्वार्थों का इसम भीषण टकराव पड़ता था। सिद्धान्त की दृष्टि से पूर्ण तथा सम्भावित निष्पक्ष, किमी समझौते को सर्व-सम्मत मोहर लगनी असम्भव थी। अतः क्रियात्मिक हल सोचने के लिय तथ्यता को विकृत अवस्था में पेश करना अनिवार्य-सा ही हो गया था। शत्रुओं द्वारा अधिकृत प्रदेशों में जिस घृणा के बीज का वपन हो चुका था साथ ही उसे ओझल भी नहीं किया जा सकता था। जिनको किसी भी दुर्भाग्य से सामना नहीं करना पड़ा भले ही वे निष्पक्ष तथा अपने को दयालु प्रकट करें, पर युद्ध में जिन्होंने धन, जन, तथा सम्बन्धी खोये हैं उनसे वैसी आशा रखना व्यर्थ ही था। वास्तव में सन्धि उस समय सम्पन्न हुई जबकि साथी राष्ट्रों की क्षति चरम सीमा तक पहुंच चुकी थी, तथा जर्मन अत्याचारों के घाव बिलकुल ताजे ही थ। साथी राष्ट्रों द्वारा मृदु व्यवहार के समय यह नहीं भूलना चाहियें कि 'ब्रेस्ट लिटोविस्क' सन्धि के समय जो दुर्दशा पूर्ण व्यवहार विजेता जर्मनी ने रूसियों से किया था इसके परिणामस्वरूप ही जर्मनी को किसी प्रकार की सुविधा की चर्चा का नैतिक अधिकार, विजेता साथी राष्ट्रों को सोचने मात्र तक के लिये भी नहीं रहता था। जर्मनी द्वारा की गई सन्धि की दो मुख्य धाराओं को स्वयं जर्मन इस सन्धि से पूर्व तोड़ चुके थे। प्रथम तो १८७० में पकड़े फ्रेंच बेड़े को 'स्कोपा फ्लो' में डुबोना दूसरा बर्लिन में फ्रेडरिक महान् की मूर्ति के समक्ष राष्ट्रीय मान के साथ फ्रांसीसी राष्ट्र ध्वज का जलाना। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि सन्धि के समय साथी राष्ट्रों ने पुराने अनुभव से शिक्षा के आधार पर अपने निहित स्वार्थों की रक्षा के उद्देश्य से सन्धि उल्लंधन की रोकथाम पर कडी निगरानी की हो।

ब्रिटिश पार्लियामेंट में सन्धि की शर्तों को उपस्थित करते हुए इस देश के प्रधान मंत्री लायड जार्ज ने इस सन्धि के विषय में निम्न उद्गार प्रकट किये थे "प्रस्तावित संधि को जर्मनी के साथ किसी प्रकार का अन्याय नहीं कहा जा सकता। इस सन्धि पर केवल वही अन्याय का

आरोप लगा सकता है जो कि जर्मनी के युद्ध कार्यों को भी न्याय-संगत ही समझता हो। कुछ विषयों में शर्तें अवश्य भयानक जचती हैं, पर भीषण कुकृत्य स्वयं ही इस भयानकता का समाधान भी करते हैं, यदि जर्मनी कहीं जीत जाता तो इस से भी अधिक भयावह परिणामों का हमें सामना करना पड़ता।" "आज संसार शत्रु के असफल प्रहारों से डावांडोल है यदि ये प्रहार सफल हो जाते तो योरुप की स्वतन्त्रता समाप्त थी।" संधि की भौगोलिक धाराओं की चर्चा करते हुए लायड जार्ज ने घोषणा की कि अल्सेस, लारेन, श्लेसविग और पोलेण्ड को लेना अधिकारी को सौंपना मात्र ही है, इससे अधिक कुछ नहीं। सन्धि की अतिरिक्त धाराओं की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि "जर्मन उपनिवेशों के आदि निवासियों की शासन सम्बन्धी सही शिकायतों को सुनने के बाद भी फिर वे उपनिवेश जर्मनी के ही हवाले कर देना एक आधारभूत कृतघ्नता ही कही जाती।" अब युद्ध के लिए जिम्मेदार व्यक्तियों के मुकद्दमे की बात लीजिए। यह एक असाधारण कदम था। यह एक दयनीय स्थिति थी। यदि यह पहले ही हो गया होता तो संसार में इतने युद्ध न होते।

प्रधान मंत्री ने अन्य युक्तियां उपस्थित करते हुए कहा कि यह संधि बदला लेने के लिए नहीं की गई "जर्मनों ने युद्ध का समर्थन किया, अतः यह आवश्यक हो जाता है कि जो राष्ट्र अकारण ही आक्रांता बन जाते हैं उन्हें यही शिक्षा मिलनी चाहिये, और पड़ौसियों पर हमला करने वालों के भाग्य पर ऐसी ही मोहर लगनी चाहिये।" गैथोर्न हार्डी ने भी इन्हीं विचारों का प्रबल समर्थन किया। "वास्तव में पहले कभी भी ऐसे उच्च आदर्शों पर आधारित कोई सन्धि पत्र बना ही नहीं।" "विलसन के सिद्धान्तों का इसमें निचोड़ पाया जाता है, किसी भी अंश में उन सिद्धान्तों से हम भटके नहीं। इस सन्धि म किसी अन्तर्राष्ट्रीय अशान्ति तथा असुरक्षा के कण भी नहीं मिलते।" विजेताओं के

पैरिस में मिलने से पहले ही आस्ट्रिया का विघटन एक तथ्य वस्तु बन चुका था। पोलस, रूमेन्स, स्लाव और जव को विदेशी प्रभुत्व से स्वतन्त्र करना साथी-राष्ट्रों द्वारा उद्‌घोषित युद्धनीति का सर्वदा एक अंग रहा है।

इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि वास्तव में पेरिस सम्मेलन, प्रधान मन्त्रियों के एक विशष गुट की स्वेच्छाचारिता का नमूना था। अन्त में ये भी सन् १८१५ की वियना सम्मेलन के विचारों के प्रवाह के शिकार हो गए। युद्ध की लूट को बांटने का पहला काम था; इसके लिए कुछ विजेताओं ने उपनिवेश सम्भाले तथा कुछ ने योरुपीय भूमि पर आधिपत्य जमाया और क्षति-पूर्ति को क्रिया में परिणत किया। विजेताओं ने राष्ट्रीयता को आड़ में पराजितों को खूब रौंदा। प्रधान मन्त्रियों का यह गुट सफल राजनैतिक खिलाडी रहा जो अपने-अपने देशों को सही-सलामत लड़ाई में से सुरक्षित ही निकाल ले गए। परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय मामलों की जानकारी इन लोगों की अधूरी थी। इसी कारण समझौते के काम को वे अपने से अधिक योग्य व्यक्तियों के हवाले न कर सके। सम्मेलन की कार्रवाई में खरेपन का साफ़ अभाव था। मि० वेल्स के शब्दों मे सम्मेलन "पुराने ढर्रे का एक कूटनीतिक षड्यन्त्र" मात्र था। राष्ट्रपति विलसन का कहना था कि "संसार को जनतन्त्र पद्धति के लिए सुरक्षित रखना ही होगा"। क्लिमेंसो ने विलसन के इस प्रकार विचार प्रकट करने के लिए कहा कि जैसे वे ईसा मसीह की तरह बोल रहे हों। यही, फ्रांस के प्रधान मंत्री, कहा जाता है कि प्रातः उठते ही रट लगाते थे कि "मैं राष्ट्र संघ में विश्वास रखता हूँ"। ओरलैंडो ने राष्ट्र संघ के बारे में सावधानता से टिप्पणी करते हुए कहा कि "मैं राष्ट्र संघ में तो विश्वास रखता हूँ पर फ्यूम के मसले को पहले तय किया जाना आवश्यक है"। सम्मेलन को दुर्भाग्यपूर्ण एक घटना का जिक्र भी करना यहां आवश्यक है। वह यह कि अमेरिका ने जापान के जाति-समता के निर्दोष सिद्धान्त को मानने से

द्वारा सहयोग का उदाहरण उपस्थित न
इन्कार कर दिया। मित्रराष्ट्रों द्वारा सहयोग का उदाहरण उपस्थित न
कर सकने के कारण पेरिस सम्मेलन में भाग लेने वाले अन्य राष्ट्रों में
भी अन्तर्राष्ट्रीय विश्वास की सम्भावना समाप्त हो गई। लासौन की सन्धि
वास्तव में सन्धि की धाराएँ अत्यन्त कठोर थीं। लासौन की सन्धि
के अतिरिक्त शेष सब सन्धियां विजेताओं ने पराजितों पर मढी थीं न
कि कुछ आदान-प्रदान की भावना से सन्धि की धारायें तैयार की
थीं। साथी-राष्ट्रों का दृष्टिकोण संधि के विषय में ब्रिटिश प्रधान
मंत्री लायड जार्ज के निम्न वाक्य से साफ झलकता है "इस सन्धि की
धाराएँ युद्ध में मृत शहीदों के खून से लिखी गई है, परमात्मा का
आदेश पालन करना हम सब का इस समय का कर्तव्य है। जो लोग
इस लड़ाई में प्रवत्त हो गए है हमें उन्हें द्वारा ऐसा न करने की शिक्षा
अवश्य देनी है। आज जर्मन इस संधि पर हस्ताक्षर करने से इन्कार
करते है। हमारा उनसे यही कहना है, 'महानुभाव! आपको यह करना
ही होगा। आज जो वर्सेल में नहीं होगा कल वही बर्लिन में मानना
पड़ जायगा"। मामली शिष्टाचार के अभाव तथा सार्वजनिक अप्रतिष्ठा
से परेशान होकर एक जर्मन प्रतिनिधि को भी कहना ही पडा "हमारे
प्रति फैलाई गई उग्र घृणा की भावना से हम आज सुपरिचित हैं।"
चौदह शर्तें जब वर्सेल संधि में प्रयोग की जायं तो संधि सैद्धान्तिक और
क्रियात्मक दृष्टि से बहुत त्रुटिपूर्ण मिलेगी। जर्मनी के डाजिग नगर को
छीन कर पोलैण्ड को दिलवा देना, आस्ट्रिया को जर्मनी से खण्डित
रहने के लिए विवश रखना, मित्र राष्ट्रों द्वारा सीमा सम्बन्धी झगड़ों
को आत्म-निर्णय के द्वारा निपटाने के उद्घोषित सिद्धान्त का खुला
उपहास था। इसके अतिरिक्त सब जर्मन उपनिवेशों को हथियाने के
बाद साथी राष्ट्रों द्वारा औपनिवेशिक मामलों को तय करने में पूर्ण
निष्पक्षता तथा खुले दिल व्यवहार का दावा अब कहां रहा?

वर्सेल की सन्धि के फलस्वरूप जर्मनी को यूरोप में अपने भू-भाग
के १३ प्रतिशत क्षेत्र (२५ हजार वर्गमील) से वंचित हो जाना पड़ा।

इसके साथ उसे निम्न क्षतियां और उठानी पड़ीं:—आबादी का १२ प्रतिशत (६० लाख) आदमी कम हो गए। कच्चे लोहे के भँडार का ६५ प्रतिशत, कोयले का ४५ प्रतिशत, कच्चे जस्त का ७२ प्रतिशत भाग, सीसे का ५७ प्रतिशत, कृषि-उत्पादन का १२ से १५ प्रतिशत और तैयार किए माल के लगभग १० प्रतिशत भाग से हाथ धोना पड़ा। जर्मनी की नौसेना समाप्त कर दी गई तथा फौज की संख्या बेल्जियम की सेना के बराबर कर दी गई। जर्मनी के खर्चे पर ही विदेशी सेनाओं को उसी के देश में रखा गया। विदेशी व्यवस्थापकों को जर्मनी के आर्थिक तथा सैनिक जीवन में हस्तक्षेप का अधिकार दे दिया गया। जर्मनी को क्षति-पूर्ति के लिए एक कोरे चैक पर हस्ताक्षर करने पड़े, यही इस संधि का सार था।

आस्ट्रिया को समुद्री सीमा से वंचित कर दिया गया और जर्मनी से सहयोग करने की मनाही कर दी गई। बोहेमिया से कोयला खरीदना मना कर दिया, हंगरी से अनाज और मांस लेना आस्ट्रिया के सामर्थ्य से दूर हो गया। इस प्रकार गणतन्त्र आस्ट्रिया २० लाख आबादी के बोझ को लिए एक कटे सिर के समान शरीर की भांति हो गया। १ लाख २५ हजार वर्गमील क्षेत्र वाले हंगरी की २ करोड़ बीस लाख आबादी को सिकोड़ कर ३७ हजार वर्गमील के क्षेत्र में सिर्फ ८० लाख की आबादी कर दी गई। बलगारिया को एजियन समुद्र तट से दूर करके उसे बाल्कन देशों में क्षेत्रफल, आबादी, साधन सम्पन्नता और सामरिक दृष्टि से सबसे छोटा राज्य बना दिया गया।

लांसिग के इस कथन पर आश्चर्य नहीं करना चाहिए कि "मैं इस सन्धि को अत्यन्त कठोर तथा अपमानजनक मानता हूं और इसकी कुछ धाराओं को तो बिलकुल ही अव्यवहार्य समझता हूं।" मि० केनीज़ ने तो क्षति-पूर्ति की कठोर शर्तों के विरोध में अपना पद-त्याग कर दिया था तथा इस संधि को 'कारथेजियन' संधि कह कर लताड़ा था।

इसकी चर्चा संसार में बहुत दिनों तक रही। फ्रांसीसियों ने इस संधि को विशेष उत्साह से नहीं माना क्योंकि उन्हें सार की घाटी पर आधिपत्य इसके द्वारा नहीं मिलता था। जर्मनी में तो इस सन्धि-पत्र पर अत्यन्त कठोर आलोचनाएं हुईं। जर्मनी के एक भूतपूर्व चांसलर बैथमहालवेग ने इसके बारे में एक स्मृति-पत्र में लिखा कि "पराजित को ग़ुलाम बनाने का इससे बढ़ कर विश्व ने कभी भी भयानक उपाय नहीं देखा।" फ्रांक-फर्टर जेडंग नामक एक समाचार पत्र ने कहा कि "हम जर्मन आज अधिकार की कब्र के किनारे खड़े हैं। हमें सन्देह है कि यह कब्र कहीं सारे जर्मन राष्ट्र के लिये तो नहीं ?" शूमैन के अनुसार जर्मनी को बुरी तरह कुचल दिया गया और उसे राष्ट्र संघ में भी शामिल न होने दिया।

परिणाम--विलसन के अनुसार शान्ति-समझौते ने 'भावी युद्धों का अन्त करने वाले' प्रथम विश्व-युद्ध का अन्त कर दिया। यह युद्ध १५६५ दिनों तक चला और इसमें २० प्रतिशत व्यक्ति मारे गए तथा ३३ प्रतिशत सैनिक घायल हुए। निष्पक्ष दृष्टि से देखा जाय तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि संधियों की धारायें न केवल एक पक्षीय थीं बल्कि अस्थाई समझौते की बू लिये हुए थीं। उसमें आदर्शवाद के स्थान पर भौतिकवाद की छाया थी और भविष्य में झगड़े के बीज छिपे हुए थे। जनरल स्मट्स ने ठीक ही कहा था कि मैंने सन्धि पर हस्ताक्षर इसलिए नहीं किये कि वह एक सन्तोषजनक समझौता है, बल्कि केवल इसलिए कि इससे युद्ध बन्द होता है। हमने केवल अपने शत्रुओं के हृदयों को ही नहीं बदलना है अपितु हमें अपने हृदयों में भी परिवर्तन करना है। क्षत-विक्षत ईसाई समाज को सांत्वना देने के लिये तथा उसके शोक और दुख को भुलाने के लिए इस युग के प्रत्येक निवासी को अपने हृदय में एक नवीन उदारता तथा मानवीयता की उमंग को स्थापित करना होगा।

व्याख्यान २

राष्ट्रसंघ (लीग ऑफ नेशन्स)

विषय प्रवेश—बहुत प्राचीन काल से राष्ट्रसंघ के उद्देश्यों की आवश्यकता अनुभव हो रहा थी। प्रथम महायुद्ध से पहले भी २२२ बार शांतिप्रिय व्यक्ति या संस्थायें इस दिशा में प्रयास कर चुकी थीं। चौदहवीं सदी में पीरी ड्-बायस ने फ्रेंच राजा की आधीनता में समस्त ईसाई जगत को एक सूत्र मे पिरोने का सुझाव रखा था। सल्ली ने अपनी 'ग्रांड डिजाइन' पुस्तक में सारे यूरोप को इस प्रकार १५ रियासनों में बांटने का प्रस्ताव पेश किया था कि वे सब मिलकर अवसर आने पर एक साधारण सभा (जनरल कौंसिल) के संरक्षण में किसी भी सामूहिक कार्रवाई को कर सकें। सन् १७९५ में प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक केंट ने 'परपेचुअल पीस' पुस्तक में युद्धों के रोक-थाम की एक योजना प्रस्तुत की थी।

१९वीं शताब्दि के प्रथम चरण में ज़ार अलेक्जेंडर प्रथम ने "पवित्र मैत्री" (होली अलाएंस) की स्थापना की, मैटरनिच ने यूरोपीय गोष्ठी स्थापित की। सन् १८५६ में पेरिस कांग्रेस में अंतर्राष्ट्रीय विवादों को निबटाने के लिये नियम बनाए गये। सन् १८६७ में तत्कालीन प्रभावशाली व्यक्तियों में से जान ब्राइट, जोन स्टुअर्ट मिल, विक्टर ह्यूगो, गेरीबाल्डी और माइकेल बाकुनिन ने सम्मिलित प्रयत्न से एक 'शांति संघ' (लीग आफ पीस) की स्थापना इस उद्देश्य से की कि जिसके द्वारा यूरोप की तमाम रियासनों का एकीकरण हो तथा संसार में स्वतन्त्रता, न्याय और शांति कायम रह सके। सन् १८९९ में रूस के ज़ार निकोलस द्वितीय ने एक अंतर्राष्ट्रीय शांति सम्मेलन हेग में बुलाया। ज़ार ने इस

अवसर पर कहा कि "शांति कायम रखना ही अंतर्राष्ट्रीय नीति का आज ध्येय बन चुका है।" इस सम्मेलन में २६ राष्ट्रों ने भाग लिया। यद्यपि शस्त्रीकरण के खास सीमानिर्धारण पर कोई समझौता न हो सका किंतु युद्ध के समय कुछ शस्त्रों के प्रयोग पर पाबन्दी और अंतर्राष्ट्रीय कानून कायम करने तथा पंच न्यायालय की स्थापना के लिये इस सम्मेलन में आवश्यक कदम उठाया गया। १९०७ की द्वितीय हेग शांति सम्मेलन में ४४ राष्ट्रों ने सक्रिय भाग लिया। इसमें शस्त्रीकरण पर प्रतिबन्ध लगाने में यद्यपि असफल रहे परन्तु फिर भी युद्धावरोध के लिये समय-समय पर शांति सम्मेलनों को बुलाने की सिफारिश की गई। इसके अतिरिक्त दो लड़ने वालों के बीच में तीसरे की मध्यस्थता द्वारा युद्ध समाप्त करने की पद्धति को उचित ठहराया गया। तीसरा हेग सम्मेलन १९१५ में होने को था कि विश्वयुद्ध के छिड़ जाने से सम्मेलन स्थगित करना पड़ा।

राष्ट्र-संघ का जन्म

युद्ध छिड़ते ही तटस्थ संयुक्त राष्ट्र अमरीका में एक राष्ट्रसंघ की स्थापना के विषय में आम चर्चा चल पड़ी। १९१५ ई० जून में अमरीका के राष्ट्रपति टैफ्ट ने शांति की स्थापना के लिये एक लीग (संघ) के संगठन के हेतु फिलाडेलफिया में एक सम्मेलन बुलाया। सम्मेलन में एक चार सूत्री कार्यक्रम निश्चित हुआ; (१) अंतर्राष्ट्रीय सब विवादों को मध्यस्थ के सुपुर्द कर दिया जाय। (२) दूसरी प्रकार के झगड़े को समझौते के लिये एक कौंसिल के सामने रखे जायँ, (३) शांतिपूर्ण हल को स्वीकार न करने वाली पार्टी के विरुद्ध आर्थिक और सैनिक कार्रवाई प्रारम्भ की जाय। (४) समय-समय पर ऐसे सम्मेलनों का आयोजन किया जाय जो अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था के कानून निर्माण करें। मई १९१६ में वाशिंगटन में एक सम्मेलन उपर्युक्त निर्णयों को क्रियान्वित करने के लिए बुलाया गया। २२ जनवरी १९१७ में राष्ट्रपति विलसन ने अमरिकन सीनेट के समक्ष "शांति के लिये विश्व संत्र" के विषय में निम्न उद्गार प्रकट किए। "आज के बाद संसार में शांति स्थापना

तभी सम्भव है जबकि हम एक नई तथा ठोस कूटनीति को अपनाएं, संसार के बड़े राष्ट्र किसी भी आपसी समझौते को मान ल, शान्ति कायम करने के मूलभूत आधारों के विरुद्ध जब कोई गुट युद्ध द्वारा कार्रवाई करने लगे उस पर तुरन्त सामूहिक कार्रवाई की जा सके तभी सभ्यता कायम रह सकेगी।" "हमारी मान्यता है कि (१) विश्व के प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है कि वह अपनी सरकार का स्वयं निर्णय करे (२) विश्व के छोटे राज्यों का भी अपनी सार्वभौमिकता और प्रादेशिक स्वातन्त्र्य को कायम रखने का उतना ही अधिकार है जितना कि बड़े राष्ट्रों को और (३) यह कि किसी भी मूल्य पर विश्व-शान्ति बनाये रखना जरूरी है।"

प्रेसिडेन्ट विलसन के भाषण के एक सप्ताह के बाद ही जर्मनी के पनडुब्बी बेड़े ने लड़ाई की घोषणा कर दी। इसके प्रत्युत्तर में ६ अप्रैल १९१७ को प्रेसिडेन्ट विलसन ने भी जर्मनी के विरुद्ध जंग का एलान कर दिया। अपने युद्ध सन्देश में प्रेसिडेन्ट विलसन ने कहा कि जनतंत्रीय देशों में पारस्परिक विश्वव्यापी सहयोग के बिना संसार में शान्ति व्यवस्था कायम रखना नितांत असम्भव है। जगह-जगह अपने भाषणों में विलसन ने 'युद्धान्तक-युद्ध' की आवश्यकता सम्बन्धी अपना विचार स्पष्ट किया। आपने कहा कि जर्मनी के विरुद्ध हमने युद्ध का एलान विश्व युद्ध की समाप्ति और जनतंत्र की सुरक्षा के लिये किया है। ८ जनवरी १९१८ को प्रेसिडेन्ट विलसन ने अपनी १४ सूत्री योजना प्रस्तुत की*। सितम्बर १९१८ में प्रेसिडेन्ट विलसन ने कहा कि राष्ट्रमंच का विधान शान्ति समझौता का ही एक अंग होना चाहिए। ११ नवम्बर १९१८ को युद्ध विराम हुआ और जनवरी १९१९ में पेरिस में शान्ति-सम्मेलन बुलाया गया।

इस समय राष्ट्रमंच के लिये कितनी ही सरकारी तथा गैर सरकारी योजनाएं सामने आने लगी। २० जनवरी १९१९ को ब्रिटेन की तरफ से लार्ड सिमिल, जनरल स्मट्स और लार्ड फिलीमोर ने एक रूपरेखा तैयार

* पृष्ठ ७ देखिए।

की। इसी समय विलसन ने अपने विश्वस्त सहयोगी कर्नल हाऊस द्वारा एक और योजना तैयार की। ये योजनाएँ पेरिस शान्ति सम्मेलन की १९ व्यक्तियों की समिति के सामने रखी गई। इसके सभापति विलसन थे जिन्हें फरवरी १९१९ में पेरिस शान्ति सम्मेलन में प्रतिनिधियों ने निर्वाचित किया था। २८ अप्रेल को पेरिस शान्ति सम्मेलन ने प्रतिश्रव (कवनेन्ट) की दुहराई हुई योजना को सर्वसम्मति से स्वीकृत किया। राष्ट्रसंघ की प्रतिश्रव योजना वर्सेल, सेन्ट जर्मेन, निऊली, ट्रायनन और सेवर्स की सन्धियों के अन्तर्गत लागू की गई। १० जनवरी १९२० को वर्सेल की संधि के अभिपोषण के साथ-साथ राष्ट्रसंघ का जीवन नियमानुकल प्रारम्भ हो गया।

प्रतिश्रव (कवनेन्ट)

राष्ट्रसंघ का रूप या भार ही प्रतिश्रव है जिसके २६ आलेख पेरिस में हुई विभिन्न संधियों के अंश है। इस संघ के उद्देश्य जैसे कि प्रतिश्रव में उल्लिखित हैं ये चार हैं। (१) युद्ध निराकरण (२) शान्ति की स्थापना (३) संधियों के नियम तथा उपनियमों को लागू करना (४) मानव समाज की भौतिक तथा नैतिक उन्नति के लिये अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को प्रोत्साहित करना।

(१) **युद्ध निराकरण**—दसवीं धारा सदस्यों को बाह्य आक्रमण में एक दूसरे की प्रादेशिक सीमा और विद्यमान राजनैतिक स्वतन्त्रता को सुरक्षा और सम्मान करने को वाध्य करती है। ११वीं धारा के अन्तर्गत राष्ट्रसंघ को यह अधिकार दिया गया है कि शांति की सुरक्षा के लिए कोई भी उचित कदम उठा सकता है। १२वीं धारा में यह वैध है कि सदस्य देशों की परिषद (कौंसिल) द्वारा जांच की जा सकेगी, जांच के निर्णय के तीन मास तक किसी भी हालत में युद्ध नहीं छेड़ा जा सकेगा। १३वीं धारा में इस बात के विश्वास पर बल दिया गया कि पंच या जांच में विश्वास रखना और सदस्य देश से युद्ध करने की सम्भावना न होने देना। १६वीं धारा के अनुसार यदि कोई सदस्य-देश

प्रतिश्रव की धाराओं की अवहेलना करके युद्ध घोषणा करे तो अन्य समस्त सदस्य देशों के विरुद्ध युद्ध के लिये अपराधी माना जायेगा। १७वीं धारा में इस बात की घोषणा है कि यदि वह देश जो राष्ट्रसंघ का सदस्य नहीं है राष्ट्रसंघ के किसी सदस्य देश के विरुद्ध युद्ध छेड़े तो उसके साथ भी १६वीं धारा के अनुसार व्यवहार किया जायेगा।

प्रतिश्रव के द्वारा युद्ध पूर्ण रूप से वर्जित न थे। अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध भी उसी समय वैध माना जा सकता था जबकि उन देशों का विवाद पहले राष्ट्र-संघ में मध्यस्थता के लिए रखा गया हो और वह उसे निर्विरोध सुलझाने म असमर्थ रही हो। प्रतिश्रव की अवहेलना कर यदि कोई राष्ट्र युद्ध छेड़ दे तो धारा १६ राष्ट्रसंघ के अन्य सदस्य राष्ट्रों को आक्रान्ता देश के साथ आर्थिक, व्यापारिक और वैयक्तिक सम्बन्ध तोड़ने के लिए बाध्य करती थी। ऐसी स्थिति पहुंचने पर कौंसिल राष्ट्रसंघ के सदस्य राष्ट्रों को यह सिफारिश करेगी कि वे प्रतिश्रव की व्यवस्था कायम रखने के लिए प्रभावात्मक सैनिक, नौसैनिक तथा वायु सेना शक्ति का प्रयोग करें।

(२) **शांति की स्थापना**—युद्ध बन्द करने के निषेधात्मक प्रयत्नों के साथ साथ राष्ट्रसंघ, युद्धोत्पादक कारणों को भी दूर करने के लिये सक्रिय तौर पर, सचेष्ट था। इसके लिये प्रतिश्रव ने गुप्त संधि प्रथा रद्द कर दी। ऐसी व्यवस्था की कि कोई भी संधि तब तक व्यवहार म नहीं आ सकती जब तक कि उसे राष्ट्र संघ के सचिवालय की स्वीकृति न मिल जाय। इसके अतिरिक्त सदस्य देशों ने एक प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर भी किये, जिसके अन्तर्गत उन्होंने उन सब पुरानी संधियों को रद्द कर दिया जो कि प्रतिश्रव की मूल नीति से टक्कराव खाती थीं तथा भविष्य में प्रतिश्रव के सिद्धांतों के अनुकूल ही नई संधियां करने का वचन दिया। प्रतिश्रव ने 'यथा स्थिति' (Status quo) पर बहुत अधिक बल देने के भय को समझ कर उन संधियों पर पुनः विचार करने की व्यवस्था की जो कि अव्यवहार्य हो चुकी थीं और जिनके चालू रहने से संसार की शान्ति को खतरा था। प्रतिश्रव शस्त्रों की होड़ को

घटाने के लिए सक्रिय और सचेष्ट था। इस कार्य-सिद्धि के लिए उसने सदस्य देशों को प्रेरित किया कि 'वे केवल राष्ट्रीय सुरक्षा के निमित्त ही शस्त्र-सज्जा रखें, व्यक्तिगत उद्योगों के द्वारा शस्त्रास्त्रों का तैयार करना भयंकर प्रतिवाद का सामना करना है।" प्रतिश्रव ने कौंसिल को अस्त्र-शस्त्र घटाने के स्पष्ट निर्देश दिये।

(३) **पेरिस सन्धि को अमल में लाना :**—श्लेसविग, पूर्वी प्रसिया और अपर सिलिशिया में जनमत का निरीक्षण राष्ट्र संघ का दायित्व था। १५ वर्ष के लिए डांजिग नगर की व्यवस्था तथा सार के शासन का भार भी इसे उठाना था। अल्पमतों की सुरक्षा के लिए विशेष संधियों का प्रबन्ध करना था।

(४) **मानवीय सहयोग को प्रोत्साहन :**—मनुष्य मात्र से सम्बन्ध रखने वाले मामलों में मनुष्यता के आधार पर सहयोग स्थापित करना भी राष्ट्र-संघ का एक ध्येय रहा। इसके अन्तर्गत पुरुष, स्त्री और बच्चों के उपयुक्त ही श्रम-व्यवस्था कायम करना था। उपनिवेशों के आदि निवासियों के प्रति न्यायपूर्ण बर्ताव करना था। राष्ट्र संघ के सदस्य देशों में परस्पर युक्ति संगत समान व्यापार, व्यवसाय और संचार स्थापित करना था। अफीम जैसे मादक तथा हानिकारक द्रव्यों तथा अस्त्र शस्त्रों का सदस्य देशों के साथ व्यापार नियमित करना था। बीमारियों की रोक-थाम और निराकरण का उत्तरदायित्व भी संघ ने लिया था। संसार के कष्टों का उन्मूलन करने के लिए राष्ट्रीय आधार पर रेड क्रास को सगठित करना भी इसके उद्देश्यों के अन्तर्गत था। संक्षेप में प्रतिश्रव का ध्येय उस नवीन जगत् का निर्माण करना था, जिसमें शान्तिपूर्ण सहयोग की शिला पर सार्वजनिक सुरक्षा की सुदृढ़ नींव पड़ी हो।

सदस्यता :—राष्ट्रसंघ के प्रारम्भिक सदस्य ३१ हस्ताक्षर कर्त्ता थे, जिनके नाम प्रतिश्रव के परिशिष्ट में उल्लिखित हैं। चीन, सेंट जर्मन की संधि पर हस्ताक्षर करके, ३२वां सदस्य बन गया। इन ३२ हस्ताक्षर कर्त्ताओं में से ३ हस्ताक्षर कर्त्ता—ईक्वेडोर, हेजाज और अमेरिका—संधियों को

अभिपुष्ट करने में असफल रहे। अप्रैल १९२० तक ४२ देश राष्ट्रसंघ के सदस्य बन गये। इसके पश्चात् २१ देश और इसमें शामिल हो गये।* संसार के जिन ६ राष्ट्रों ने कभी भी सदस्यता के लिए प्रार्थना पत्र नहीं भेजा वे निम्न हैं : सउदी अरेबिया, यमन, ओमन, नेपाल, मांचूको और संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका। कोई भी सार्वभौम-सत्ता संपन्न देश, उपनिवेश अथवा राज्य इस संघ का सदस्य हो सकता था यदि उसे साधारण सभा के दो तिहाई मतों की सहमति प्राप्त हो तथा वह अन्तर्राष्ट्रीय नियमों के पालन करने का विश्वास दिला सके।

दो वर्ष पूर्व सूचना देकर कोई भी सदस्य देश राष्ट्र संघ से पृथक् हो सकता था। १९३२ में कोस्टारिका और ब्राजील ने क्रमशः 'आर्थिक' और 'सम्मान' के आधारों पर संघ की सदस्यता से त्याग-पत्र दे दिया। जापान ने २७ मार्च १९३३ तथा जर्मनी ने ४ अक्तूबर १९३३ में राजनैतिक कारणों से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। १ सितम्बर १९३९ को द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ होने पर राष्ट्र संघ के केवल ४६ सदस्य रह गये। इथोपिया, आस्ट्रिया, अल्बेनिया और चेकोस्लोवाकिया आदि चार सदस्य राष्ट्र नष्ट किये जा चुके थे। १९४० के ग्रीष्म तक सारा राष्ट्रसंघ एक स्मृति मात्र बन गया क्योंकि अब बड़ी शक्तियों में ब्रिटेन और छोटी ३१ रियासतें ही उनकी सदस्य रह गई। १६ मई को सरकारी तौर पर राष्ट्रसंघ की समाप्ति की घोषणा कर दी गई।

इस राष्ट्रसंघ ने अपने काल में एक साधारण सभा, एक परिषद (कौन्सिल) और एक स्थायी सचिवालय के द्वारा कार्य किया।

---

*१९२० में अल्बानिया, फिनलैंड, बल्गारिया, आस्ट्रिया, कोस्टारिका और लक्समबर्ग सदस्य बने। १९२२ में इस्थोनिया, लैटिविया और लिथुनिया तथा १९२३ में हंगरी, इथोपिया और स्वतन्त्र आइरिश राज्य, १९२४ में औपनिवेशिक गणराज्य, १९२६ में जर्मनी, १९३१ में मैक्सिको, १९३२ में टर्की और इराक, १९३४ में अफगानिस्तान, ईक्वेडोर और रूस तथा १९३७ में मिस्र भी राष्ट्रसंघ का सदस्य बन गया।

साधारण सभा (असेम्बली)—इसमें समस्त सदस्य देशों के प्रतिनिधि थे, एक सदस्य राष्ट्र के अधिक से अधिक तीन प्रतिनिधि हो सकते थे पर परम्परावश मत संख्या एक ही सीमित थी। साधारण सभा का अधिवेशन वार्षिक रूप में सितम्बर के मास में जेनेवा में हुआ करता था किन्तु कई आवश्यक कारणों वश विशेष अधिवेशन भी हुए। इस साधारण सभा (असेम्बली) की प्रथम बैठक १५ नवम्बर १९२० को प्रेसिडेन्ट विलसन की अध्यक्षता में हुई और अन्तिम तथा २०वां अधिवेशन १४ दिसम्बर १९३९ को हुआ। सभा अपने अध्यक्षों का निर्वाचन स्वतः करती थी। इसका कार्यक्रम महामन्त्री द्वारा तैयार किया जाता था या आवश्यकतानुसार अधिवेशन में संशोधन हो सकता था। साधारण सभा की ६ स्थायी समितियां निम्न कार्यों के लिए थीं; (१) वैधानिक और कानूनी प्रश्न (२) टेक्नीकल संस्थाएं (३) शस्त्रास्त्र का विघटन (४) बजट और आन्तरिक व्यवस्था (५) सामाजिक समस्याएं (६) राजनैतिक प्रश्न। इस साधारण सभा को विशेष प्रश्न के लिये विशेष समिति नियुक्त करने का भी अधिकार था।

धारा ३ के अन्तर्गत सभा का कार्यक्षेत्र व्यापक था। परन्तु प्रायः सभा की रुचि निम्न तीन विषयों को सुलझाने में ही लगती थी; (अ) चुनाव सम्बन्धी (ब) अंगीभूत विषय (Constituent) (स) परामर्शदान। चुनाव सम्बन्धी कार्यप्रणाली के अन्तर्गत सभा के निम्न कर्तव्य थे। दो तिहाई वोटों से नये सदस्यों का चुनाव; साधारण बहुमत द्वारा परिषद् (कौंसिल) के अस्थायी सदस्यों में से ३ को सभा के लिये चुनना; प्रति ९ वर्ष के लिये स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के लिए १५ (जजों) निर्णायकों को चुनना, परिषद् में महामन्त्री की नियुक्ति की स्वीकृति देना। अंगीभूत कार्यों में से प्रतिश्रव के नियमो में ऐसा संशोधन करे जो परिषद् को तो सर्वसम्मति से स्वीकृत हो तथा प्रभावित सदस्य देशों की रुचि के अनुकल हो सके। परामर्श के क्षेत्र मे अन्तर्राष्ट्रीय हित से सम्बन्ध रखने वाले आर्थिक, राजनैतिक

तथा टकनिकल विषयों का साधारण दिग्दर्शन, अव्यवहार्य सन्धियों में संशोधन अ र उनकी पुनरावृत्ति के लिये सुझाव पेश करना, परिषद् के कार्यक्रम की पड़ताल तथा सालाना बजट तैयार करना।

१,०,०००,००० डालर का वार्षिक बजट जिन तीन मुख्य मदों में व्यय किया जाता था, वे निम्न हैं:—एक सचिवालय, दूसरा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय, तीसरा अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय। व्यय की ९२३. इकाइयों में से ग्रेट ब्रिटेन को १०८, रूस को ९४, भारत को ४९ और अल्बानिया को सिर्फ १ अदा करनी होती थी।

परिषद् (कौंसिल)—प्रारम्भ में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, ब्रिटेन फ्रांस, इटली और जापान इसके स्थायी सदस्य थे इसके साथ ४ अस्थायी भी होते थे। संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के इन्कार करने पर स्थायी और अस्थायी सदस्यों की संख्या सन्तुलित हो गई। १९२२ में अस्थायी सदस्यों की संख्या २ और बढ़ा दी गई। जर्मनी और रूस जब तक परिषद् के सदस्य रहे वे स्थायी ही बने रहे। १९३९ तक परिषद् (कौन्सिल) में ब्रिटेन, फ्रांस और रूस स्थायी सदस्य और इनके साथ केवल ११ अस्थायी सदस्य थे।

परिषद् का कार्यक्षेत्र भी साधारण सभा की तरह असीमित था। १९२९ के बाद इसका अधिवेशन वर्ष में जनवरी, मई और सितम्बर में तीन बार होने लगा। प्रतिश्रव की धारा ४ के अन्तर्गत इसका कार्यक्षेत्र निर्धारित था। फ्रांसीसी वर्णमाला के आधार पर इसके कार्यवाहक प्रधान बारी-बारी से चुने जाते थे। परिषद् के सब निश्चय सर्वसम्मत होते थे केवल कार्यवाही सम्बन्धी निर्णयों का अपवाद रखा गया। परिषद् के लिए मुख्य विचारणीय विषय निम्न होते थे:—अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों का निपटारा, शस्त्रास्त्र निराकरण के सुझावों की समीक्षा, आज्ञप्ति-प्राप्त (मैन्डेटरीज) प्रदेशों की वार्षिक रिपोर्ट पर विचार और सदस्य देशों का बाह्य आक्रमण से बचाव करना। सचिवालय के पदाधिकारियों के अतिरिक्त परिषद् के महामंत्री की नियुक्ति भी परिषद् ही करती थी।

सचिवालय--यह लीग का स्थाई प्रशासन अंग था। इसमें अंतर्राष्ट्रीय सिविल सर्विस के ६०० योग्य अधिकारी काम करते थे। सचिवालय का प्रधान सेक्रेटरी जनरल (महामंत्री) होता था, जिसे परिषद् महासभा की अनुमति से नियुक्त करती थी। इस पद पर १९२० से १९३३ तक ब्रिटेन के सर एरिक ड्रमंड रहे और इसके बाद फ्रांस के जोसेफ एवेनेल द्वारा १९४० में त्यागपत्र देने के कारण उनके स्थान पर आयरलैंड के सीन लेस्टर स्थानापन्न महामन्त्री नियुक्त किये गये। सचिवालय के अधिकारी, जो योग्यता के आधार पर महामंत्री द्वारा नियुक्त किए जाते थे वास्तव में वे अपने देशों के हित का प्रतिनिधित्व नहीं करते थे। महामंत्री की सहायता के लिए दो सहकारी सचिव और दो उप-सहकारी सचिव होते थे। इन चारों पदों पर राष्ट्रसंघ के सदस्य बड़े राष्ट्रों के ही नागरिक नियुक्त होते थे।

सचिवालय ११ विभागों में विभाजित था, जिसका संचालन अध्यक्षों के आधीन होता था। महामंत्री राष्ट्रसंघ के सदस्यों द्वारा की हुई समस्त संधियों के रजिस्ट्रेशन तथा प्रकाशन के लिये उत्तरदायित्व होता था। १९४१ तक ४७३३ प्रमाणपत्र रजिस्टर किये गये। राष्ट्रसंघ के विचारार्थ जटिल समस्याओं सम्बन्धी आवश्यक सूचना प्राप्त करना तथा उसे प्रकाशित करना, बैठक का कार्य-क्रम तैयार करना, भाषणों को फ्रांसीसी और अंग्रेजी भाषा में अनुवाद करना, राष्ट्रसंघ की सरकारी पत्रिका में महासभा तथा परिषद् की कार्रवाइयों को प्रकाशित करना संचिवालय के अधिकारियों का काम था।

राष्ट्रसंघ की सहायता के लिए टैक्निकल संस्था तथा सलाहकार समिति के नाम से कई सहायक संस्थाएं स्थापित की गई थीं। राष्ट्रसंघ की ५ विशेष टैक्निकल संस्थाओं के नाम इस प्रकार थे: अन्तर्राष्ट्रीय स्थाई न्यायालय, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संघ, आर्थिक तथा वित्तीय-संघ, संवाहन तथा यातायात संस्था और स्वास्थ्य संघ। सलाहकार

तथा टकनिकल विषयों का साधारण दिग्दर्शन, अव्यवहार्य सन्धियों में संशोधन और उनकी पुनरावृत्ति के लिये सुझाव पेश करना, परिषद् के कार्यक्रम की पड़ताल तथा सालाना बजट तैयार करना।

१०,०००,००० डालर का वार्षिक बजट जिन तीन मुख्य मदों मे व्यय किया जाता था, वे निम्न हैं:—एक सचिवालय, दूसरा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय, तीसरा अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय। व्यय की ९२३ इकाइयों में से ग्रेट ब्रिटेन को १०८, रूस को ९४, भारत को ४९ और अल्बानिया को सिर्फ १ अदा करनी होती थी।

परिषद् (कौंसिल)—प्रारम्भ मे संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, ब्रिटेन फ्रांस, इटली और जापान इसके स्थायी सदस्य थे इसके साथ ४ अस्थायी भी होते थे। संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के इन्कार करने पर स्थायी और अस्थायी सदस्यों की संख्या सन्तुलित हो गई। १९२२ मे अस्थायी सदस्यों को संख्या २ और बढ़ा दी गई। जर्मनी और रूस जब तक परिषद् के सदस्य रहे वे स्थायी ही बने रहे। १९३९ तक परिषद् (कौन्सिल) मे ब्रिटेन, फ्रांस और रूस स्थायी सदस्य और इनके साथ केवल ११ अस्थायी सदस्य थे।

परिषद् का कार्यक्षेत्र भी साधारण सभा की तरह असीमित था। १९२९ के बाद इसका अधिवेशन वर्ष में जनवरी, मई और सितम्बर में तीन बार होने लगा। प्रतिश्रव की धारा ४ के अन्तर्गत इसका कार्यक्षेत्र निर्धारित था। फ्रांसीसी वर्णमाला के आधार पर इसके कार्यवाहक प्रधान बारी-बारी से चुने जाते थे। परिषद् के सब निश्चय सर्वसम्मत होते थे केवल कार्यवाही सम्बन्धी निर्णयों का अपवाद रखा गया। परिषद् के लिए मुख्य विचारणीय विषय निम्न होते थे—अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों का निपटारा, शस्त्रास्त्र निराकरण के सुझावों की समीक्षा, आदेशित-शासन (मैन्डेटरीज) प्रदेशों की वार्षिक रिपोर्ट पर विचार और सदस्य देशों का बाह्य आक्रमण से बचाव करना। सचिवालय के पदाधिकारियों के अतिरिक्त परिषद् के महामंत्री की नियुक्ति भी परिषद् ही करती थी।

सचिवालय—यह लीग का स्थाई प्रशासन अंग था। इसमें अंत-र्राष्ट्रीय सिविल सर्विस के ६०० योग्य अधिकारी काम करते थे। सचिवालय का प्रधान सेक्रेटरी जनरल (महामंत्री) होता था, जिसे परिषद् महासभा की अनुमति से नियुक्त करती थी। इस पद पर १९२० से १९३३ तक ब्रिटेन के सर एरिक ड्रूमंड रहे और इसके बाद फ्रांस के जोसेफ एवेनेल द्वारा १९४० में त्यागपत्र देने के कारण उनके स्थान पर आयरलेंड के सीन लेस्टर स्थानापन्न महामन्त्री नियुक्त किये गये। सचिवालय के अधिकारी, जो योग्यता के आधार पर महामंत्री द्वारा नियुक्त किए जाते थे वास्तव में वे अपने देशों के हित का प्रतिनिधित्व नहीं करते थे। महामंत्री की सहायता के लिए दो सहकारी सचिव और दो उप-सहकारी सचिव होते थे। इन चारों पदों पर राष्ट्रसंघ के सदस्य बड़े राष्ट्रों के ही नागरिक नियुक्त होते थे।

सचिवालय ११ विभागों में विभाजित था, जिसका संचालन अध्यक्षों के आधीन होता था। महामंत्री राष्ट्रसंघ के सदस्यों द्वारा की हुई समस्त संधियों के रजिस्ट्रेशन तथा प्रकाशन के लिये उत्तरदायित्व होता था। १९४१ तक ४७३३ प्रमाणपत्र रजिस्टर किये गये। राष्ट्रसंघ के विचारार्थ जटिल समस्याओं सम्बन्धी आवश्यक सूचना प्राप्त करना तथा उसे प्रकाशित करना, बैठक का कार्य-क्रम तैयार करना, भाषणों को फ्रांसीसी और अंग्रेजी भाषा में अनुवाद करना, राष्ट्रसंघ की सरकारी पत्रिका में महासभा तथा परिषद् की कार्रवाइयों को प्रकाशित करना संचिवालय के अधिकारियों का काम था।

राष्ट्रसंघ की सहायता के लिए टैक्निकल संस्था तथा सलाहकार समिति के नाम से कई सहायक संस्थाएं स्थापित की गई थीं। राष्ट्रसंघ की ५ विशेष टैक्निकल संस्थाओं के नाम इस प्रकार थे: अन्तर्राष्ट्रीय स्थाई न्यायालय, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संघ, आर्थिक तथा वित्तीय-संघ, संवाहन तथा यातायात संस्था और स्वास्थ्य संघ। सलाहकार

थे, एक को मजदूर चुनते थे और एक को मालिक वर्ग। इसकी बैठक वर्ष में एक बार होती थी। प्रतिनिधि वैयक्तिक रूप मे मत देते थे। ये प्रतिनिधि श्रम कानूनों पर सिफारिशें या मसविदे को दो तिहाई बहुमत से पास करते थे जो कि एक वर्ष के भीतर सदस्य राष्ट्रों की राष्ट्रीय सरकार के सामने स्वीकृति के लिये रक्खे जा सकते थे।

शासन संस्था में ३२ सदस्य होते थे, जिन्हें ३ वर्ष के लिये चुना जाता था। इसकी बैठकें हर तीन मास बाद होती थीं। इन सदस्यों में से १६ सदस्य, सदस्य राष्ट्रों द्वारा नियुक्त किये जाते थे (८ राष्ट्र अधिक औद्योगिक महत्व के होते थे)। ८ सदस्य सम्मेलन में मालिक वर्ग के प्रतिनिधियों द्वारा निर्वाचित किये जाते थे और शेष ८ मजदूर वर्ग द्वारा चुने जाते थे। शासन संस्था सम्मेलनों का कार्यक्रम बनाती थी अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ के अध्यक्ष नियुक्त करती थी और संघ के कार्यों की देख भाल करती थी।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय में अध्यक्ष द्वारा नियुक्त ३५० विशेषज्ञ होते थे। यह संघ का सचिवालय था। इसका काम सूचनाओं का संकलन तथा वितरण करना, सम्मेलन के निर्णयों के आधार पर सरकार द्वारा कानूनों का मसविदा तैयार करने की प्रार्थना पर उनको सहयोग देना, विशेष जाँचें करना तथा सम्मेलनों की सफलता के लिये साधन उपलब्ध करना होता था। यह एक सरकारी पत्रिका, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम विज्ञप्ति तथा अन्य रिपोर्टें तथा महत्वपूर्ण सूचनाएं प्रकाशित करती थी। अल्बर्ट थामस अपने मृत्युकाल (अगस्त १९३२) तक इसके अध्यक्ष रहे। इसके बाद इस पद पर हेरोल्ड बटलर, जान विनेंट व एडवर्ड फेलान रहे। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ का व्यय राष्ट्रसंघ के बजट में से होता था। अब यह संयुक्त राष्ट्र संघ से सम्बद्ध है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ के निम्नलिखित उद्देश्य थे: १. सामाजिक न्याय की दृष्टि से स्थायी शान्ति स्थापना में योग देना; २. अन्त-

राष्ट्रीय कारंवाई द्वारा श्रमिकों की स्थिति व जीवन स्तर में सुधार करना तथा आर्थिक व सामाजिक स्थिरता को प्रोत्साहित करना। संक्षेप में श्रम कानून में समानता लाने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ सरकार, मजदूरों व मालिकों में सम्पर्क स्थापित करने के लिये एक बहुत बड़ा साधन रहा। यह मजदूरों के वेतनों, काम करने का समय, क्षतिपूर्ति, सामाजिक बीमा, वेतन सहित छुट्टी, औद्योगिक सुरक्षा, श्रम जांच, मिलने जुलने की स्वतंत्रता व सफाई आदि जैसे विषयों सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलनों का मसविदा तैयार करता था।

अमरीका का असहयोग

जर्मनी के हारने के बाद अमरीका राजनीतिक उथल-पुथल का केन्द्र बन गया। डेमोक्रेटिक पार्टी के नेता प्रेसिडेन्ट विलसन विरोधी रिपब्लिकन पार्टी के शिकार बने हुए थे। नवम्बर १९१८ में कांग्रेस के चुनावों में रिपब्लिकन दल की जीत हुई और सेनेट में बहुमत प्राप्त हुआ जिसकी बहुमत संधियों के लिये आवश्यक थी। विलसन ने पेरिस में होने वाले शांति कांग्रेस के डेमोक्रेट पार्टी की सहायता ली और रिपब्लिकन नेताओं की उपेक्षा की, जिसका फल यह हुआ कि सेनेट-बहुमत इनके खिलाफ चली गई। रिपब्लिकन पार्टी ने उनको नीचा दिखाने के लिये उन पर अन्यायी तानाशाही तथा अमरीका के हित का बलिदान करने के आरोप लगाये। जब प्रेसिडेन्ट विलसन जुलाई १९१९ में अमरीका लौटे और राष्ट्रसंघ-प्रतिश्रव तथा वर्सेल संधि पर आवश्यक स्वीकृति की मांग की तो उन्हें सेनेट बहुमत की तरफ से कड़ा विरोध का सामना करना पड़ा। लगभग २ वर्ष तक प्रेसिडेन्ट विलसन और सेनेट-बहुमत में गतिरोध रहा। विलसन की मृत्यु के पश्चात् झगड़ा समाप्त हो गया। नवम्बर १९२० के चुनावों में विलसन के एक डेमोक्रेट समर्थक की हार हुई और सेनेट के एक रिपब्लिकन सदस्य वारन हार्डिंग निर्वाचित हुए। मार्च १९२१ में नये प्रेसिडेन्ट

ने घोषणा की कि वर्तमान राष्ट्रसंघ में रिपब्लिकन सरकार कोई भाग नहीं लेगी। अमरीका ने जर्मनी, आस्ट्रिया और हंगरी से पृथक-पृथक शांति संधियां की। इस प्रकार अमरीका ने राष्ट्रसंघ के विशेष बुलावे पर निशस्त्रीकरण सम्मेलनों में भाग लिया। १९३४ में उसने अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ की सदस्यता स्वीकार की। वास्तव में आरम्भ से ही अमरीका द्वारा राष्ट्रसंघ में भाग न लेने से संघ को बड़ी क्षति पहुँची क्योंकि इससे राष्ट्रसंघ को एक बड़े राष्ट्र का नैतिक समर्थन व सहयोग प्राप्त नहीं हो सका।

साधारण मामलों में राष्ट्रसंघ की मध्यस्थता

राष्ट्रों के बीच राजनीतिक झगड़े के शांतिपूर्वक निबटारे व युद्ध को रोकने में राष्ट्रसंघ को सम्पूर्ण सहायता नहीं मिली। निस्संदेह संघ ने अपनी संस्थाओं द्वारा इस सम्बन्ध में सहयोग अदा किया। २० वर्ष में संघ ने ४० छोटे-बड़े राजनीतिक झगड़ों की जांच की। छोटे राज्यों के मामलों को सुलझाने में राष्ट्रसंघ अधिक दृढ़ और सफल सिद्ध हुआ।

आलैंड द्वीप विवाद

राष्ट्रसंघ को सुलझाने के लिये सबसे पहले आलैंड द्वीपों का विवाद मिला। यह विवाद फिनलैंड और स्वीडन के बीच था। आलैण्ड द्वीप जिसकी जनसंख्या १९२० में २७००० थी स्वीडन फिनलैंड के बीच बसा है। इस पर वर्षों तक स्वीडन का कब्जा रहा लेकिन नेपोलियन के युद्धों में यह द्वीप फिनलैंड के साथ रूस के हाथों में गया। १९०९ से १९१७ तक रूस ने फिनलैंड के आलैंड द्वीपों पर एक शासनीय इकाई के रूप में राज्य किया। रूसी क्रांतियों के बाद फिनलैंड स्वतंत्र हो गया और स्वीडन ने उसकी मान्यता स्वीकार कर ली। आलैंड द्वीप को कुछ भी नहीं मिला यद्यपि वहां के लोग स्वीडिश थे और स्वीडिश भाषा बोलते थे। इसीलिये जब ही आलैंड द्वीप के रहने वालों ने

स्वायत्त-शासन की मांग करते हुए, स्वीडन के साथ संघ बनाने का आन्दोलन किया। जब अंत में खुले विद्रोह की आशंका पक्की हो गई तो फिनलैंड की फौजें आलैंड द्वीप में उतारी गई और दो पृथकवादी नेता तत्काल गिरफ्तार कर लिये गये। स्वीडन में जनता की आवाजें बुलन्द हुई और वहां युद्ध-कालीन सी स्थिति पैदा हो गई। जुलाई १९२० में जब फिनलैंड राष्ट्रसंघ का सदस्य नहीं था तो इंगलैंड ने इस ओर महामंत्री ड्रूमेण्ड का ध्यान आकर्षित किया। प्रत्येक दल के प्रतिनिधि परिषद के सामने उपस्थित हुए और अपने अपने विचार प्रकट किये। फिनलैंड के प्रतिनिधि ने कहा कि यह मामला बिलकुल घरेलू है और युद्ध का खतरा निर्मूल है। साथ ही जब स्वीडन ने फिनलैंड की स्वतंत्रता को मान्यता दी थी तो आलैंड द्वीप के सम्बन्ध में कुछ तय नहीं किया गया था। स्वीडन के प्रतिनिधि ने संकेत किया कि आलैंडवासी स्वीडन के साथ मिलना चाहते हैं और स्वीडन ने आंदोलन का समर्थन नहीं किया था, उसने केवल जनमत संग्रह का प्रस्ताव रखा था।

परिषद ने इस मामले को कानून विशेषज्ञों की एक समिति के सुपुर्द कर दिया और स्वीडन, फिनलैंड व आलैंड के भ्रमण के लिए एक और समिति नियुक्त की जिससे वह रकम इकट्ठा कर सके। इन समितियों की रिपोर्टों पर परिषद ने २४ जून १९२१ को निम्नलिखित निर्णय दिए। (१) फिनलैंड या आलैंड द्वीप पर साम्राज्य स्थापित रहेगा; (२) आलैंड वासियों को एकाधिकार शासन तथा उनके राजनीतिक अधिकारों की सुरक्षा की गारंटी दी जाय; (३) मिली सम्पत्ति का अधिकार व स्कूलों में स्वीडिश भाषा का प्रयोग कायम रखा जाय और (४) द्वीप को अतटस्थ घोषित किया जाय और उस पर से मोर्चाबन्दी हटा ली जाय। ६ अप्रैल १९२२ को द्वीपों को अतटस्थ घोषित करते हुए एक नई अन्तर्राष्ट्रीय संधि की गई।

विलना विवाद

जार के गद्दी से उतरने तथा जर्मनी के हारने के पश्चात् पोलैण्ड व लिथुआनिया ने क्रमशः वारसा व विलना में अपनी अपनी सरकारें बना लीं। वर्सेल्स संधि के अन्तर्गत 'कर्जन रेखा' एक अस्थाई सीमा बनाई गई थी जिसके अनुसार विलना लिथुआनिया को सौंप दिया गया था। १९२० में बोल्शेविकों ने विलना पर कब्जा कर लिया लेकिन रूस व लिथुआनिया की मास्को-संधि (१२ जुलाई १९२०) के अनुसार विलना फिर लिथुआनिया में मिला दिया गया। जब रूसियों को एक बार फिर हटा दिया गया तो पोलैण्ड व लिथुआनियनों में विलना पर सीधी लड़ाई छिड़ गई। पोलैंड ने राष्ट्रसंघ में अपील की। राष्ट्रसंघ की परिषद् ने तुरन्त ही वहाँ एक सैनिक कमीशन भेजा। ७ अक्तूबर १९२० को पोलैंड व लिथुआनिया की सरकारों ने एक युद्ध विराम समझौते पर हस्ताक्षर किए जिसके अनुसार विलना लिथुआनिया में ही रहा। यह समझौता १० अक्तूबर से लागू होने वाला था लेकिन ९ अक्तूबर को एक स्वतन्त्र पोलिश कमांडर जनरल जेलीगोस्की ने पोलैंड की फौजों की सहायता से लिथुआनियनों को विलना से बाहर निकाल दिया। पोलैंड सरकार ने जनरल जेलीगोस्की की इस कार्रवाई पर कोई भी उत्तरदायित्व लेना स्वीकार नहीं किया और यह भी कहा कि बिना जनमत संग्रह हुए विलना से उनको निकाला गया तो इसका विरोध किया जायेगा। परिषद दो वर्ष (१९२०-२१) तक इस झगड़े को सुलझाने में असफल रही। अन्त में १३ जनवरी १९२२ को परिषद ने विलना से कमीशन को वापस बुला लिया और इस प्रकार समस्या को सुलझाने में अपनी असमर्थता प्रगट की। पोलैंड द्वारा विलना में निर्वाचित एक विधानसभा (असेम्बली) ने विलना को पोलैंड में मिलाने के पक्ष में वोट दिया। ३ फरवरी १९२३ को परिषद् ने दोनों देशों के बीच पुनः सीमा निर्धारण किया जिसके अनुसार विलना पोलैंड में

मिला दिया गया। लिथुआनिया ने इसका विरोध किया और नई सीमा को स्वीकार नहीं किया। उसका इस प्रश्न पर वार्ता पुनः शुरू करने का प्रयास विफल रहा। संक्षेप में पोलैंड ने अपनी शक्ति से विलना पर कब्जा कर लिया और इस प्रकार पोलैंड और लिथुआनियां का लम्बा विवाद समाप्त हो गया।

मेमेल मामला

इसी समय लिथुआनिया द्वारा मेमेल पर अधिकार करने के कारण विलना-विवाद की हार की कटुता कुछ शांत पड़ गई। वर्सेल संधि के अनुसार मेमेल पोलैंड का एक भाग था जिसे जर्मनी ने मित्र-राष्ट्रों को समर्पण कर दिया था। मेमेल पर मित्र-राष्ट्र का एक हाई कमिश्नर शासन करता था और उसकी सहायता फ्रांसीसी फौजें करती थीं। यह बात सुनने में आई थी कि डांजिग के हाथ से चले जाने पर पोलैंड ने मेमेल को अपना हिस्सा बनाना चाहा था। मित्रराष्ट्रों ने भी महसूस किया कि मेमेल का दर्जा भी डांजिग की तरह बना दिया जाय। इस पर लिथुआनिया वाले चिढ़ गये। जनवरी १९२३ के शुरू में लिथुआनिया की फौजों ने मेमेल में प्रवेश करके फ्रांसीसी फौजों को हटा दिया और वहां एक अस्थायी सरकार की स्थापना की। सितम्बर में इस सम्पूर्ण विवाद को राष्ट्र संघ के सामने रखा गया। परिषद् ने नार्मन एच डेविस के नेतृत्व में एक विशेष कमीशन नियुक्त किया। परिषद् ने कमीशन की रिपोर्ट स्वीकार कर ली जिसको बाद में १५ मार्च १९२४ को लिथुआनिया तथा मित्रराष्ट्रों ने भी मान लिया। लिथुआनिया को मेमेल पर सार्वभौमिक सत्ता का अधिकार सौंपा गया। इस मामले में केवल पोलैंड ने विरोध किया लेकिन उसका प्रयत्न असफल सिद्ध हुआ।

ऊपरी साइलेशिया की समस्या

ऊपरी साइलेशिया के मामले में वर्सेल संधि की धाराओं को कार्या-

विलना विवाद

जार के गद्दी से उतरने तथा जर्मनी के हारने के पश्चात् पोलैंड व लिथुआनिया ने क्रमशः वारसा व विलना में अपनी अपनी सरकारें बना लीं। वर्साय सन्धि के अन्तर्गत 'कर्जन रेखा' एक अस्थाई सीमा बनाई गई थी जिसके अनुसार विलना लिथुआनिया को सौंप दिया गया था। १९२० में बोल्शेविकों ने विलना पर कब्जा कर लिया लेकिन रूस व लिथुआनिया की मास्को-सन्धि (१२ जुलाई १९२०) के अनुसार विलना फिर लिथुआनिया में मिला दिया गया। जब रूसियों को एक बार फिर हटा दिया गया तो पोलैंड व लिथुआनियनों में विलना पर सीधी लड़ाई छिड़ गई। पोलैंड ने राष्ट्रसंघ से अपील की। राष्ट्रसंघ की परिषद् ने तुरन्त ही वहाँ एक सैनिक कमीशन भेजा। ७ अक्तूबर १९२० को पोलैंड व लिथुआनिया की सरकारों ने एक युद्ध विराम समझौते पर हस्ताक्षर किए जिसके अनुसार विलना लिथुआनिया में ही रहा। यह समझौता १० अक्तूबर से लागू होने वाला था लेकिन ९ अक्तूबर को एक स्वतन्त्र पोलिश कमांडर जनरल जेलीगोस्की ने पोलैंड की फौजों की सहायता से लिथुआनियनों को विलना से बाहर निकाल दिया। पोलैंड सरकार ने जनरल जेलीगोस्की की इस कार्रवाई पर कोई भी उत्तरदायित्व लेना स्वीकार नहीं किया और यह भी कहा कि बिना जनमत संग्रह हुए विलना से उनको निकाला गया तो इसका विरोध किया जायेगा। परिषद दो वर्ष (१९२०-२१) तक इस झगड़े को सुलझाने में असफल रही। अन्त में १३ जनवरी १९२२ को परिषद ने विलना से कमीशन को वापस बुला लिया और इस प्रकार समस्या को सुलझाने में अपनी असमर्थता प्रगट की। पोलैंड द्वारा विलना में निर्वाचित एक विधानसभा (असेम्बली) ने विलना को पोलैंड में मिलाने के पक्ष में वोट दिया। ३ फरवरी १९२३ को परिषद् ने दोनों देशों के बीच पुनः सीमा निर्धारण किया जिसके अनुसार विलना पोलैंड में

नहीं किया था। यूगोस्लाविया और यूनान ने अपनी सीमा के उस क्षेत्र पर काबू कर लिया था जिसका निर्धारण १९१३–१४ में किया गया था। अलवानिया का सीमा निर्धारण का प्रश्न उलझ गया। दिसम्बर १९२० को अलवानिया को राष्ट्र-संघ का सदस्य बना लिया गया। राज्य होने के आधार पर अलवानिया की स्वतंत्रता को मान्यता दी गई। १९२१ में यूगोस्लाविया के १२०० सशस्त्र सैनिकों ने अलवानिया पर आक्रमण किया इससे एक और वाल्कन–युद्ध का खतरा पैदा हो गया। रा० मंघ की परिषद् ने राजदूतों की एक परिषद् बनाई और उसने १९१३–१४ के सीमा निर्धारण के अनुसार अलवानिया की सीमा निर्धारित की। परिषद् ने अलवानिया से यूगोस्लाविया की सब फौजों के हटने का आदेश दिया।

मोसुल विवाद

लासेन-संधि के अंतर्गत समझौता हुआ था कि तुर्की व इराक की सीमा ९ मास के अन्दर तुर्की व ब्रिटेन के एक मैत्रीपूर्ण समझौते के अनुसार निर्धारित की जाय। ऐसा न होने पर इस मामले को राष्ट्र-संघ की परिषद् के समक्ष रखा जाय। दोनों देशों के प्रतिनिधि कुस्तुनतुनियां में मिले लेकिन वे किसी समझौते पर नहीं पहुंच सके क्योंकि दोनों देशों ने मोसुल के तेल कूपों पर अपना अधिकार का दावा किया। मुदरोज युद्ध-विराम के समय (३० अक्तूबर १९१८) ब्रिटिश फौजों का जिले के एक चौथाई भाग पर कब्जा था लेकिन इसके बाद ८ नवम्बर को ब्रिटिश फौजों ने आगे बढ़कर मोसुल शहर पर अपना झंडा फहरा दिया।

६ अगस्त १९१४ को तुर्की ने इस विवाद को परिषद के सामने रखा। तुर्की ने कहा कि पहले मोसुल पर उसका अधिकार था, युद्ध के समय उस पर कभी अधिकार नहीं किया गया और वहां के लोग तुर्की शासन को चाहते हैं। ब्रिटेन ने कहा कि प्राकृतिक सीमा व

न्चित करना कठिन था। संधि में कहा गया था कि जर्मनी और पोलैंड की सीमा एक अन्तर्मित्र राष्ट्रीय आयोग (कमीशन) के संरक्षण में किये गये जनमत संग्रह के आधार पर निर्धारित की जाय। उसके अनुसार २० मार्च १९२१ को जनमत संग्रह हुआ। सरकारी आंकड़ों के अनुसार जर्मनी को ७०७,६०५ मत तथा पोलैंड को ४७९,३५९ मत पड़े। पोलैंड वासियों ने उन जिलों पर दावा किया जहां उनकी संख्या अधिक थी। जर्मनी ने कहा कि ऊपरी साइलेशिया प्रांत का आर्थिक दृष्टि से विभाजन करना असम्भव है इसलिये उसके भविष्य का निर्णय वहां के बहु-संख्यकों द्वारा ही किया जाना चाहिये। जब यह झगड़ा चल ही रहा था कोरफैन्टी नाम के एक पोलैंड वासी ने कुछ अनियमित फौजों को लेकर साइलेशिया के एक बड़े भाग पर हमला बोल दिया। फ्रांसीसी फौजों ने खुले तौर पर पोलैंड वासियों का साथ दिया। स्थिति को काबू में करने के लिए उस स्थान को ६ ब्रिटिश बटालियनें भेजनी पड़ी। अन्तर्मित्र राष्ट्रीय आयोग (कमीशन) में फूट पड़ गई और अंत में उसने १२ अगस्त १९२१ को इस मामले को शीघ्र निबटाने के लिये राष्ट्रसंघ की परिषद् के सामने रखा। परिषद् ने ऊपरी साइलेशिया का अध्ययन करने के लिये बेल्जियम, ब्राजिल, चीन व स्पेन के ४ सदस्यों की एक समिति बनाई। इस समिति की रिपोर्ट के आधार पर परिषद् ने २० अक्तूबर १९२१ को निर्णय दिया कि ऊपरी साइलेशिया का विभाजन किया जाय। परिषद् ने निर्णय किया कि अधिक संख्या का क्षेत्र जर्मनी को दिया जाय और पोलैंड को खनिज पदार्थों का क्षेत्र सौंपा जाय। १५ मई १९२२ को जर्मनी व पोलैंड ने इस निर्णय को स्वीकार कर लिया और ९ जुलाई को अन्तर्मित्रराष्ट्रीय फौजों ने ऊपरी साइलेशिया खाली कर दी।

अलबानिया की समस्या

पेरिस के शांति-सम्मेलन ने अलबानिया की समस्याओं का निर्धारण

नहीं किया था। यूगोस्लाविया और यूनान ने अपनी सीमा के उस क्षेत्र पर काबू कर लिया था जिसका निर्धारण १९१३-१४ में किया गया था। अलबानिया का सीमा निर्धारण का प्रश्न उलझ गया। दिसम्बर १९२० को अलबानिया को राष्ट्र-संघ का सदस्य बना लिया गया। राज्य होने के आधार पर अलबानिया की स्वतंत्रता को मान्यता दी गई। १९२१ में यूगोस्लाविया के १२०० सशस्त्र सैनिकों ने अलबानिया पर आक्रमण किया इससे एक और बाल्कन-युद्ध का खतरा पैदा हो गया। राष्ट्र-संघ की परिषद् ने राजदूतों की एक परिषद् बनाई और उसने १९१३-१४ के सीमा निर्धारण के अनुसार अलबानिया की सीमा निर्धारित की। परिषद् ने अलबानिया से यूगोस्लाविया की सब फौजों के हटने का आदेश दिया।

मोसुल विवाद

लासेन-संधि के अंतर्गत समझौता हुआ था कि तुर्की व इराक की सीमा ९ मास के अन्दर तुर्की व ब्रिटेन के एक मैत्रीपूर्ण समझौते के अनुसार निर्धारित की जाय। ऐसा न होने पर इस मामले को राष्ट्र-संघ की परिषद् के समक्ष रखा जाय। दोनों देशों के प्रतिनिधि कुस्तुनतुनियां में मिले लेकिन वे किसी समझौते पर नहीं पहुंच सके क्योंकि दोनों देशों ने मोसुल के तेल कूपों पर अपना अधिकार का दावा किया। मुदरोज युद्ध-विराम के समय (३० अक्तूबर १९१८) ब्रिटिश फौजों का जिले के एक चौथाई भाग पर कब्जा था लेकिन इसके बाद ८ नवम्बर को ब्रिटिश फौजों ने आगे बढ़कर मोसुल शहर पर अपना झंडा फहरा दिया।

६ अगस्त १९१४ को तुर्की ने इस विवाद को परिषद के सामने रखा। तुर्की ने कहा कि पहले मोसुल पर उसका अधिकार था, युद्ध के समय उस पर कभी अधिकार नहीं किया गया और वहां के लोग तुर्की शासन को चाहते हैं। ब्रिटेन ने कहा कि प्राकृतिक सीमा व

नियमित अन्न इकट्ठा करने के लिये तुर्की विवादास्पद प्रदेश पर अपना अधिकार कायम करना चाहता है। लेकिन तुर्की व ब्रिटेन ने विवादास्पद प्रदेश की स्थिति यथापूर्व बनाये रखने का निश्चय किया। अभाग्यवश दोनों देश उक्त स्थिति को कायम रखने में असफल रहे और दोनों की सीमा पर लड़ाई छिड़ गई। यह मामला अक्तूबर १९२४ में फिर परिषद के सामने रखा गया। अन्तिम निर्णय होने तक एक अस्थायी सीमा निर्धारित की गई जिसका नाम 'ब्रुसेल्स रेखा' रखा गया। १९२५ के शुरू में स्वीडन, हंगरी व बेल्जियम के एक तटस्थ आयोग (कमीशन) ने इस मामले पर विचार आरम्भ किया। सितम्बर मे इस आयोग की रिपोर्ट परिषद् के सामने रखी गई। परिषद् ने मोसुल पर तुर्की की सार्वभौम सत्ता का समर्थन किया और सुझाव दिया कि वहां की जनता के आर्थिक हित की सुरक्षा उसी समय सम्भव है जब वह इराक के साथ मिला दिया जाय। इसी दौरान में विश्व न्ययालय ने अपना विचार प्रकट किया कि परिषद् का निर्णय दोनों दलों को मानना चाहिए। लेकिन मोसुल में फिर झगड़ा होने के कारण परिषद ने इस्कोनिया के जनरल लेडोनर को उक्त विषय में जांच करने के लिये नियुक्त किया। अपनी रिपोर्ट में लेडोनर ने कहा कि तुर्कीवासी अस्थायी तुर्की क्षेत्र मे इसाइयों को निकाल रहे है। १६ दिसम्बर १९२५ को परिषद ने निर्णय किया कि तुर्की-ईराक सीमा ब्रुसेल्स रेखा पर बनाई जाय और ब्रिटेन इराक पर शासनादेश के रूप में २५ वर्ष तक अपना नियंत्रण रखे और मोसुल में कुर्दिश अल्पसंख्यकों के हितो की सुरक्षा के लिय वहां के स्कूलों म कुर्दिश भाषा चालू रखी जाय और सरकार में कुर्दिशों को भी नियुक्त किया जाय। इन निर्णयों को ब्रिटेन और इराक दोनों ने स्वीकार कर लिया। जून १९२६ में एक आंग्ल-तुर्की सधिपत्र पर हस्ताक्षर हुए जिसके अनुसार कुछ तेलकूप तुर्की को मिले।

कोर्फू घटना

१९२३ में राष्ट्रसंघ की परिषद को एक अन्तर्राष्ट्रीय संकटकालीन स्थिति का सामना करना पड़ा। २७ अगस्त को यूनान व अलबानिया की सीमा निर्धारित करने वाले कमीशन के इटलीवासी अध्यक्ष, अन्य इटालियन अधिकारियों तथा एक दुभाषिये को यूनान में मृत्यु का शिकार होना पड़ा। इटली सरकार ने तुरंत यूनान को एक चुनौती दी जिसमें उससे सरकारी तौर पर क्षमा याचना को कहा गया। इटली ने ५ करोड़ डालर की क्षतिपूर्ति ५ दिन के भीतर चुका देने की मांग की।

इस चुनौती को स्वीकार करने के लिये २४ घंटे का समय दिया गया। यूनान ने इसे अस्वीकार कर दिया और राष्ट्रसंघ में अपील की कि ३१ अगस्त को इटली सरकार ने यूनान के द्वीप कोर्फू पर बम वर्षा की। परिषद् में इटली के प्रतिनिधि सालान्ड्रा ने इस मामले को सुलझाने के लिए राष्ट्रसंघ को अयोग्य बताया और कहा कि इटली ने कभी भी युद्ध का इरादा नहीं किया। मुसोलिनी ने कहा कि यह घरेलू मामला है और इसमें बाहरी हस्तक्षेप सहन नहीं किया जायगा। राष्ट्रसंघ ने इस मामले को पेरिस में राजदूतों की परिषद् के सुपुर्द कर दिया। राजदूतों ने कहा कि यूनान में की गई हत्यायें गैर कानूनी थीं, इसके अतिरिक्त इटली की चुनौती भी बड़ी कठोर और अन्यायपूर्ण थी। राजदूतों ने सिफारिश की कि यूनान को माफी मांगनी चाहिये, हत्या करने वालों को दण्ड दिया जाना चाहिये और ५ करोड़ डालर की क्षति पूर्ति देनी चाहिये। ये शर्तें मंजूर कर ली गईं और २७ सितम्बर को इटली द्वारा कोर्फू छोड़ने पर यूनान और इटली में फिर मैत्री हो गई। निस्सन्देह इसमें राष्ट्रसंघ की विजय हुई लेकिन इससे यह जाहिर हो गया कि वह बड़े देश के खिलाफ विश्वास और दृढ़ता के साथ कार्रवाई नहीं कर सकता।

यूनान-बल्गेरिया मामला

अक्तूबर १९२५ को यूनान व बल्गेरिया के रक्षकों के बीच डेमिरटापू में दो दिन तक गोली चली। परन्तु एथेन्स में इस आशय के समाचार पहुँचने पर कि आक्रमण करने का इरादा पहले बल्गेरिया ने किया यूनान के युद्ध मंत्री ने अपनी सेना को बल्गेरिया के नगर पेट्रिच में घुसने का आदेश दे दिया। २२ अक्तूबर को यूनानी फौजें बल्गेरिया के भीतर ५ मील तक घुस गईं और ७० वर्ग मील क्षेत्र पर अपना अधिकार जमा लिया। बल्गेरिया ने राष्ट्रसंघ की परिषद में यूनान के विरुद्ध अपील की। परिषद् ने दोनों देशों को आदेश दिया कि वे अपनी फौजें अपने-अपने देश में वापस हटा लें। इस आज्ञा का पालन किया गया। एक जांच कमीशन ने निर्णय दिया कि बल्गेरिया पर यूनान का आक्रमण अन्यायपूर्ण था और यूनान को २१०००० डालर क्षतिपूर्ति देनी चाहिये। १ मार्च १९२६ तक यूनान ने यह राशि चुका दी। राष्ट्रसंघ की इस सफलता से बाल्कनों में सुरक्षा की भावना उत्पन्न हो गई।

दक्षिण-अमरीकी विवाद

सितम्बर १९३२ में पिरूवियन सेना ने जब अमेजन नदी पर कोलम्बिया के लेटाशिया बन्दरगाह पर कब्जा कर लिया तो परिषद् ने अमरीका से कूटनीतिक समर्थन प्राप्त कर पिरूवियन सेना पर जोर डाला कि वह उक्त क्षेत्र में हिंसात्मक कार्रवाई न करे और वहां से हट जाय। ८ दिसम्बर १९२८ को विवादास्पद क्षेत्र चाको जिले में बोलीविया और परागवे के बीच सशस्त्र संघर्ष छिड़ गया। इस पर राष्ट्रसंघ की परिषद् ने उक्त मामले में हस्तक्षेप करते हुए दोनों दलों से कहा कि वे विवादास्पद क्षेत्र के प्रश्न को शान्तिपूर्ण ढंग से सुलझाने का प्रयत्न करें। दोनों देशों ने अन्तर्अमरीकी सम्मेलन के

निर्णय को मानना स्वीकार कर लिया। यह सम्मेलन उस समय वाशिंगटन में हो रहा था। सम्मेलन के आदेशानुसार बोलीविया और परागवे के बीच परस्पर आक्रमण न करने सम्बन्धी एक समझौता हुआ। इस समझौते का उद्देश्य केवल उक्त क्षेत्र में उपद्रव रोकने का था। किन्तु १९३२ में विवादास्पद क्षेत्र पर दोनों देशों में पुनः संग्राम छिड़ गया। १९३४ में राष्ट्रसंघ के एक जांच कमीशन ने अमानुषिक तथा अन्यायपूर्ण कार्रवाइयों को रोकने के लिए आक्रमणकारी देशों को शस्त्र पहुँचाने पर पावन्दी लगा दी। उसी बीच परागवे ने, जो विवादास्पद क्षेत्र पर अपना दखल जमाये हुए था, राष्ट्रसंघ असेम्बली (महासभा) के एक शांतिप्रस्ताव को ही अस्वीकार कर दिया। फरवरी १९३५ में परागवे ने राष्ट्रसंघ के समक्ष अपना त्यागपत्र प्रस्तुत किया जो दो वर्ष बाद स्वीकार किया गया। इस तरह परागवे और बोलीविया के मामले से राष्ट्रसंघ को हाथ धोना पड़ा। आखिर १९२९ में दक्षिणी अमरीकी राज्यों द्वारा मध्यस्यता करने पर दोनों देशों में समझौता हो गया।

आर्थिक सहायता

इसमें संदेह नहीं कि राष्ट्रसंघ विकट राजनैतिक मामलों को सफलता से सुलझाने में निहायत विफल रहा लेकिन जिस खूबी के साथ उसने उस समय की डवांडोल आर्थिक स्थिति को सम्भाला वह अत्यंत सराहनीय है। आस्ट्रिया की गणतंत्री सरकार युद्ध विराम के बाद उत्पन्न आर्थिक समस्याओं को सुलझाने में नितांत असमर्थ रही। सेंट जर्मेन की संधि पर हस्ताक्षर होने के बाद कई सहायता कार्यक्रम हाथ में लिये गये। आस्ट्रिया को उधार अन्न सहायता भेजी गई। इसके अतिरिक्त उसकी आर्थिक हालत को मजबूत बनाने के लिये १९१९ में ब्रिटेन, फ्रांस और इटली ने मिलकर उसे ४ करोड़ ८० लाख डालर पेशगी दी। अमरीका ने भी आस्ट्रिया को २ करोड़ ४० लाख डालर

दिया। इसके अलावा १९१९ से १९२१ तक अंतर्राष्ट्रीय कोष से उसे १० करोड़ डालर ऋण प्राप्त हुआ। इस तरह आस्ट्रिया को पतन के गर्त में गिरने से बचाया जा सका।

इधर आस्ट्रिया भी अपने खर्च में जहां तक कटौती हो सके करने को तैयार हो गया। वहां १४४०० कागजी क्राउन की कीमत एक सोने के क्राउन के बराबर कर दी गई। बचत की दृष्टि से ८०००० अधिकारी नौकरी से बरखास्त कर दिये गये। इन सब कार्रवाइयों से आस्ट्रिया की आर्थिक स्थिति में इतना परिवर्तन हुआ कि १ जून १९२६ में राष्ट्रसंघ को उस पर से अपना आर्थिक नियंत्रण उठा लेना पड़ा।

दिसम्बर १९२३ में राष्ट्रसंघ की परिषद ने हंगरी के आर्थिक पुनर्निर्माण के लिये एक योजना स्वीकार की। इसके अनुसार वहां १—मुद्रा स्फिति को रोकना तथा क्राउन की डगमगाती हालत को स्थिर करना, २—एक स्वतंत्र बैंक की स्थापना, ३—३० जून १९२६ तक बजट को संतुलित अवस्था में लाना, ४—२५ करोड़ स्वर्ण क्राउन की ऋण सहायता तथा, ५—राष्ट्रसंघ द्वारा एक कमीश्नर जनरल के जरीये नियंत्रण रखना था। यह योजना मई १९२४ में लागू की गई। बोस्टन के जेरमिया स्मीथ हंगरी में राष्ट्रसंघ के कमिश्नर जनरल नियुक्त हुए। बजट निर्धारित तिथि से डेढ़ वर्ष पहले ही संतुलित कर लिया गया। १० जून १९२६ को राष्ट्रसंघ की परिषद ने हंगरी पर से आर्थिक नियंत्रण हटा लिया।

राष्ट्रसंघ ने १९२४ में यूनान को लगभग ५ करोड़ डालर की विदेशी ऋण सहायता दी जिससे यूनान १९२२ में तुर्कों से हुए युद्ध के अपने १५ लाख शरणार्थी बसा सके। शरणार्थियों के बसाने के लिये राष्ट्रसंघ ने एक कमीशन भी नियुक्त किया। इस कमीशन ने ४ वर्षों के भीतर १४३००० शरणार्थियों को देहातों में और २८००० को

नागरिक क्षेत्रों में वसया। उसने उनके लिये ७६००० मकान वनवाये और उत्पादन क्षेत्र वढ़ाकर दूना कर दिया। इसी तरह वलगेरिया सरकार को उसके २२०००० शरणार्थियों को वसाने के लिये, अविसिनिया को अपनी मुद्रा सोने के आधार पर निर्धारित करने और स्वतंत्र डांजिग नगर को अपना वन्दरगाह सुधारने के लिये विदेशी ऋर्णें दी गई। इस तरह राष्ट्रीय आर्थिक पुनर्निर्माण द्वारा राष्ट्रसंघ ने अपनी योग्यता का परिचय दिया।

सार का प्रशासन

वर्सेल संधि के अनुसार राष्ट्रसंघ को सार वेसिन पर १५ वर्ष तक शासन करने का अधिकार मिला। शर्तों के अनुसार परिषद द्वारा नियुक्त ५ सदस्यों के कमीशन को उक्त क्षेत्र पर शासन करने का अधिकार था। इस कमीशन में एक सदस्य फ्रांस का, एक सार का और तीन सदस्य फ्रांस अथवा जर्मनी को छोड़ कर किसी अन्य देश के होने चाहिये थे। परिषद ने फरवरी १९२० में अपने दूसरे अधिवेशन में एक फ्रांसीसी देशभक्त एम. राल्ट की अध्यक्षता में एक शासक कमीशन की नियुक्ति की। कमीशन में फ्रांस का प्रभाव अधिक होने के कारण फ्रांस ने सार में ५००० सैनिकों की अपनी एक सैनिक टुकड़ी कायम रखी और वहां फ्रांसीसी मुद्रा लागू की। यही नहीं वल्कि जर्मन विद्यार्थियों पर फ्रांसीसी स्कूलों में भर्ती होने के लिये दवाव डाला गया। १९२३ में जव सार के खनिकों ने वेतन वृद्धि की मांग करते हुए हड़ताल कर दी तो कमीशन ने उनके विरुद्ध सख्त कार्रवाई की। इस कार्रवाई के विरुद्ध भारी आंदोलन पैदा हो गया। किंतु राष्ट्रसंघ ने कमीशन की अत्याचारपूर्ण कार्रवाइयों की निंदा नहीं की और केवल सुझाव रखा कि विदेशी सेना को हटाकर वहां स्थानीय सेना को नियुक्त किया जाना चाहिए। १९२६ में राल्ट ने इस्तीफा दे दिया। उनके स्थान पर कमीशन के अध्यक्ष कनाडा के जार्ज स्टेफेन्स, सर

अत्यन्त गुथे होने के कारण उनमें कई बार झगड़े उठे, जिनमें कुछ परस्पर समझौता से और कुछ हाई कमिश्नर के हस्तक्षेप से शांत किये गये। फिर भी स्वतंत्र डांजिग नगर कई प्रकार के झगड़ों से घिरा होने के बावजूद आर्थिक दृष्टि से काफी तरक्की कर गया और उसका व्यापार पहले से चौगुना अधिक बढ़ गया। १९३९ में डांजिग को जिन बुरे दिनों का सामना करना पड़ा, उनका उल्लेख बाद में किया जाएगा।

आदिष्ट प्रणाली

पेरिस शांति सम्मेलन द्वारा निर्मित आदिष्ट प्रणाली निरीक्षणार्थ राष्ट्रसंघ के आधीन कर दी गयी। शांति संधियों के अंतर्गत जर्मनी को उपनिवेशों से अपना सारा अधिकार उठा कर मित्र राष्ट्रों के सुपुर्द कर देना पड़ा। इधर तुर्की को भी अरब देशों पर से अपना कब्जा हटा लेना पड़ा। जर्मनी और तुर्की के अधिकार से मुक्त क्षेत्रों को राष्ट्रसंघ के सदस्य राष्ट्रों के अधीन कर दिया गया, इस शर्त पर कि वे वहां के निवासियों के हितों का ध्यान रखते हुए शासन करेंगे।

उक्त व्यवस्था के अनुसार निम्नलिखित निर्णय किये गये : (१) शासनादेश प्रदेशों पर शासन करने वाले आदिष्ट राज्य उस देश की प्रगति की वार्षिक रिपोर्ट राष्ट्र संघ की परिषद को प्रस्तुत करेंगे। (२) प्रत्येक आदिष्ट प्रदेश पर नियंत्रण अथवा शासन संरक्षण व्यवस्था राष्ट्रसंघ के परिषद् के आदेशानुसार होगा और (३) आदिष्ट राज्यों की वार्षिक रिपोर्ट का निरीक्षण करने के लिए एक स्थायी कमीशन (आयोग) की नियुक्ति की जायेगी।

शासन-सुविधा के लिए आदिष्ट प्रदेशों को "अ," "ब," और "स" तीन वर्गों में विभाजित किया गया। वर्ग "अ" में तुर्की के भूतपूर्व प्रदेश इराक, सिरिया, लेबनान, फिलस्तीन तथा ट्रांसजोर्डनिया रखे गये। ये प्रदेश इतने विकसित थे कि एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में स्थित

प्रदेशों के नागरिक थे। १९२७ में सदस्यों की संख्या बढ़ाकर ११ कर दी गई। शामिल किये गये दो सदस्यों में एक जर्मनी का और एक अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ का प्रतिनिधि का। उक्त कमीशन का काम केवल सलाह देना था किन्तु व्यावहारिक तौर पर वह आदिष्ट क्षेत्रों के निवासियों की वार्षिक रपोर्टों का निरीक्षण भी करता था।

इस प्रणाली के अनुसार आदिष्ट देशों को अपना शासक चुनने का अधिकार था। किन्तु इराक, फिलस्तीन और सिरिया में जनता की इच्छा की उपेक्षा की गई और उनकी राय नहीं ली गई। मेसोपोटामिया में अरबों ने ब्रिटिश शासनादेश के विरूद्ध विद्रोह कर दिया जिससे ब्रिटेन को इराक सरकार को मान्यता देनी पड़ी। हेजाज के बादशाह हुसेन के शाहजादे फैजल को इराक का शासक नियुक्त किया गया। ३ अक्तूबर १९३२ को इराक राष्ट्र संघ का ५७ वां सदस्य बन गया। इधर फिलस्तीन में अरबों और यहूदियों के बीच दंगा बढ़ता गया और ब्रिटेन उनमें समझौता कराने में निहायत असफल रहा। सिरियाई जनता को उनकी इच्छा के प्रतिकूल फ्रांसीसी नियंत्रण में कर देने से सिरिया में फ्रांसीसी शासन के विरूद्ध १९२७ तक विद्रोह चलता रहा। तुगोलेंड और कैमरून को बाहरी आक्रमण से रक्षा के लिये फ्रांस को वहीं की सेनाओं का प्रयोग करने की आज्ञा दी गई। पश्चिमी समोआ क्षेत्र में विद्रोह करने वालों के खिलाफ सख्त कार्रवाई की गई। किन्तु बाद में आदिष्ट प्रणाली की घोर आलोचना करते हुए उससे सहयोग हटाने का निश्चय किया गया।

स्थायी आदिष्ट कमीशन की रिपोर्ट में बताया गया कि शासनादेश प्रदेशों की जनता को अपनी शिकायतें पेश करने का मौका नहीं दिया गया जिससे उनमें असंतोष उठा और बाद में वही विद्रोह का कारण बन गया।

अल्प संख्यकों की रक्षा

१९१९ में यूरोप के पुनर्निर्माण के समय राष्ट्र संघ को करीब ३

प्रतिनिधियों को लेकर "अल्पसंख्यक समिति" की स्थापना की गई। समिति ने निर्णय किया कि अल्पसंख्यकों के मामले को परिषद् के समक्ष प्रस्तुत किया जाया करे अथवा नहीं।

समिति के निर्णयानुसार परिषद् ने अल्पसंख्यकों के विवाद में सम्बन्धित सरकारों पर अपना निर्णय लादने के बजाय दोनों दलों में समझौता कराने का रास्ता अख्तियार किया। किन्तु इस हालत में भी वह स्थायी शान्ति कायम रखने में नितांत असफल रही और इससे सारी व्यवस्था भंग हो गई।

१९३४ में पोलैंड ने अल्पसंख्यकों की रक्षा करने में सहयोग देने से इन्कार कर दिया। उसने कहा कि जब तक इस सम्बन्ध में कोई सुदृढ़ व्यवस्था अपना नहीं ली जाती अल्पसंख्कों को रक्षा में वह सहयोग नहीं दे सकता। पोलैंड की नीति और राज्यों ने भी अपनानी आरम्भ कर दी और राष्ट्रसंघ को सहयोग देना बंद कर दिया। जर्मनी यहूदी अल्पसंख्यकों की रक्षा के लिये किसी तरह से संधि से बंधित नहीं था। सितम्बर १९३५ के नूरेम्बर्ग के कानूनों के अंतर्गत यहूदी अल्पसंख्यक जर्मनी की नागरिकता से वंचित कर दिये गये। उनके बच्चों को सार्वजनिक स्कूलों में भर्ती होने से रोक दिया गया। इसके अतिरिक्त और कई अत्याचारपूर्ण कार्रवाइयां यहूदियों के विरुद्ध अपनाई गईं। किंतु उक्त अत्याचार को बंद करने के लिये राष्ट्रसंघ कोई भी कदम उठा न सका।

बड़े विवादों में मध्यस्थता करने में राष्ट्रसंघ की असफलता

ऐसा अक्सर देखा गया कि जिन बड़े विवादों में बड़े देशों का हाथ होता था उन विवादों में मध्यस्थता करने में राष्ट्रसंघ प्रायः असफल होता था। इस तरह वह केवल साधारण विवादों को ही शांत करने में सफल रहा।

उल्लेख था। ब्रिटेन के विदेश मंत्री सर जान साइमन के अनुसार जापान के आक्रमण का उद्देश्य एशिया को साम्यवाद से वचाना था और यही कारण था कि राष्ट्रसंघ उसके विरुद्ध जल्दी कठोर कदम नहीं उठा पाता था। इसी बीच जापान ने समस्त मंचूरिया पर कब्जा कर लिया। इसने सितम्बर में राष्ट्रसंघ के आदेश का उल्लंघन कर मंचूरिया को अपना उपनिवेश घोषित कर दिया। यही नहीं उसने चीन के भूतपूर्व शासक हेनरी पियूई को मंचूरिया में अपना संरक्षक नियुक्त कर दिया। मंचूरिया में जापान के आधीन मंचुको सरकार की स्थापना कर दी गई। इसी बीच चीन के साथ युद्ध विराम संधि हो जाने से जापान ने शंघाई वन्दरगाह को खाली कर दिया। इधर लीटन कमीशन ने जापानी आक्रमण से प्रभावित क्षेत्रों का दौरा कर एक लाख शब्दों की रिपोर्ट राष्ट्रसंघ में प्रस्तुत की। रिपोर्ट में जापान के साथ उचित आधार पर समझौता करने की सिफारिश भी की गई थी। राष्ट्रसंघ ने जापानी कार्रवाइयों की निन्दा करते हुए कमीशन की सिफारशें स्वीकार कर लीं। किन्तु जापान ने समझौता सम्बन्धी सिफारिश को अस्वीकार करते हुए २७ मार्च १९३३ को राष्ट्रसंघ से इस्तीफा दे दिया। राष्ट्रसंघ के अन्य सदस्य राष्ट्रों ने मंचुको सरकार को केवल मान्यता देने से अस्वीकार कर दिया।

इथोपिया पर इटली का आक्रमण

इटली में तानाशाही शासन के अधीन जनसंख्या में वृद्धि और युद्ध के कारण जनता की आर्थिक हालत खराब होने लगी थी। मुसोलिनी ने जनता में उठती बगावत तथा असंतोष को शान्त करने के लिये शिकारी मनोवृत्ति अख्तियार की। उसकी आंखें अफ्रीका की ओर उठीं। २० जुलाई १८३४ में आंग्ल–इटालियन मिस्री समझौता से इटालियन लोबिया की सीमा और बढ़ा दी गई। ५ दिसम्बर १९३४ को इथोपिया

ऋण तथा बैंकों से उधार देना बन्द कर दिया जाय। (३) इटली से समस्त आयात रोक दिया जाय। (४) इटली को कच्चे माल का निर्यात बन्द कर दिया जाय। (५) राष्ट्रसंघ के सदस्यों में पारस्परिक सहयोग कायम करके प्रतिबन्धों से हुई क्षति को कम करना। परन्तु तेल पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया। कमजोर मोर्चाबन्दी और कूटनीतिक दृष्टि से अयोग्य होने के कारण इथोपिया को इटली के सामने झुकना पड़ा। २ मई १९३६ को इथोपिया के बादशाह हेली सेलेसी जरूसलम को भाग खड़े हुए और राष्ट्रसंघ के महामन्त्री को तार दिया कि मैं इथोपियाई जनता को नष्ट होने से बचाने के लिए अपनी राजधानी से भाग रहा हूं और जब तक इथोपिया स्वतंत्र नहीं हो जाता, मैं वहां नहीं लौटूंगा। आपने राष्ट्र-संघ से अपील की कि वह इथोपिया पर इटली के आधिपत्य को मान्यता न दे और उसके विरुद्ध अपनी कार्रवाई जारी रखे।

४ जुलाई १९३६ को राष्ट्र-संघ साधारण सभा के अध्यक्ष वानजीलैंड (बेल्जियम के प्रधानमंत्री) ने रोम से आया एक पत्र पढ़ कर सुनाया, जिसमें लिखा था : "स्वतन्त्रता, न्याय, सभ्यता तथा शांति के प्रतीक इटली की सेना का इथोपियन जनता ने आदर से स्वागत किया। इटली की सरकार भी इथोपिया में ऐसा ही कार्य करेगी, जो राष्ट्र-संघ के प्रतिश्रव के अनुसार होगा और जिससे जनता को लाभ होगा।"

इधर इथोपिया के बादशाह हेली सलेसी अपने देश के लिए सदस्य राष्ट्रों का समर्थन प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील थे। उन्होंने राष्ट्र-संघ की साधारण सभा में कांपते हुए शब्दों में कहा—'यदि कोई शक्तिशाली सरकार कमज़ोर जनता को कुचल रही हो, उस हालत में उस जनता को हक है कि वह राष्ट्र-संघ से न्याय के लिए अपील करे जो निष्पक्ष होकर मानवता के नाम पर उसकी सुनवाई करे।" किन्तु उक्त अपील का राष्ट्र-संघ पर कोई असर नहीं हुआ और इथोपिया सदा के लिए नष्ट हो गया।

स्पेन का गृह युद्ध

१९२३ में राजा अल्फोंजो १३ वें ने जनरल प्रिमोडी रिवेरा को सेना विभाग का अध्यक्ष नियुक्त किया और शासन का सारा भार सेना के आधीन आ गया। इससे पार्लमेंट भंग हो गई और नागरिक शासन समाप्त होकर वहां सैनिक तानाशाही शासन कायम हो गया। सैनिक शासन स्पेन में ७ वर्ष तक रहा। १९३१ में राजा अल्फोंजो गद्दी से अलग हो गये और स्पेन में जनतंत्री गणतन्त्र की स्थापना हुई। इसमें भूतपूर्व सैनिक सरकार का एक भी अधिकारी नहीं रखा गया।

१९३१ से १९३६ तक स्पेन की नई जनतंत्री सरकार को प्रतिक्रियावादी और साम्यवादी विचारों में संघर्ष चलते रहने से काफी डावां-डोल स्थिति का सामना करना पड़ा। जुलाई १९३६ में स्पेनिश मोरक्को के सेनापति जनरल फ्रैंको ने वहां सैनिक विद्रोह की घोषणा कर दी। वह भारी फौज के साथ स्पेन में घुस आया और दक्षिण तथा पश्चिमी प्रांतों पर कब्जा कर लिया। नवम्बर में विद्रोही जब मैड्रिड पहुंचे तो मोरक्को की सरकार भाग कर वर्लेसिया चली गई। विद्रोहियों को इटली और जर्मनी का सहयोग प्राप्त था। ये दोनों देश विद्रोहियों को सेना, गोला-बारूद, विमान तथा टैक्निकल विशेषज्ञों की सहायता कर रहे थे। १८ नवम्बर १९३६ को रोम और बर्लिन की सरकारों ने फ्रैंको को स्पेन का शासक स्वीकार कर लिया। स्पेन सरकार के वफादार लोगों को रूस का समर्थन प्राप्त था। इस तरह स्पेन जनतंत्री व तानाशाही और साम्यवादी तथा फासिस्टवादी विचारधाराओं के संघर्ष का एक बड़ा मैदान बन गया। अन्त में यूरोप के २७ राज्यों के बीच एक समझौता हुआ, जिसके अनुसार समझौते से सम्बन्धित राज्यों ने स्पेन के किसी भी पक्ष को मदद न करने का वायदा किया। लार्ड प्लाइमाउथ की अध्यक्षता में लन्दन में एक अन्तर्राष्ट्रीय हस्तक्षेप न करने वाली समिति की स्थापना की गई। इस समिति का काम शस्त्रों के आयात-निर्यात का निरीक्षण तथा

जांच करना था। किन्तु इटली, जर्मनी तथा पुर्तगाल आरम्भ से ही समझौता-विरोधी कार्रवाई करते रहे और उन्होंने समझौता को तनिक भी महत्व न दिया, जिसके कारण समझौता नितान्त असफल रहा। समझौता के विफल हो जाने से फ्रैंको को इटली और जर्मनी से शस्त्र तथा गोला-बारूद खरीदने का मौका मिल गया। २ अक्तूबर १९३७ को राष्ट्र-संघ की महासभा ने आदेश दिया कि स्पेन की भूमि पर जो विदेशी फौजें पड़ी हुई हैं, वे अविलम्ब हटा ली जांय। इटली और जर्मनी ने अपनी फौजें हटाने से साफ इन्कार कर दिया, किन्तु इस पर राष्ट्र-संघ कुछ भी नहीं कर सका। नतीजा यह हुआ कि स्पेन में गृह-युद्ध जारी रहा। मार्च १९३९ में मैड्रिड और बार सिलौना पर विद्रोहियों का कब्जा हो जाने के साथ ही स्पेन का तीन वर्षीय युद्ध समाप्त हो गया। इस तरह स्पेन में फ्रैंको सरकार की स्थापना हो गई। ब्रिटेन, फ्रांस और अमरीका ने फ्रैंको सरकार को जनता की वास्तविक सरकार कह कर मान्यता दी। इस तरह राष्ट्र-संघ की उपेक्षा और अप्रभावशाली ताकत के कारण स्पेन के जनतन्त्री शासन का अन्त हो गया।

चीन जापान युद्ध

मार्च १९३३ में जापान राष्ट्र-संघ से अलग हो गया और मंचूरिया पर उसने अपना अधिकार सुदृढ़ बनाये रखा। अप्रैल १९३४ में उसने 'जापानी मुनेरो सिद्धांत' की घोषणा करते हुए दावा किया कि प्रशांत क्षेत्र में शांति स्थापना जापान ही कर सकता है। घोषणा में कहा गया कि पूर्वी एशिया में शांति स्थापना के काम में केवल चीन को छोड़ कर और कोई देश भाग नहीं ले सकता। जापान ने यह भी चेतावनी दी कि विदेशी शक्तियों ने यदि चीन को किसी भी तरह का सहयोग दिया—चाहे वह टैकिनकल हो अथवा आर्थिक—उसका परिणाम बड़ा भयंकर होगा। १९३५ में जापान ने पैपिंग, तेनसिन तथा चाहर पर कब्जा कर वहां पूर्वी होपे स्वायत्त सरकार

के नाम से एक कठपुतली सरकार की स्थापना कर दी। १९३६ में उसने भीतरी मंगोलिया के एक क्षेत्र पर कब्जा कर लिया और वहां एक दूसरी स्वायत्त सरकार की स्थापना कर दी। जापानी सैनिक अधिकारियों ने चीनी रीति रिवाजों की उपेक्षा कर उत्तरी चीन में जापानी माल की खपत बढ़ानी शुरू कर दी और चीनी व्यापार पर कब्जा कर लिया। ७ जुलाई १९३७ को लुकावो चिआवो में जापानी और चीनी सैनिकों के बीच मुठभेड़ हो गई और जापान ने युद्ध का एलान किये बिना चीन पर हमला कर दिया। जापानी विदेश मंत्री हिरोता ने घोषणा की कि विशाल चीनी दीवार के दक्षिण एक नये कड़ी राज्य की स्थापना की जायगी। उन्होंने अपनी घोषणा में कहा: पूर्वी एशिया में जापान की नीति जापान, मंचूकूवो तथा चीन की बुनियाद को परस्पर समझौता तथा सहयोग से मजबूत तथा स्थायी बनाना है। जापान की नीति अपने को चीन तथा मंचूकूवो के कम्युनिस्ट आक्रमण से रक्षा करना है। इस घोषणा के तत्काल बाद ही जापानी सेना न शंघाई के एक क्षेत्र पर कब्जा कर लिया और चीन को अपनी राजधानी नानकिंग से हटाकर हांकवो और बाद में चुंगकिंग ले जाने के लिये मजबूर किया।

सितम्बर १९३७ में चीन ने राष्ट्रसंघ में अपील की और उसका मामला एक सुदूरपूर्वी परामर्शदातृ समिति को सौंप दिया गया। चीन ने शिकायत की कि जापान ने चीन पर आक्रमण कर १९२२ में हुई ९ देशों की संधि का उल्लंघन किया है। चीन की शिकायतें राष्ट्रसंघ की साधारण सभा ने स्वीकार कर लीं और निश्चय किया कि राष्ट्रसंघ के सदस्य राष्ट्र ऐसी कोई भी कार्रवाई न करें जिससे कि चीन को धक्का पहुँचे अथवा उसे कमजोर बनाये। इसके अतिरिक्त सदस्य राष्ट्रों से कहा गया कि वे जहां तक संभव हो सके चीन की मदद करें। नवम्बर में ९ राष्ट्रों की संधि से सम्बन्धित राष्ट्रों

(जापान के अतिरिक्त) का एक सम्मेलन ब्रुसेल्स में हुआ किन्तु विना किसी निर्णय के वह स्थगित हो गया। १६ सितम्वर १९३८ में हुए राष्ट्रसंघ की महासभा के १९ वें अधिवेशन में चीन ने जापान के विरुद्ध कार्रवाई की अपील की किन्तु इस वार यह साफ कह दिया गया कि कार्रवाई का कदम उठाना सदस्य राष्ट्रों की इच्छा पर है यह उन पर जवर्दस्ती लादा नहीं जा सकता।

चीन को राष्ट्रसंघ से कोई सहायता न मिलते देख साम्राज्यवादी जापान ने राष्ट्रवादी सेना को वुरी तरह परास्त कर अमोय, कैंटन तथा हेनान के द्वीप पर अधिकार जमा लिया। मार्च १९४० में जापान ने राष्ट्रवादी चीन के गद्दार वांग चिंग-वाई के अधीन नानकिंग में एक नई कठपुतली सरकार की स्थापना कर दी। वांग चिंग-वाई ने जापानी संरक्षण में रहना स्वीकार कर लिया। सन् १९४१ के अन्त में चीनी युद्ध द्वितीय विश्व युद्ध में परिवर्तित हो गया। इस तरह राष्ट्रसंघ चीन को जापानी हमले से रक्षा करने में निहायत असफल सिद्ध हुआ।

१९३८ में जर्मनी ने आस्ट्रिया पर कब्जा कर लिया और चेकोस्लोवाकिया को अपनी सीमा में मिला लिया। उसने १९३९ में अल्वानिया पर भी कब्जा कर लिया। ३ सितम्वर १९३९ को जर्मनी ने डांजिग और पोलैंड के गलियारे पर हमला कर दिया और वहीं से द्वितीय विश्वयुद्ध आरम्भ हुआ। इन दिनों में राष्ट्रसंघ ने कई वार विश्व शांति प्रस्ताव स्वीकार किये किन्तु युद्ध को रोकने के लिए उसने कोई ठोस कार्रवाई नहीं की। न तो उसमें सैनिक ताकत थी और न प्रभावशाली आवाज जिससे युद्ध को रोका जा सके। नतीजा यह हुआ कि १९३९ के अन्त तक यह संस्था सदा के लिये समाप्त हो गई। एरियाना पार्क स्थित श्वेत-प्रासाद जिसमें राष्ट्रसंघ का निवास था वही उसका कब्र वना।

अन्त्येष्टि-क्रिया

३ दिसम्बर १९३८ को रूस ने फिनलैंड पर आक्रमण किया। फिनलैंड ने राष्ट्रसंघ में अपील की कि साम्यवादी आक्रमण से उसकी रक्षा की जाय और आक्रमणकारी के खिलाफ अविलंब सख्त कार्रवाई की जाय। अर्जेण्टाइना ने प्रस्ताव रखा कि रूस को राष्ट्रसंघ से निकाल दिया जाय किन्तु रूस ने उक्त प्रस्ताव सम्बन्धी बहस में भाग लेने से इन्कार कर दिया। इस पर राष्ट्रसंघ ने रूस के विरुद्ध अर्जेण्टाइना का प्रस्ताव निर्विरोध स्वीकार कर घोषणा की कि चूंकि सोवियत संघ न राष्ट्रसंव-प्रतिश्रव का उल्लंघन किया है इसलिये वह राष्ट्रसंघ का सदस्य नहीं है। किन्तु रूस के राष्ट्रसंघ से हटाये जाने से फिनलैंड का उससे कोई लाभ नही हुआ क्योंकि इससे फिनलैंड पर रूस का आक्रमण बन्द नही हुआ। हां इतना जरूर हुआ कि राष्ट्र संघ के कुछ सदस्यों ने फिनलैंड की हालत खराब देख उसे नैतिक तथा वस्तुओं से सहायता दी। किन्तु जो कुछ सहायता मिली वह अपर्याप्त थी और वह भी काफी देर में पहुँची। इसका परिणाम यह हुआ कि फिनलैंड बुरी तरह परास्त हुआ और १२ मार्च १९४० को उसने रूस के सामने आत्मसमर्पण कर दिया। लगभग ७ वर्ष तक (१९३९-४६) राष्ट्रसंघ एक मृत प्राय संस्था के रूप में रहा।

द्वितीय विश्व युद्ध विराम वार्ता के बाद ८ अप्रैल १९४६ को राष्ट्रसघ की महासभा की अन्तिम बैठक जनेवा में हुई। इसमें ३४ देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। महासभा के अध्यक्ष ने अपने अन्तिम भाषण में कहा "हम जानते है कि हम में नैतिक उत्साह का अभाव है और यह भी कि कई जगह जहां हमें सख्ती से काम लेना चाहिये था वहां हमने ढिलाई की तथा अपने निर्णय तथा नियमों को लागू करवाने में निहायत असफल रहे।" अध्यक्ष के भाषण के बाद उपाध्यक्षों का चुनाव हुआ। उपाध्यक्ष के ८ स्थानों में से जब

अर्जेंटाइना को एक भी प्राप्त नहीं हुआ तो वह भवन त्याग कर बाहर चला गया। इस पर सर हार्टले शा क्रास ने कहा, "लेकिन यह तो राष्ट्रसंघ की अन्त्येष्टि क्रिया का समय है। इस समय इस प्रकार का कलह करने से क्या लाभ है।" इस तरह राष्ट्रसंघ को १९ अप्रैल १९४६ को एरियाना पार्क में दफना दिया गया। राष्ट्रसंघ का दफन करते हुए कहा गया : "आज से राष्ट्रसंघ की कोई बैठक नहीं होगी और वह सदा के लिये समाप्त हो गया।"

राष्ट्रसंघ के पतन का कारण

इसमें संदेह नहीं कि युद्ध को समाप्त कर शांति स्थापना के लिये राष्ट्र संघ का निर्माण मानवता के इतिहास में एक अपूर्व प्रयास था। यद्यपि अपने उद्देश्यों तक पहुंचने में यह निहायत विफल रहा किन्तु सभ्यता के इतिहास में शांति स्थापना का यह प्रयोग काफी महत्वपूर्ण और अपूर्व था। अब हमें देखना है कि वे कौन से ऐसे कारण थे जिनकी वजह से यह प्रयोग असफल रहा क्योंकि इससे हमें आगे बढ़ने में काफी सुविधा हो जायेगी। हम पिछली कमजोरियों से सबक लेकर आगे सावधानी से बढ़ सकेंगे। हमें मालूम हो जायेगा कि थोड़े से लोगों की आंतकवादी, अत्याचारपूर्ण तथा स्वार्थपूर्ण कार्रवाइयों से किस तरह से सारी मानवता को हानि पहुंच सकती है।

राष्ट्रसंघ की सीमायें

जिस समय राष्ट्रसंघ काफी प्रभावशाली रूप में था उस समय भी उसका प्रभाव तमाम विश्व पर नहीं था बल्कि कुछ राष्ट्रों तक ही सीमित था और यही कारण था कि उसका प्रभाव सीमित था। आरम्भ में ही अमरीका के राष्ट्रसंघ से अलग हो जाने से शांति की रक्षा की ओर राष्ट्रसंघ के प्रयास और प्रभाव को भारी धक्का लगा। इसके अतिरिक्त जापान, जर्मनी तथा इटली जैसे बड़े राष्ट्रों के त्यागपत्र दे देने से राष्ट्रसंघ और भी अधिक कमजोर हो गया और उसकी सीमा और संकुचित

हो गई। इसके साथ ही राष्ट्रसंघ ने जानबूझकर अपने कार्यों की सीमा कम कर ली। १९२६ में मेक्सिको जब गुप्त रूप से निकारगुआं सरकार के राजनैतिक दुश्मनों को सहायता दे रहा था निकारगुआं सरकार ने मेक्सिको के खिलाफ राष्ट्रसंघ में अपील की। किन्तु बजाय इसके कि झगड़ा मैत्री-पूर्ण ढंग से सुलझा लिया जाता अमरीकी सरकार ने अमरीकी तथा विदेशियों की जान व माल की रक्षा के लिये निकारगुआं को रक्षक जहाज भेज दिये। इस पर राष्ट्रसंघ में एक प्रस्ताव स्वीकार कर घोषणा की गई कि केन्द्रीय अमरीका में शांति की स्थापना करना उसके अधिकार से बाहर की बात है। इधर मिस्र, यद्यपि वह १९२२ में एक स्वतंत्र राज्य माना जा चुका था, राष्ट्रसंघ की सदस्यता से पृथक कर दिया गया और इस तरह आंग्ल-मिस्री झगड़ों के साथ अन्तर्राष्ट्रीय विवाद की तरह व्यवहार नहीं किया गया। इसके अतिरिक्त चीन और बड़े राष्ट्रों के बीच विवाद भी राष्ट्रसंघ के हस्तक्षेप से वंचित रखा गया। इन सीमित अधिकारों तथा कार्रवाइयों के कारण राष्ट्रसंघ एक नपुँसक संस्था बन गयी। एक दूसरी सबसे बड़ी कमजोरी राष्ट्रसंघ में यह भी थी कि वह भाषणों और बहस में अधिक व्यस्त रहता था और रचनात्मक कार्यों में कम। उसकी जो कुछ व्यावहारिक कार्रवाइयां हुई भी वह इतनी सुस्त और कमजोर थीं कि वह किसी राष्ट्र पर प्रभाव न जमा सकीं।

प्रतिश्रव के प्रति अविश्वास

राष्ट्रसंघ के जीवन में कुछ ही उसके ऐसे सदस्य थे जो अपने वायदों और शपथ के पक्के थे। प्रतिश्रव का उल्लंघन करने वालों के खिलाफ आर्थिक बहिष्कार नीति नितांत अप्रभावशाली सिद्ध हुई। इटली इथोपियन विवाद में इटली के विरुद्ध आर्थिक बहिष्कार नीति का कोई भी परिणाम नहीं निकला। इटली ने अकेले होते हुए भी राष्ट्रसंघ के आदेश का उल्लंघन किया। जापान ने न केवल राष्ट्रसंघ के हस्तक्षेप का तिरस्कार किया बल्कि उसने खुले आम प्रतिश्रव का उल्लंघन किया।

अगस्त १९३९ में ही जब रूस ने जर्मनी के साथ परस्पर आक्रमण न करने की संधि की उसी समय प्रतिश्रव के प्रति उसका अविश्वास प्रकट हो गया, यही नहीं बल्कि फिनलैंड पर आक्रमण और पोलैंड को राष्ट्र-संघ की सदस्यता से वंचित करने के लिये बाधित करने की उसकी कार्रवाइयों से यह और भी साफ जाहिर हो गया कि वह राष्ट्रसंघ के सिद्धान्तों पर चलने को तैयार नहीं। इस तरह अन्तर्राष्ट्रीय नैतिकता का गिर जाना ही राष्ट्रसंघ की असफलता का कारण बना। होब्स ने ठीक ही कहा था कि बिना विश्वास के प्रतिश्रव बेकार है।

सार्वलौकिक हित की भावना का अभाव

एक सबसे बड़ी कमजोरी राष्ट्रसंघ के चालकों में यह थी कि उनमें सार्वलौकिक हित का ख्याल नहीं था। इसके अतिरिक्त छोटे राज्यों की आक्रमण तथा अत्याचार से रक्षा करने की ताकत भी उसमें नहीं थी। राष्ट्रसंघ सत्ताधारी राष्ट्रों के बीच सहयोग स्थापित करने का एक यन्त्र बन गया। इसके अतिरिक्त सदस्य राष्ट्रों में भी परस्पर सुसम्बन्ध नहीं था और उनकी जनता में संकुचित राष्ट्रीयता की भावना काफी तेज थी। इसी वजह से सार्वलौकिक हित की भावना जाग्रत नहीं हो सकी। शूमां के अनुसार राष्ट्र संघ और उसकी एजेंसियां मानव कल्याण तथा विश्व मैत्री की ओर कभी भी सफल सिद्ध नहीं हुईं।

एकमत का सिद्धांत

राष्ट्रसंघ के संविधान में कई बड़ी बड़ी कमजोरियां तथा त्रुटियां थीं। प्रतिश्रव के अनुसार किसी भी बैठक का निर्णय राष्ट्रसंघ की बैठक में उपस्थित तमाम सदस्य राष्ट्रों की राय से होता था। इस निर्णय में केवल उन्हीं राज्यों की राय नहीं ली जाती थी जिनका विवाद से सम्बन्ध होता था। प्रतिश्रव के संशोधन पर परिषद की स्वीकृति आवश्यक होती थी किन्तु उस पर सदस्य राष्ट्रों की पुष्टि भी लेनी जरूरी होती थी। जहां तक राष्ट्रसंघ की महासभा का सम्बन्ध था

धारा १५ में सिफारिशों तथा निर्णयों में अन्तर स्पष्ट कर दिया गया है। सिफारिशों के मामले मे साधारण बहुमत तथा निर्णयों के लिये निर्विरोध मत लेना पड़ता था। इस तरह राष्ट्रसंघ की तमाम कार्रवाइयां व्यावहारिक दृष्टि से सिफारिशों के रूप मे होती थी। नतीजा यह होता था कि राष्ट्रसंघ किसी भी राज्य को वैधानिक तौर पर दबा नही सकता था। इस तरह एकमत शासन अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के लिये बहुत बड़ा बाधक सिद्ध हुआ। राष्ट्रसंघ प्रतिश्रव में दूसरी खराबी यह थी कि वह शातिपूर्ण तरीके से सधियों के संशोधन के लिये उचित कदम नही उठाती थी।

राष्ट्रीय शस्त्रीकरण को निरुत्साहित करने में असफलता

राष्ट्रसंघ को शस्त्रीकरण की सीमा निर्धारित करने का अधिकार नहीं था। यद्यपि लायड जार्ज ने सुझाव दिया था कि शस्त्रीकरण का सीमाकरण सम्बन्धी समझौता सदस्य राष्ट्रों मे होना चाहिये। उन्होंने कहा था कि राष्ट्रसंघ तभी सफल हो सकता है जब सेना के निर्माण तथा संगठन में अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस तथा इटली के बीच प्रतियोगिता न हो कर एकरूपता कायम हो। प्रतिश्रव पर हस्ताक्षर होने से पूर्व जब तक उक्त समझौता नहीं हो जाता तब तक राष्ट्रसंघ का कोई महत्व नही और वह केवल छलमात्र ही है। यद्यपि धारा ८ के अनुसार राष्ट्रीय शस्त्रीकरण में इतनी कमी कर देनी चाहिये थी कि वह केवल आत्मसुरक्षा ही कर सके। किन्तु फिर भी राष्ट्रसंघ सामहिक सुरक्षा सम्बन्धी विश्वास सदस्य राष्ट्रों में पैदा नही कर सका। जहां एक राष्ट्र मे शस्त्रीकरण में वृद्धि शुरू हुई कि दूसरे राष्ट्रो मे भय, असंतोष तथा खलबली मचने लगी और उनकी सुरक्षा कार्रवाई दूसरों के लिये आक्रमणकारी कार्रवाई मालूम हुई। इस तरह विश्व में ऐसी स्थिति पैदा हो गई कि राष्ट्रों में परस्पर तनाव और झगड़ा बढ़ने लगा। आखिर शस्त्रीकरण में विघटन की धारा निहायत असफल रही।

प्रतिरोधी संस्था का अभाव

सर सेमुएल होर ने १९३५ में जनेवा में अपने वक्तव्य में कहा था कि राष्ट्रसंघ कोई ऐसी संस्था नहीं जिसका तमाम राज्यों के ऊपर प्रभाव हो अथवा यह कोई ऐसी स्वतंत्र संस्था नहीं जिसमें सभी देशों के प्रतिनिधि हों और जो स्वतंत्र हो जिसके निर्णय पर सभी अमल कर सकें। इसमें तो वही राष्ट्र है जो विवाद पैदा करते हैं और अपने वायदों और शपथ का उल्लंघन करते हैं। इसके अतिरिक्त राष्ट्रसंघ के पास कोई अन्तर्राष्ट्रीय हवाई, जल तथा थल सेना नहीं जिससे कि वह अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों के भंग करने वालों के खिलाफ जोरदार कार्रवाई कर सके। यही कारण था कि राष्ट्रसंघ उन राजनैतिक विवादों को सुलझाने में असफल रहा जिसमें बड़े राष्ट्रों का हाथ था। राष्ट्रसंघ के पास जो कुछ सैनिक ताकत अथवा प्रतिरोधी संस्था थी वह इतनी कमजोर तथा अप्रभावशाली थी कि शांति स्थापना का काम उसके बस का नहीं था। राष्ट्रसंघ में एक दूसरी बड़ी कमी यह थी कि जब तक कोई विवाद खतरनाक तथा गम्भीर स्थिति पर न पहुंच जाता वह उसमें कोई हस्तक्षेप नहीं करती थी जिसका फल यह होता कि उसे विवाद सम्भालने में कठिनाई हो जाती और अंत में वह असफल हो जाती थी।

तानाशाही राज्यों की आक्रमणकारी मनोवृत्ति

राष्ट्रसंघ को गिराने और असफल बनाने में सबसे बड़ा हाथ तानाशाही राज्य जर्मनी, इटली और जापान का था जो विभाजन और आक्रमण से विश्व पर अपना शासन कायम करना चाहते थे। उन्हें राज्यों में समानता लाने की नीति में विश्वास नहीं था और सामूहिक सुरक्षा के वे सख्त विरोधी थे। मुसोलिनी ने एक बार कहा था—"वह अधिकार जो बिना शक्ति अथवा संघर्ष के प्राप्त हुआ हो बेकार और अस्थायी है।" इस तरह जर्मनी के पुनःशस्त्रीकरण, इथोपिया पर इटली के आक्रमण, चीन पर जापानी हमले तथा बर्लिन-

रोम-टोकियो समझौता से राष्ट्रसंघ की शांति स्थापना तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का आन्दोलन भंग हो गया और वह सदा के लिए समाप्त हो गया।

आंग्ल-फ्राँसीसी सन्तुष्टिकरण नीति

ब्रिटेन और फ्रांस ने अपनी परम्परागत राष्ट्रीय नीति को कायम रखने के लिए राष्ट्रसंघ को एक हथियार की तरह प्रयोग किया। फ्रांस के लिये राष्ट्रसंघ केवल मित्रराष्ट्रों की एक व्यवस्था थी जिससे जर्मनी के आतंक से उसकी रक्षा की जा सकती थी। इधर ब्रिटेन ने अपनी परम्परागत राष्ट्रीय नीति पर अमल करते हुए आक्रमणकारियों के विरुद्ध सैनिक कार्रवाई में भाग लेने से अपने को अलग रखा। इस तरह आंग्ल-फ्रांसीसी संतुष्टिकरण नीति से कमजोर राष्ट्रों पर शक्तिशाली राष्ट्रों के आक्रमण को रोका नहीं जा सका और अन्तर्राष्ट्रीय कानून के भंग करने वाले सजा पाने से वंचित रहे, यद्यपि राष्ट्रसंघ को आक्रमणकारियों के विरुद्ध सामूहिक सैनिक कार्रवाई करने का अधिकार था। किन्तु चूंकि उसमें आक्रमणकारियों को खुश करने वाले तत्त्वों का अधिक प्रभाव था इसलिए वह कमजोर राष्ट्रों के लिए बेकार सिद्ध हुई।

राष्ट्रसंघ की सफलताएँ

यद्यपि राष्ट्रसंघ युद्ध को रोकने और शांति स्थापना में निहायत असफल रहा किन्तु विश्व में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग तथा सम्बन्ध के प्रचार में उसे अपूर्व सफलता मिली। जनेवा के एरियाना पार्क में समय-समय पर अन्तर्राष्ट्रीय बैठकों द्वारा राष्ट्रसंघ ने अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं तथा विवादों पर प्रकाश डाला और शांतिपूर्ण तरीके से उन्हें निबटाने का प्रयत्न किया। उसने विश्व के राष्ट्रों में शान्तिपूर्ण विचारधारा का प्रचार किया। उसने विशेषज्ञों की सलाह से अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों द्वारा आर्थिक तथा सामाजिक समस्याओं को हल किया। राष्ट्रसंघ की स्वास्थ्य

समिति ने हैजा, मलेरिया, चेचक, तपेदिक, मोतिजरा आदि भयानक रोगों के कारण की जाँच की और आरोग्य का साधन निकाला। यातायात सम्मेलन तथा बौद्धिक विकास के लिए समिति ने मूल्यवान सिफारिशें की। राष्ट्रसंघ ने दास प्रथा तया गांजा, भांग आदि सेवन को रोकने के लिए कई अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में प्रमुख राष्ट्रों से समझौता किया। हमारी सभ्यता को राष्ट्रसंघ की सबसे बडी देन अन्तर्राष्ट्रीय कानून को समुचित ढंग से नियमवद्ध करना था। राष्ट्रीयता, समुद्री अधिकार तथा राज्य का उत्तरदायित्व, इस सम्बन्ध में उसने बड़े अच्छे नियम बनाये। राष्ट्रसंघ की अन्तर्राष्ट्रीय न्याय की स्थायी अदालत ने कई अन्तर्राष्ट्रीय कानूनी विवादों को बड़ी ही कुशलता से सुलझाया।

राष्ट्रसंघ के पतन के कई वर्ष पहले ही हेली सेलेसी ने कहा था कि राष्ट्रसंघ आगे चलकर भंग हो जायेगा। आपने यह भी कहा था कि पश्चिमी राष्ट्र नष्ट हो जायेंगे। इस कथन की सत्यता सन् १९३९ में राष्ट्रसंघ के दो सदस्य, आस्ट्रिया और चैकोस्लोवाकिया के विनाश से स्पष्ट प्रतीत होता है। संक्षेप में पाशविक शक्ति ने न्याय पर विजय प्राप्त की। अमेरिका के विदेश मन्त्री कार्डेल हाल ने सत्य ही कहा था कि विश्व के प्रमुख राष्ट्रों के पारस्परिक समझौता और सहयोग बिना कोई भी संगठन शांति स्थापित नही कर सकता। आपस की फूट और संघर्ष ही शाति के परम् शत्रु हैं।

राष्ट्रसंघ के इतिहास पर प्रकाश डालने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि वैज्ञानिक तथा यांत्रिक उन्नति की तुलना में नैतिक उत्थान बहुत पीछे चला गया है।

व्याख्यान ३

क्षतिपूर्ति तथा आर्थिक संकट

विषय प्रवेश—शांति समझौतों के बाद यूरोप के कूटनीतिज्ञों के सामने वर्सेल-संधि के अन्तर्गत क्षतिपूर्ति की व्यवस्था एक जटिल तथा विवादास्पद समस्या थी। क्षतिपूर्ति का विषय सारे राष्ट्रों का ध्यान आकृष्ट किये हुए था और सर्वत्र चर्चा रहती थी। वास्तव में क्षतिपूर्ति-समस्या इतनी अधिक जटिल तथा टैक्निकल थी कि इससे न केवल करोड़ों व्यक्तियों के जीवन पर असर पड़ा बल्कि युद्धोपरान्त विजयी राष्ट्रों में भी मतभेद पैदा हो गया। यद्यपि मित्रराष्ट्रों को जर्मनी से युद्ध का सारा खर्च वसूल करने का नैतिक दावा था किन्तु धारा २३२ में यह स्पष्ट था कि सम्पूर्ण क्षतिपूर्ति देना जर्मनी की शक्ति से बाहर की बात है और किसी विशेष प्रकार की क्षति के सम्बन्ध में मित्रराष्ट्रों का दावा जिसमें मित्रराष्ट्रीय सेनाओं को पेन्शनें तथा भत्ते भी शामिल थे जर्मनी नामंजूर कर सकता था। संधि-पत्र में जर्मनी द्वारा दी जाने वाली क्षतिपूर्ति की मात्रा निर्धारित नहीं की गई थी इससे मित्रराष्ट्रों ने हर एक विषय में क्षतिपूर्ति की मात्रा बढ़ा दी। जर्मन क्षतिपूर्ति को समझने के लिए दो बातें ध्यान में रखनी चाहिये। पहली यह कि युद्ध के कारण जर्मनी के साधन

शिथिल पड़ गये और उससे उसके उपनिवेश तथा औद्योगिक केन्द्र भी हाथ से छिन गये। दूसरी यह कि मित्रराष्ट्रों में दो प्रमुख देश ब्रिटेन और फ्रांस में परस्पर तनाव पैदा हो गया। एक ओर फ्रांस जर्मनी का सम्पूर्ण ह्रास चाहता था तथा दूसरी ओर ब्रिटेन की नीति परास्त राष्ट्र जर्मनी के आर्थिक पुनरुत्थान की थी। इस प्रकार के मतभेद से जर्मन क्षतिपूर्ति की समस्या का सन्तोषजनक समाधान अनिश्चितकाल के लिए स्थगित करना पड़ा।

सम्पूर्ण राशि निर्धारित करने की समस्या

स्मरण रहे कि शांति-सम्मेलन का अन्तिम निर्णय यह था कि युद्ध के समय में जर्मनी को मित्र राष्ट्रों की नागरिक जनता तथा उनकी सम्पत्ति को हुई क्षति के वदले में सोना या अन्य सामान देना होगा। क्षतिपूर्ति निर्धारित करने का काम एक क्षतिपूरक आयोग (कमीशन) को सौंपा गया। इस आयोग में ब्रिटेन, इटली, फ्रांस और वेल्जियम के प्रतिनिधि थे। आयोग को अपनी रिपोर्ट मई १९२१ तक जर्मनी को सूचित कर देनी थी। इधर जर्मनी को अन्तरिम काल में विजयी मित्रराष्ट्रों को नक़द या माल के रूप में एक अरव पौंड अदा करना था। इस राशि से जर्मनी में पड़ी मित्रराष्ट्रों की सेनाओं का खर्च चलाना था और इससे वाकी वची राशि को क्षतिपूर्ति राशि के रूप में स्वीकार कर लेना था। १० जनवरी १९२० को वर्सेल संधि के लागू होने के वाद क्षतिपूर्ति समस्या किस तरह हल की जाय यह प्रश्न उठा। पहली समस्या यह थी कि जर्मनी क्षतिपूर्ति कितनी दे और किस तरीके से दे ? जर्मनी से कहा गया कि वह क्षतिपूर्ति की अदायगी के निमित्त कुल कितनी रकम देगा इसकी सूचना वह मित्रराष्ट्रों को शीघ्र दे। जुलाई १९२० में जर्मनी ने अपने प्रस्ताव 'इस्पा सम्मेलन' में रखे। यद्यपि ये प्रस्ताव वेहूदे और वेकार कह कर अस्वीकार कर दिये गये किन्तु अगले ६ मास तक जर्मनी कितना कोयला देगा इस सम्वन्ध में एक समझौता पत्र पर हस्ताक्षर हो गये। सम्मेलन का सवसे महत्व-

पूर्ण निर्णय मित्रराष्ट्रों को दी जाने वाली क्षतिपूर्ति का वितरण था। इसके अनुसार फ्रांस को ५२ प्रतिशत, ब्रिटेन को २२ प्रतिशत, इटली को १० प्रतिशत, बेल्जियम को ८ प्रतिशत तथा बाकी ८ प्रतिशत क्षतिपूर्ति की राशि छोटे राष्ट्रों में वितरण करना था।

जनवरी १९२१ में मित्रराष्ट्रीय तथा जर्मन विशेषज्ञ पेरिस में मिले। इस सम्मेलन में जर्मनी से ११ अरब पौंड की मांग की गई जो कि ४२ वार्षिक किश्तों में अदा करनी थी इसके अतिरिक्त जर्मनी से मांग की गई कि वह अपने निर्यात व्यापार आय का १२ प्रतिशत भी दे। इस प्रस्ताव से जर्मनी में विरोध की भावना भड़क उठी। जर्मन लोगों ने कहा कि यह योजना योग्य तथा विश्वसनीय विशेषज्ञों के सम्मेलन में नहीं बनाई गई, बल्कि इसे पागलखाने में रहने वाले व्यक्तियों ने बनाया है। मित्रराष्ट्रों ने उक्त योजना स्वीकार किये जाने के लिए जर्मनी पर दबाव नहीं डाला। लेकिन उन्होंने मार्च १९२१ में लन्दन के सम्मेलन में अपना उत्तर देने के लिए जर्मनी को बुलावा भेजा। जर्मनी ने इस बुलावे के उत्तर में अपना जो प्रस्ताव रखा, उसमें डेढ़ अरब पौण्ड क्षतिपूर्ति नकद देने तथा ऊपरी साइलेशिया पर अधिकार रखने और सारे व्यापारिक प्रतिबन्धों को उठा लेने का उल्लेख था। क्षतिपूर्ति की अदायगी के लिए जर्मनी ने शर्त यह रखी कि विजयी राष्ट्र अपनी तमाम सेनाएं जर्मनी से हटा ले। मित्रराष्ट्रों ने जर्मनी के इस प्रस्ताव को बिल्कुल बेहूदा बताया। इस प्रकार क्षतिपूर्ति वार्ता बिना किसी समझौते के समाप्त हो गई। मित्रराष्ट्रों ने जर्मनी द्वारा अंतरिम क्षतिपूर्ति न देने पर राइन नदी के तट स्थित डुजेल्डोर्फ, ड्यूसबर्ग तथा रूरोर्ट के औद्योगिक केन्द्रों पर कब्जा कर लिया। जर्मनी ने राष्ट्र-संघ में अपील की। उसने कहा, उसने आरम्भ की क्षतिपूर्ति अदा कर दी है। लेकिन जर्मनी की अपील बेकार सिद्ध हुई। इस विवाद को पुनः क्षतिपूर्ति-कमीशन के सामने रखा गया। कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में जर्मनी के दावे को झूठा बताया। कमीशन ने कहा कि जर्मनी ने अपना

उक्त दावा अब तक दिये गये माल की कीमत अत्यधिक निर्धारित करके किया है। कमीशन ने बताया कि जर्मनी को अन्तरिम क्षतिपूर्ति का ६० प्रतिशत अभी और देना बाकी है।

जब प्रत्यक्ष वार्ता असफल हो गई तो क्षतिपूर्ति निर्धारित करने का मामला क्षतिपूर्ति कमीशन ने अपने हाथ में लिया। उसने २८ अप्रैल १९२१ को जर्मनी द्वारा अदा की जाने वाली क्षतिपूर्ति की राशि ६,६००,०००,००० पौण्ड निर्धारित कर दी। अदायगी का ब्यौरा अ, ब, स तीन प्रकार के बौंडों में विभक्त किया गया। 'अ' और 'ब' बौन्ड में संपूर्ण क्षतिपूर्ति का एक तिहाई भाग अर्थात् २६०००००००० पौंड था, जो कि जर्मनी को एक अरब पौन्ड वार्षिक के हिसाब से अदा करना था। इसके अतिरिक्त उसे प्रति निर्यात मूल्य का २५ प्रतिशत भी देना था। 'स' पौण्ड की अदायगी, जो कि कुल राशि का दो तिहाई अर्थात् ४ अरब पौण्ड थी, अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दी गई। कमीशन ने आगे घोषणा की कि १ मई १९२१ तक जर्मनी ने जो राशि अदा की, वह जर्मनी में पड़ी विजयी राष्ट्रों की सेनाओं के व्यय के लिए अपर्याप्त थी।

इस प्रकार जर्मनी द्वारा अब तक अदा की गई राशि को बिल्कुल महत्व नहीं दिया और वह नहीं के बराबर मान ली गई। इस राशि को क्षतिपूर्ति में कोई स्थान नहीं दिया गया। ५ मई को जर्मनी को चुनौती दी गई कि यदि वह उक्त योजना स्वीकार न करेगा तो मित्रराष्ट्र रूर पर कब्जा कर लेंगे। चुनौती की अवधि समाप्त होने के एक दिन पूर्व वर्थ के संरक्षण में नये जर्मन मन्त्रिमंडल ने इन शर्तों को मंजूर कर लिया और इस प्रकार क्षतिपूर्ति समस्या का पहला चरण समाप्त हो गया।

जर्मनी की शोचनीय स्थिति (१९१९–१९२३)

यद्यपि जर्मनी ने लन्दन सम्मेलन को स्वीकार कर लिया, किन्तु

उसकी आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि वह क्षतिपूर्ति अदा कर सके। जर्मनी का अन्तर्राष्ट्रीय उधार न होने से वह विदेशी ऋण पाने में असमर्थ था। दूसरी ओर युद्ध में हुई क्षति के कारण उसके आयात बढ़ गये थे और निर्यात की मात्रा कम हो गई थी। इस तरह जर्मनी आर्थिक संतुलन बिल्कुल खो बैठा था। इसका नतीजा यह हुआ कि सोने का भण्डार निरन्तर खाली होता गया, मुद्रास्फिति बढ़ गई और जर्मन करेंसी की कीमत गिर गई। इधर जर्मनी के बड़े औद्योगिकों ने भी सरकार को सहयोग देने से इन्कार कर दिया। इन सब कारणों से जर्मनी अदायगी नकद अथवा माल किसी भी रूप में न कर सका। अगस्त १९२१ तक जर्मनी ने समझौता के अनुसार ५ करोड़ पौण्ड की प्रथम किस्त अदा कर दी, किन्तु करेंसी की कीमत में गिरावट आ जाने से उसे अदायगी अगले वर्ष तक के लिए स्थगित करने के लिए अपील करनी पड़ी। जर्मनी की इस प्रार्थना पर जनवरी १९२२ में कैनिस सम्मेलन में विचार किया गया। निर्णय हुआ कि जर्मनी अदायगी का थोड़ा-सा हिस्सा आगे के लिए स्थगित कर सकता है। इधर जर्मनी की मुद्रा की कीमत निरन्तर गिरती गई। जर्मन सरकार ने आर्थिक संकट के आधार पर क्षतिपूर्ति नकद देने में असमर्थता प्रकट की और मांग की कि नकद अदायगी १९२५ तक के लिए स्थगित कर दी जाय। इस मांग से ब्रिटेन और फ्रांस के कूटनीतिक सम्बन्ध में तनाव पैदा हो गया। ब्रिटेन के लायड जार्ज, बाल्फर तथा बोनरला, जो जर्मनी के पुनर्निर्माण के पक्ष में थे का विचार था कि क्षतिपूर्ति की अदायगी से पहले जर्मनी का आर्थिक दृष्टि से पुनरुत्थान जरूरी है। किन्तु दूसरी ओर फ्रांसीसी नेताओं की राय थी कि क्षतिपूर्ति की अदायगी शीघ्र होनी चाहिए। फ्रांसीसी नेताओं की राय क्षतिपूर्ति की शीघ्र अदायगी के पक्ष में इसलिए थी कि उसे युद्ध में बर्बाद अपने लगभग १३ हजार वर्गमील क्षेत्र को आर्थिक दृष्टि से स्वस्थ बनाना था। फ्रांसीसी नेता प्वायंकर

का कहना था कि जर्मनी को क्षतिपूर्ति की अदायगी के लिए और मुह-लत न दी जाय । इधर जर्मनी निर्धारित मात्रा में फ्रांस को लकड़ी सप्लाई न कर सका । इसका फल यह हुआ कि (जनवरी १९२३) पेरिस सम्मेलन में क्षतिपूर्ति आयोग ने वहुमत से जर्मनी को अपराधी ऐलान कर दिया । १० जनवरी १९२३ में जब क्षतिपूर्ति समस्या की दूसरी अवधि समाप्त हो गई फ्रांस ने घोषणा की कि नियंत्रकों का एक शिष्टमंडल शीघ्र रूर भेजा जायगा ।

रूर पर अधिकार (१९२३)

क्षतिपूर्ति समस्या का तीसरा चरण उस समय प्रारम्भ हुआ जब फ्रांसीसी व वेल्जियम सेनाओं ने रूर पर कब्जा कर लिया । प्वायंकर ने घोषणा की कि रूर पर कब्जा करने का फ्रांस का कोई इरादा नहीं किन्तु क्षतिपूर्ति न मिलने तक हम उस पर अधिकार रखना चाहते हैं । इस क्षेत्र की लम्बाई ६० मील और चौड़ाई २८ मील थी और यह जर्मनी का एक विशाल औद्योगिक केन्द्र था । अनुमान लगा कर बताया गया था कि जर्मनी के कोयला, लोहा, व इस्पात उत्पादन का ८० प्रतिशत तथा ७० प्रतिशत माल व रेलों का खनिज यातायात रूर पर निर्भर करता है । इसके ९ नगर थे और जर्मन आवादी की १० प्रतिशत जनता यहां निवास करती थी ।

जब फ्रांसीसी व वेल्जियम की सेनाओं ने रूर पर कब्जा कर लिया तो जर्मन सरकार ने विरोधी नीति अपनाई और फ्रांस व बेल्जियम को दी जाने वाली सारी क्षतिपूर्ति बंद कर दी । इसके विरोधस्वरूप फ्रांस व वेल्जियम सरकारों ने रूर से तैयार माल वाहर भेजना बंद कर दिया । जर्मनी पर भारी जुर्माने किये गये, सजायें दी गई, समाचार पत्रों पर प्रतिवन्ध लगा दिया गया, निजी सम्पत्ति जब्त कर ली गई और सैकड़ों जर्मन अधिकारियों व नागरिकों को रूर से निकाल दिया गया । जर्मनी के विरुद्ध फ्रांस व वेल्जियम की कार्रवाई

में ७६ जर्मन मारे गये व ८२ घायल हुए। इससे जर्मनी भुखमरी गरीबी और राष्ट्रीय ह्रास के गड्ढे में जा गिरा। जर्मन मुद्रा 'मार्क' की कीमत दिन पर दिन गिरती गई। दिसम्बर १९२२ में ३५००० मार्क १ पौंड के बराबर था किंतु १९२३ के अंत तक इसका मूल्य १ पौंड के मुकाबले में ५० हजार अरब तक बढ़ गया। वास्तव में जर्मनी बर्बाद हो गया। इसने फ्रांस से वार्ता शुरू की और रेलों को गिरवी रखकर अदायगी की गारंटी का वायदा किया। लेकिन प्वायंकर ने घोषणा की कि जर्मनी को पहले अपना विरोधी आंदोलन समाप्त कर देना होगा। फ्रांस ने कहा कि रूर को उसी समय छोड़ा जायगा जब जर्मनी अदायगी करने को तैयार हो जायगा। १२ अगस्त १९२३ को चांसलर कुनो को त्यागपत्र देना पड़ा और स्ट्रीसमैन के नेतृत्व में एक नया मंत्रिमंडल बनाया गया। उसने २६ सितम्बर को विरोधी आन्दोलन समाप्त किये जाने की घोषणा की। प्वायंकर की जीत हुई। अंत में क्षतिपूर्ति कमीशन ने जर्मनी की अदायगी स्थिति का पता लगाने के लिये आर्थिक विशेषज्ञों की एक निष्पक्ष अंतर्राष्ट्रीय कमेटी नियुक्त की।

वापस मंगाने के साधनों पर विचार करना था। इन समितियों ने १४ जनवरी १९२४ को अपना काम शुरू किया। और ९ जनवरी को १२४ पृष्ठों की अपनी रिपोर्ट क्षतिपूर्ति कमीशन को पेश की।

डावस कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि जर्मनी को प्रोत्साहित किया जाय कि जहां तक हो सके वह करों को अदा करे। रिपोर्ट में कहा गया कि जर्मनी के लोग बड़े उद्योगी और टैक्निकल दृष्टि से भारी कारीगर हैं। उसके पास औद्योगिक विकास के पर्याप्त साधन हैं। इससे वह विश्व प्रतियोगिता में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर सकेगा। जर्मनी को क्षतिपूर्ति अदा कर सकने योग्य बनाने के लिये डावस रिपोर्ट में निम्न सिफारिशें की गईं। (१) रूर से विजयी राष्ट्रों की सेनाएं हटा ली जांय जिससे कि जर्मनी की आर्थिक स्थिति सुधर जाये (२) जर्मनी क्षतिपूर्ति की अदायगी को सिक्योरिटी के रूप में चूंगी, शराब, तम्बाकू तथा चीनी पर कर से प्राप्त होने वाली आय वार्षिक दिया करे (३) वार्षिक क्षतिपूर्ति की अदायगी ५ करोड़ पौण्ड से शुरू होनी चाहिये और धीरे धीरे ४ वर्ष की अवधि से बढ कर १ अरब पौंड की सामान्य राशि तक पहुंच जानी चाहिये (४) भविष्य की अदायगी उन्नति के आंकड़ों के साथ साथ घटती या बढ़ती रहे (५) जर्मनी को ४ करोड़ पौंड का विदेशी ऋण दिया जाय जिससे कि वह करेंसी कोष कायम कर सके और क्षतिपूर्ति की प्रथम किश्त अदा कर सके। (६) ५० वर्ष के लिये अधिकृत एक केन्द्रीय बैंक (कोष-बैंक) की स्थापना की जाय, जो कि करेंसी जारी करे। इसका काम ७ जर्मनों और ७ विदेशियों के नियंत्रण में रहे। (७) नये नोट जारी किये जांय।

डावस रिपोर्ट के अन्त में इस बात की ओर संकेत किया गया था कि योजना कार्यान्वित करने में कोई देरी न हो। यह तभी लागू हो सकती है जब कि जर्मनी की आर्थिक स्थिति पहले जैसी हो जाय।

उस योजना का लागू होना तब तक के लिये स्थगित किया जा सकता है जब तक आर्थिक स्थिति न सुधर जाय। रिपोर्ट मिलने के दो दिन बाद क्षतिपूर्ति कमीशन ने क्षतिपूर्ति समस्या के समाधान के लिये इन सिफारिशों को व्यावहारिक आधार पर स्वीकार कर लिया। जर्मनी, ब्रिटेन, बेल्जियम व इटली ने अपनी स्वीकृति दे दी लेकिन फ्रांस ने जर्मनी द्वारा क्षतिपूर्ति न देने पर स्वतन्त्र स्वीकृतियों के लिये अपने अधिकारों को छोड़ना अस्वीकार कर दिया। अन्त में जुलाई–अगस्त में लन्दन सम्मेलन में डावस योजना को कार्यान्वित करने के लिये एक समझौता का मसविदा तैयार किया गया। फ्रांस ने यह स्वीकार किया कि जर्मनी ने क्षतिपूर्ति अदा करने में कोई आनाकानी अथवा विरोधी कार्रवाई अपनाई तो उसकी गलती क्षतिपूर्ति आयोग को सर्वसम्मति से ठहरानी होगी, जिसमें अमरीका भी शामिल रहे। सितम्बर १९२४ को योजना लागू की गई और ३१ जुलाई १९२५ को अन्तिम फ्रांसीसी व बेल्जियम सैनिकदस्तों ने रूर छोड़ दिया। राइन नदी के दोनों ओर अन्त में आर्थिक स्थिरता ने राजनैतिक गतिरोध पर विजय पाई।

आर्थिक स्थिति में सुधार होने से मित्रराष्ट्रों की अदायगी और भी बढ़ जाती। इसके अतिरिक्त डावस योजना में जर्मनी को विदेशों से बहुत सा कर्जा लेने के लिये प्रोत्साहित किया जिससे उसकी आर्थिक दिवालियापन के बीज बो दिये।

यङ्ग योजना (१९२९)

सितम्बर १९२८ में जब कि राष्ट्रसंघ की नौवीं असेम्बली का अधिवेशन हो रहा था फ्रांस, ब्रिटेन, बेल्जियम, इटली, जापान व जर्मनी के प्रतिनिधियों ने क्षतिपूर्ति समस्या के अन्तिम निर्णय तथा राइन क्षेत्र के शीघ्र खाली किये जाने के लिये वार्ता की। तय किया गया कि ६ सरकारों द्वारा आर्थिक विशेषज्ञों की एक समिति नियुक्त की जाय जिसमें अमरीका भी शामिल किया जाय, जोकि इस समस्या को हल करे। इस निर्णय के अनुसार नई समिति ने ११ फरवरी १९२८ को पेरिस में अपना काम शुरू किया। इसके अध्यक्ष एक अमरीकी प्रतिनिधि ओवन डी० यंग थे जिन्होंने डावस योजना के निर्माण में एक महत्वपूर्ण भाग लिया था। उनके ही नाम पर इस समिति का नाम 'यंग समिति' पड़ा। लगभग ४ मास के कठिन परिश्रम के पश्चात समिति ने अपनी ४० पृष्ठों की रिपोर्ट ७ जून १९२९ को क्षतिपूर्ति कमीशन के सामने रख दी। संक्षेप में 'यंग समिति' ने निम्न सिफारिशें कीं:—(१) जर्मनी को क्षतिपूर्ति ५८ वर्ष के लिये अदा करनी चाहिये। प्रथम ३६ वर्षों में वार्षिक अदायगी औसतन १० करोड़ पौण्ड होनी चाहिये। डावस योजना में अधिकतम राशि १२॥ करोड़ पौण्ड थी। शेष २२ वर्षों में हर वर्ष उक्त राशि का लगभग तीन चौथाई अदा किया जाय। (२) प्रत्येक वार्षिक अदायगी का एक तिहाई हिस्सा अर्थात ३ करोड़ ३० लाख पौंड बिना किसी शर्त के चुका देना चाहिये। इसमें किसी प्रकार की टालमटोल नहीं होनी चाहिये। इस राशि में से २॥ करोड़ पौण्ड फ्रांस को दिया गया

ओर शेप ३७ वर्ष के लिये कर्जा देने वाली १० सरकारों को बांटा गया। (३) रेलवे और औद्योगिक वौडों को रद्द किया जाय और क्षतिपूर्ति कमीशन द्वारा विदेशी नियंत्रण समाप्त किया जाय। (४) प्रथम ३७ वर्षों में वार्षिक अदायगी दो सूत्रों से की जाय। प्रथम जर्मन रेलवे कम्पनी तथा दूसरे रिपब्लिक के बजट से। रेलवे का ३३०००००० पौंड हैवस जर्मन सरकार को देना चाहिये। ३७ वर्ष बाद पूरी अदायगी जर्मन बजट से होनी चाहिये। (५) १ सितम्बर १९२९ के बाद राइन नदी क्षेत्र के अविकार के खर्चे से जर्मनी को छुटकारा दिया जाय। (६) क्षतिपूर्ति अदायगी की लेन-देन, बिना शर्त सालाना अदायगी पर प्राप्त किये अन्तर्राष्ट्रीय कर्जे को देने तथा सालाना अदायगी के कुछ भागों का व्यापारिक करार करने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों के एक बैंक की स्थापना की जाय। (८) बैंक का नियंत्रण व प्रबन्ध यंग समिति के प्रतिनिधित्व करने वाले ७ राष्ट्रों के केन्द्रीय बैंकों के बोर्ड आफ डायरेक्टर्स को सौंपा जाय। डावस योजना के मुकाबले में यंग योजना में अन्तिम समझौते के लिये वार्षिक अदायगियों की राशि व संख्या अवश्य निश्चित की गई।

इसके अतिरिक्त डावस योजना से वाह्य-नियंत्रण की प्रणाली हट गई; जर्मनी को सम्पूर्ण आर्थिक अधिकार प्राप्त हो गये और क्षति-पूर्ति की अदायगी के लिए उसकी कमर मजबूत हो गई। अन्त में पूरी योजना एक आर्थिक संस्था को सौंप दी गई जिसके प्रबन्ध कार्य में जर्मनी का भी हिस्सा तय किया गया।

अगस्त १९२९ में यंग योजना पर हेग में विचार किया गया, जबकि ब्रिटिश प्रतिनिधि ने इस्पा सम्मेलन द्वारा नियत किया गया मत्र का हिस्सा मांगा। लगातार गतिरोध के पश्चात् ब्रिटेन को राजी करने के लिए यंग योजना में कुछ परिवर्तन करके उसको ३० जनवरी १९३० को स्वीकार कर लिया गया। सम्मेलन नियत समय से ५ वर्ष

पूर्व ३० जून १९३० तक राइन क्षेत्र को खाली करने पर भी राजी होगया। १७ मई को यंग योजना लागू की गई। यद्यपि इस समय के रीश बैंक के गवर्नर डा० हायर शक्त ने इस मत पर अपने पद से त्यागपत्र दे दिया कि वार्षिक अदायगी जर्मनी की शक्ति से बाहर है। इस प्रकार ५ वां परिच्छेद क्षतिपूर्ति समस्या के पूरे व अन्तिम निवटारे के वाद समाप्त हुआ।

हूवर मुहलत

अभी यंग योजना को लागू हुए थोड़ा ही समय हुआ होगा, जबकि सम्पूर्ण विश्व में एक अनिश्चित आर्थिक संकट पैदा हो गया। यह आर्थिक संकट जो कि ४ वर्ष (१९२९-३३) रहा १९२९ के शरद ऋतु में अमरीका द्वारा यूरोप के सब कर्जे बन्द कर देने पर शुरू हुआ। इसके बाद कीमतों में भारी गिरावटें हुई। इस विश्वव्यापी संकट के कई कारण थे। अमरीका में सोना रिजर्व हो जाने के कारण उसका अप्रत्यक्ष अभाव हो गया। सुरक्षा करों व कोटों के ऊंचे हो जाने के कारण माल का आवागमन रुक गया, आवास पर प्रतिवन्ध होने के कारण अधिकांश आबादी का निस्कासन रुक गया। विदेशी कर्जों में कमी के कारण पूंजी के चलन में बाधा पड़ गई। सिक्कों पर प्रतिबंध के कारण व्यापारिक लेनदेन रुक गया, सोना स्टैंडर्ड के भंग हो जाने से आर्थिक विनिमय की स्थिरता रुक गई, क्षतिपूर्ति व अन्तर्मित्रराष्ट्रीय कर्जो व अनिश्चित अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के साथ साथ आर्थिक विश्वास के सामान्य होने में बाधा पड़ी। १९२९-३३ में जर्मनी के अंदर आर्थिक संकट इतना भीषण था कि अवधि के समाप्त होने पर बजट में इकट्ठी हुई कमी विदेशी कर्जों के अतिरिक्त १२ अरब रीश मार्क हो गई। विश्व में गिरावट के कारण विदेशों में उसके माल की खपत भी बंद हो गई। नतीजा यह हुआ कि १९३२ में इसके निर्यात ५६ प्रतिशत गिर गये और बेकारों की संख्या ६० लाख तक पहुंच गई। मार्च १९३० में चांसलर ब्रूनिंग द्वारा वचत व छटनी करके संकट

१९३१–३२ से मित्रराष्ट्रों को क्षतिपूर्ति मिलनी रुक गई । राष्ट्रपति रूजवेल्ट के चुनाव के बाद १९३२ में फ्रांस और ब्रिटेन ने उनसे अनुरोध किया कि वह मित्रराष्ट्रों को अमरीका से युद्ध-काल में मिले ऋण के मामलों में हस्तक्षेप करे किन्तु रूजवेल्ट ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया । इस तरह कर्ज का प्रश्न अनिर्णीत ही रहा । १९३३ में ब्रिटेन ने अमरीका को एक करोड डालर चांदी में सांकेतिक अदायगी के रूप में अदा किये किन्तु अन्य कर्जदारों ने अदायगी नहीं की । केवल फिनलेंड ही ऐसा था जिसने सारा कर्ज अदा किया । १९३४ में अमरीका ने सांकेतिक अदायगी को रद्द कर दिया । इस पर कर्जदारों ने किश्तो का अदा करना बन्द कर दिया ।

विश्व आर्थिक सम्मेलन

लौजान सम्मेलन ने आगामी वर्ष एक विश्व आर्थिक सम्मेलन बुलाने का निर्णय किया । अमरीका न निमत्रण का जवाब दिया कि वह सम्मेलन मे उसी हालत मे शामिल हो सकता है यदि उसमे अंतर्मित्रराष्ट्रीय कर्ज के मामले पर विचार न किया जाय । ६ जून १९३३ मे भयंकर आर्थिक संकट की समस्या पर विचार करने के लिये लंदन में ६७ राष्ट्रों के प्रतिनिधियों की बैठक हुई । अतर्राष्ट्रीय आर्थिक स्थिति इतनी भयंकर हो गई कि परस्पर मिलकर उसे सम्भालना जरूरी हो गया । अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार ६० प्रतिशत कम हो गया, बेकारों की संख्या तीन करोड़ तक पहुच गई और इसके साथ ही कई देशों में राष्ट्रीय आय ४० प्रतिशत घट गई । लंदन के सम्मेलन में यूरोपियन देशो (फ्रांस, इटली, बेल्जियम, स्विटजरलेंड और नीदरलेंड) ने मिलकर स्वर्ण गुट्ट बनाया और इस बात पर जोर दिया कि मुद्रा की हालत सुदृढ़ बनाने के लिए तटकर में कमी की जाय और व्यापारिक रुकावटें समाप्त की जांय । लेकिन अमरीका ने स्वर्ण की उपेक्षा करते हुए पुनर्निर्माण योजना नीति अपना ली । इस नीति से

उसका उद्देश्य डालर के मूल्य को घटा कर वस्तुओं के दाम बढ़ा देने का था । मुद्रा प्रश्न पर कोई समझौता न हो सकने के कारण सम्मेलन आर्थिक खींचातानी को समाप्त करने में असफल रहा । २७ जुलाई १९३३ को यह अनिश्चित काल के लिये स्थगित कर दिया गया। इस तरह आर्थिक और राजनैतिक दोनों दृष्टि से अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग कायम करने का प्रयास असफल रहा ।

नवीन आर्थिक नीति

अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संकट, व्यापार तथा मालों के सरलता से आदान-प्रदान में बाधा के कई कारण थे । अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में बाधा उत्पन्न करने वाले सबसे बड़े कारण तटकर रुकावटें थीं जो नये गणतन्त्रों के बनने से और भी मजबूत बन गईं । दूसरा—कोटा व्यवस्था का जारी होना था । इससे निर्यात पर नियंत्रण कायम हो गया । तीसरा—परस्पर लेन-देन की व्यवस्था। इससे जो देश जितना माल निर्यात करता था उतना ही माल उसे उस देश से आयात भी करना पड़ता था, जिससे आयात और निर्यात का संतुलन कायम रह सके । इससे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के स्वच्छन्द रूप में चलने में बाधा उपस्थित हो गई । चौथा—यह कि माल के बदले माल लेने से व्यापार विकसित नहीं हो पाया । पांचवां कारण जो व्यापार में बाधा बना यह था कि रकम के निर्यात पर कई राज्यों द्वारा लागू किये गये नियंत्रण थे । इससे माल की मांग और सप्लाई व्यवस्था बिलकुल बेकार हो गई और व्यापारिक स्वतन्त्रता समाप्त हो गई। छठा—मुद्रा के अदला-बदली मूल्य में गिरावट आ जाना । सातवां—अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सहायता लेन-देन बन्द हो जाना । आठवां—राष्ट्रों में असुरक्षा की भावना पैदा हो जाना जिससे व्यापार की प्रगति में बाधा उपस्थित हो गयी ।

इन सब कारणों का असर यह हुआ कि अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक

सहयोग कायम न हो सका और देशों को अपने-अपने साधनों पर निर्भर रहना पड़ा। १९३६ में जब ४ वर्षीय योजना लागू की गई तो तीसरी जर्मन सरकार की रेव ने एक नई आर्थिक नीति अपनाई। इसका नारा 'मक्खन की जगह बंदूक' था। आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने के उद्देश्य के पीछे मतलब था घरेलू प्रयोग के लिए कच्चे माल के उत्पादन को बढ़ाना। बाहर से आयात होने वाली वस्तुओं की जगह बनावटी माल तैयार किये गये जिससे कि विदेशी माल की जरूरतों को पूरा किया जा सके। इस सम्बन्ध में नये आविष्कार किये गये। विदेशों में आयात को रोकने के लिये नये किस्म के ऊन और रबड़ तैयार किये गये। कोयले से तरल पदार्थ निकाला गया। जिसे ईंधन के रूप में प्रयोग किया जा सकता था। अन्न के आयात को बन्द करने के लिये बेकार जमीनों को खेती योग्य बनाया गया तथा आलू और चीनी का उत्पादन बढ़ा दिया गया। इसका फल यह हुआ कि बेकारी समाप्त हो गई। सैनिकीकरण का पुनरुत्थान होने लगा। जर्मनी को घमंड था कि आर्थिक आत्मनिर्भरता मे जर्मनी न केवल आर्थिक दृष्टि से सबल हो जायगा बल्कि युद्ध के समय कम से कम ३० वर्षों तक आर्थिक तालेबन्दी का मुकाबला कर सकेगा। इटली में फासिसवाद के जागने से जर्मनी की तरह स्थिति पैदा हो गई। १९३६ में जब अबिसीनिया का युद्ध चल रहा था मुसोलिनी ने घोषणा की कि "आर्थिक स्वतन्त्रता के बिना राजनैतिक आजादी नहीं मानी जा सकती।" इटली के पास पेट्रोल, रबड़ तथा अच्छे किस्म के कोयले जैसे कच्चे माल का अभाव था दूसरी तरफ उसके पास ऊन का उत्पादन इतना नहीं था कि वह अपनी जरूरतों को पूरा कर सके। अपनी मांग को पूरा करने के लिये उसने बनावटी किस्म का माल बनाना आरम्भ किया। अन्न की दृष्टि से आत्मनिर्भर बनने के लिये उसने गेहूँ उत्पादन मात्रा काफी बढ़ा दी। इसका नतीजा यह हुआ कि अन्न के अन्तर्राष्ट्रीय विभाजन पर आधारित विश्व आर्थिक व्यवस्था के

विरुद्ध प्रतिक्रियाएँ शुरू हो गईं। इसके अतिरिक्त कच्चे माल के समान वितरण तथा अतिरिक्त आबादी के लिये बस्तियों तथा उपनिवेशों की व्यवस्था करने सम्बन्धी समस्यायें उठ खड़ी हुईं जिससे यूरोपीय देशों के भावी सम्बन्ध और भी अधिक खराब हो गये।

सिंहावलोकन—वास्तव में इस काल में राजनैतिक और आर्थिक तत्वों का परस्पर कसमकस इतना उलझा हुआ था कि कारण और प्रभाव का पता लगाना बड़ा कठिन था। यह कहना मुश्किल था कि राजनैतिक सुरक्षा ही जिससे राष्ट्रों में परस्पर सहयोग तथा निशस्त्रीकरण कायम होने में रुकावट पैदा हुई, आर्थिक संकट का कारण था अथवा आर्थिक असुरक्षा के कारण वे एक दूसरे के समीप न आ सके। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् आर्थिक राष्ट्रीयता ने यूरोप के प्रमुख राज्यों में राजनैतिक राष्ट्रीयता के साथ-साथ उग्र रूप धारण किया और द्वितीय महायुद्ध (१९३९) में परिणत हुआ। प्रसिद्ध लेखक टायनबी के शब्दों में यह कहना अतिशयोक्ति नहीं कि प्रत्येक राष्ट्र ने शक्ति प्रयोग से आर्थिक और व्यापारिक रुकावटों को दूर करना समयानुकूल समझा। अन्त में विश्व के विभिन्न राष्ट्र आर्थिक जीवन की जटिल समस्याओं को हल करने के लिए प्राचीन अस्त्र तलवार का प्रयोग करने के लिए बाध्य हुए।

व्याख्यान ४

सुरक्षा की खोज में

विषय प्रवेश—राष्ट्रसंघ के समक्ष शस्त्रीकरण का विघटन करना सबसे गम्भीर और उलझी हुई समस्या थी। राष्ट्रसंघ के सदस्यों का कहना था कि शांति स्थापना के लिये शस्त्रीकरण को कम करके इस स्तर पर ला दिया जाय कि उससे केवल राज्य की रक्षा की जा सके। इसके अतिरिक्त गैर सरकारी तौर पर शस्त्रों का निर्माण बिल्कुल रोक दिया जाय। किन्तु शस्त्रीकरण समस्या ऐसी थी कि इसमें सारे राजनैतिक सम्बन्ध निहित थे। राष्ट्रों में शांति स्थापना के प्रति विश्वास का न केवल अभाव था बल्कि विश्व के राजनैतिक सम्बन्ध इतने बिगड़ गये थे कि सारे राष्ट्र अपने को असुरक्षित समझने लगे थे और इससे वे शस्त्रीकरण कम करने को तैयार नहीं थे। १९१९ से १९३९ के बीच सुरक्षा सम्बन्धी राष्ट्रों में जो आधारभूत मतभेद पैदा हुए, उससे अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था भंग हुई, हालांकि वे दूसरा विश्व युद्ध बिल्कुल नहीं चाहते थे। किन्तु उनके सामने प्रश्न था कि युद्ध कैसे रोका जाय तथा अपने को किस तरह सुरक्षित बनाया जाय। इसका नतीजा यह हुआ कि जहां एक देश ने अपनी सुरक्षा का कदम उठाया तो वह दूसरे देश के लिये असुरक्षा का विषय बन गया। इस तरह से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का इतिहास एक ऐसा काल था जब परस्पर मैत्री और गारंटी का निरन्तर प्रयास होता रहा।

सुरक्षा मैत्री की व्यवस्था (१९२०–१९२७)

यूरोपीय मामलों में सबसे महत्वपूर्ण और सिर दर्द का विषय फ्रांस की मांग बनी हुई थी जिसमें वह बार-बार सुरक्षा की मांग करता रहा। फ्रांस का अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में भाग लेने का केवल एक ही उद्देश्य था कि फ्रांस को जर्मनी के पुनः आक्रमण से बचाने की व्यवस्था की जाय। यहां तक कि युद्ध समाप्त हो जाने के बाद भी फ्रांसीसी राजनीतिज्ञों का कहना था कि जर्मनी अभी भी सैनिक दृष्टि से फ्रांस से अधिक शक्तिशाली है। उनका यह भी कहना था कि जर्मनी की आबादी अभी भी यूरोप के किसी भी राज्य से अधिक ही है। फ्रांस को भय था कि उसकी आबादी में यदि तनिक भी गिरावट हुई तो वह जर्मनी के मुँह का ग्रास बन जायगा।

जर्मनी की ताकत तोड़कर भावी आक्रमण से फ्रांस को मुक्त कराने के लिये पेरिस शांति कांग्रेस में फ्रांसीसी प्रतिनिधि ने मांग की कि राइन नदी का पश्चिमी तट फ्रांस के अधिकार में दे दिया जाय। किन्तु अमरीकी प्रेसीडेन्ट विल्सन और ब्रिटिश प्रधान मंत्री लायड जार्ज ने फ्रांसीसी सीमा राइन नदी तक बढ़ाने देने से इन्कार कर दिया। उनका कहना था कि इससे जर्मनी अपनी ५० लाख जनता से वंचित रह जायगा। काफी गरम बहस के बाद फ्रांस अपनी सुरक्षा सम्बन्धी निम्न बातों पर राजी हो गया। (१) भावी जर्मन आक्रमण से फ्रांस की सुरक्षा तथा राइन नदी के पश्चिमी तट पर मित्रराष्ट्रीय सेना का १५ वर्ष तक अधिकार रहेगा। (२) राइन क्षेत्र में पूर्णरूप से विसैनिकीकरण और (३) तीन दलों की संधि की जाय कि फ्रांस पर जर्मनी के आक्रमण होने की हालत में ब्रिटेन और अमरीका फ्रांस की सहायता करेंगे। किन्तु अमरीका द्वारा पेरिस में हुई संधियों पर हस्ताक्षर करने से अस्वीकार कर देने से उक्त तीन दलों की संधि

अप्रभावशाली और बेकार सिद्ध हुई क्योंकि उसमें ब्रिटेन का शरीक होना अमरीका के आने पर ही निर्भर था।

अन्त में फ्रांस को अपनी मनोकामना पूरी करने के लिये छोटे राष्ट्रों की ओर देखना पड़ा। इस ओर पहला कदम जो फ्रांस ने उठाया वह बेल्जियम के साथ समझौता करना था। यह समझौता ७ सितम्बर १९२० में हुआ। यद्यपि यह समझौता राष्ट्रसंघ में दर्ज करा दिया गया था, किन्तु इसकी महत्वपूर्ण शर्तें गुप्त रखी गई। किन्तु फिर भी यह साफ प्रकट था कि फ्रांस और बेल्जियम जर्मनी के आक्रमण

को केनिस में सम्पन्न हुआ। दूसरे दिन ब्रियां को प्रधानमंत्री पद से मजबूर होकर त्याग-पत्र देना पड़ा। उनके स्थान पर प्वायंकर प्रधानमंत्री नियुक्त हुए। यह ब्रियां से अधिक गरम मिजाज के थे। इन्होंने मांग की कि ब्रिटेन के साथ जो समझौता हुआ है वह पारस्परिक सुरक्षा के आधार पर होना चाहिये। समझौता में फ्रांसीसी जमीन हटाकर 'फ्रांस' रखा जाय और यह समझौता ठोस बनाया जाय तथा इसकी मियाद १० वर्ष से बढ़ाकर ३० वर्ष कर दी जाय। इस पर ब्रिटेन ने यह कहकर कि शायद दूसरे राष्ट्रों में ब्रिटेन के प्रति विरोधी भावना पैदा हो जाय सैनिक समझौता करने से इन्कार कर दिया। आखिर जून १९२२ में जब क्षतिपूर्ति मामलों पर दोनो देशों में मतभेद उठ खड़ा हुआ तो उक्त समझौता बिल्कुल भंग हो गया।

वास्तव में रूर पर अधिकार प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्वायंकर योजना का फल था। योजना का उद्देश्य प्रथम जर्मनी को क्षतिपूर्ति की अदायगी करने के लिये मजबूर करना। दूसरे जर्मनी के औद्योगिक विकास में ऐसी अड़चन और बाधा खड़ी करनी जिससे कि आर्थिक दृष्टि से वह बिल्कुल कमजोर हो जाय। तीसरे यह कि राइन क्षेत्र में पृथकवादी आंदोलन को प्रोत्सहित कर फ्रांस और जर्मनी के बीच एक कड़ी राज्य कायम कर दिया जाय।

१९२०-२१ में चेकोस्लोवाकिया, युगोस्लाविया तथा रूमानिया के बीच एक समझौता हुआ (त्रिगुट) जिसके अनुसार बिना किसी विवाद के आक्रमण होने पर सब मिलकर आक्रमण से प्रभावित देश की सैनिक सहायता करेंगे और यथापूर्व स्थिति बनाये रखने में एक दूसरे की मदद करेंगे। १९२२ में उक्त समझौता में पोलैंड भी आ गया। १९२३ में फ्रांस ने पोलैंड, यूगोस्लाविया तथा रूमानिया को कर्ज दिया जिससे कि वे उससे सैनिक सामान खरीद सकें। २५ जनवरी १९२४ को फ्रांस और जेकोस्लोवाकिया में एक संधि पर हस्ताक्षर हुए। संधि की शर्तों के

अनुसार विदेशी नीति से सम्बन्धित मामलों पर दोनों देश एक दूसरे से परामर्श लेंगे और एक दूसरे की सहायता करेंगे। इसी प्रकार की संधि १९२६ में फ्रांस और रूमानिया तथा १९२७ में फ्रांस और युगोस्लाविया के बीच हुई। इस तरह फ्रांस ने सुरक्षा के नाम पर यूरोप में एक नया आधिपत्य कायम किया। फ्रांस ने जर्मनी के सम्भावित भय का सामना करने के लिए यूरोप में अपनी स्थिति मजबूत करली। फ्रांस ने लिथुआनिया के विरुद्ध पोलैंड का, हंगरी और युगोस्लाविया के विरुद्ध रूमानिया का साथ देना आरम्भ किया। इसमें संदेह नहीं कि फ्रांस ने अपनी सुरक्षा के लिये यूरोप के ६ देशों के साथ विभिन्न प्रकार के समझौते कर लिये किन्तु ये समझौते फ्रांस को बड़े महंगे पड़े क्योंकि जिन देशों के साथ उसने समझौता किया उन्हें उसे सदैव ऋण देना पड़ गया। इसके अतिरिक्त उनकी स्थिति अत्यंत शोचनीय और अनिश्चित थी क्योंकि एक तो वे काफी छोटे थे और दूसरे उनके पास सैनिक साधन पर्याप्त नहीं थे। इधर उक्त सुरक्षा समझौतों के कारण फ्रांस के प्रति पूर्वी और पश्चिमी यूरोप में संदेह पैदा हो गया। इटली और जर्मनी को तो फ्रांस के प्रति काफी संदेह पैदा हो गया।

बेनिटो मुसोलिनी के नेतृत्व में इटली मे फासिसवाद के उत्थान के साथ ही पड़ोसी देशों के साथ मैत्री समझौते भी होने लगे। यह फ्रांसीसी सुरक्षा व्यवस्था के लिये बड़ा घातक सिद्ध हुआ। २७ जनवरी १९२४ को इटली ने पेरिस शांति संधियों को कायम रखने के लिये युगोस्लाविया के साथ मैत्री व सहयोग का एक पंचवर्षीय समझौता किया। इसके बाद इटली ने पूर्वी देशो को अपने साथ मिलाने के लिये जेकोस्लोवाकिया, रूमानिया, हंगरी, तुर्की और यूनान के साथ मैत्री समझौते किये। इटली और अल्बानिया के बीच २७ नवम्बर १९२६ को हुई तिराना संधि के अनुसार इटली ने अल्बानिया को आर्थिक सुविधायें प्रदान करने के हेतु उसे यथापूर्व राजनैतिक, कानूनी तथा प्रादेशिक

अधिकार देने के लिये गारंटी दी। १९२७ में इटली ने अल्बानिया के साथ एक २० वर्ष का सुरक्षा समझौता किया। १९२६ में इटली और स्पेन के बीच तटस्थता सम्बन्धी समझौते पर हस्ताक्षर हुए। इस तरह इटली ने फ्रांसीसी सुरक्षा मोर्चे के विरुद्ध अपने को हर तरह से मजबूत बना लिया।

इधर यूरोप के राष्ट्र अपनी सुरक्षा के लिये गठबंधन करने और अपनी ताकत बढ़ाने में व्यस्त थे बोल्शेविक राज्य भी इस मर्ज से वंचित न रह सका। शक्तिशाली यूरोपियन गुटों के निर्माण को देख कर सोवियत अपने हितों की रक्षा के लिये अपनी शक्ति बढ़ाने लगा। १९२५ मे रूस और तुर्की के बीच एक दूसरे पर आक्रमण न करने का एक समझौता हुआ। निर्णय हुआ कि यदि किसी देश ने उनमें से किसी पर आक्रमण किया तो दूसरा तटस्थ रहेगा। मतलब यह कि वे एक दूसरे पर न तो आक्रमण करेंगे और न आक्रमण करने वाले को सहायता देंगे। १९२६ में इसी प्रकार का एक समझौता रूस का जर्मनी के साथ भी हुआ। इसके तत्काल बाद लिथुआनिया, अफगानिस्तान तथा फारस के साथ रूस ने तटस्थता और परस्पर आक्रमण न करने सम्बन्धी समझौते किये।

इस प्रकार यूरोप पुनः तीन शक्तिशाली गुटों में विभाजित हो गया। विभाजित गुटों का नेतृत्व फ्रांस, ईरान और सोवियत संघ के हाथ पड़ा।

अस्थाई संयुक्त कमीशन

राष्ट्रसघ के प्रतिश्रव में इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया गया था कि परिषद प्रत्येक राज्य की भौगोलिक स्थिति तथा उसकी परिस्थितियों को मद्दे नजर रखते हुए ही शस्त्रीकरण में विघटन की योजना बनायेगी। योजनाओं के विभिन्न सरकारों द्वारा स्वीकार कर लिये जाने के बाद शस्त्रीकरण की निर्धारित सीमा बिना परिषद की सम्-

मति के बढ़ाई नहीं जा सकती। प्रतिश्रव के अनुसार निशस्त्रीकरण कार्यक्रम को कार्यान्वित करने के हेतु परिषद को आवश्यक सलाह देने के लिये एक स्थायी कमीशन की स्थापना भी करना था।

अनिवार्य निशस्त्रीकरण का आरम्भ उस समय हुआ जब जर्मनी, आस्ट्रिया, बल्गेरिया तथा हंगरी के साथ शांति संधि करके उन्हें अपनी सेना कम कर देने के लिये मजबूर कर दिया गया। विश्वव्यापी निशस्त्रीकरण की ओर यह पहला कदम था। मई १९२० में राष्ट्रसंघ असेम्बली बैठक में शस्त्रीकरण की वर्तमान स्थिति की रिपोर्ट तैयार करने के लिये एक स्थायी परामर्शदातृ आयोग की स्थापना की गई। २५ फरवरी १९२१ को परिषद ने एम. विवाजी की अध्यक्षता में एक अस्थायी संयुक्त कमीशन की स्थापना की जिसका उद्देश्य शस्त्रीकरण के विघटन के अधारभूत सिद्धान्त को स्पष्ट करना था। १९२२ में कमीशन में ब्रिटिश प्रतिनिधि लार्ड इशर ने सुझाव रखा कि विभिन्न देशों में अनुपात के अनुसार सेना होनी चाहिये। यह सुझाव कुछ टैक्निकल कारण वश बाद में रद्द कर दिया गया। इसी बीच अस्थायी संयुक्त कमीशन ने विभिन्न देशों के शस्त्रीकरण सम्बन्धी आंकड़े प्राप्त किये तथा सैनिक बजट और राष्ट्रीय सुरक्षा सम्बंधी आवश्यक सूचनाएं इकट्ठी की। कमीशन की उक्त रिपोर्ट पर राष्ट्रसंघ महासभा ने शस्त्रीकरण सम्बन्धी व्यय पर नियंत्रण लगाने की सिफारिश की।

पारस्परिक सहायता संधि का मसविदा

१९२२ में कमीशन के एक सदस्य लार्ड राबर्ट सिसिल ने शस्त्रीकरण में विघटन के लिये ४ प्रस्ताव प्रस्तुत किये जिन्हें कमीशन ने निम्न रूप में स्वीकार किया : शस्त्रीकरण के विघटन की कोई भी योजना तब तक सफल नहीं हो सकती जब तक कि उसे आम रूप न दे दिया जाय। विश्व की वर्तमान स्थिति में अधिकांश सरकारें शस्त्रीकरण में कमी नहीं कर सकतीं जब तक कि उनके राज्यों की रक्षा के लिये

सन्तोषजनक गारंटी न हो। इस प्रकार की जो गारंटी हो वह आम अथवा सबकी ओर से हो। यह गारंटी तभी सत्य मानी जायेगी जब तमाम सदस्य राष्ट्र अपने यहां शस्त्रीकरण में कमी करने के लिये निश्चित वायदे करें। राष्ट्रसंघ की तीसरी महासभा ने कमीशन से अनुरोध किया कि पारस्परिक सुरक्षा सम्बन्धी एक संधि का मसविदा तैयार करे। नतीजा यह हुआ कि पारस्परिक सुरक्षा सहायता सम्बन्धी दो मसविदे प्रस्तुत किये गये जिसमें से एक लार्ड सेसिल और दूसरा कर्नल रेडिवन का था। संधि के मसविद में कहा गया था कि: (१) संधि पर हस्ताक्षर करने वालों को आश्वासन देना पड़ेगा कि उनमें से किसी पर आक्रमण होने पर बाकी हस्ताक्षरकर्त्ता देश उसकी सहायता करेंगे। (२) हस्ताक्षर-कर्त्ता देश अपनी सुरक्षा के लिये परस्पर समझौता कर सकते हैं लेकिन इसकी शर्तें राष्ट्रसंघ के सचिवालय में पहले दर्ज करवा देनी होंगी। (३) आक्रमण की हालत में, आक्रमणकारी कौन है इसका निर्णय राष्ट्रसंघ परिषद ही कर सकेगी। निर्णय के ४ दिन के भीतर ही राष्ट्र-संघ यह भी निश्चय करेगा कि संधि के अन्तर्गत आक्रमण से पीड़ित राष्ट्र को सहायता दी जानी चाहिये कि नहीं। (४) ऐसे राज्यों को जो परिषद द्वारा निर्धारित शस्त्रीकरण के अनुसार दो वर्ष के भीतर अपना शस्त्रीकरण सीमित नहीं कर पाये वे पारस्परिक सहायता पाने के अधिकारी नहीं होंगे। (५) संधि के अनुसार आक्रमणकारी के विरुद्ध की गई कार्रवाइयों का सारा व्यय आक्रमणकारी राज्य को बर्दास्त करना होगा।

सितम्बर १९२३ में राष्ट्रसंघ की चौथी असेम्बली में उक्त मसविदा संधि निर्विरोध स्वीकार कर ली गई और उसकी प्रतियां समस्त राष्ट्रों को प्रेषित कर दी गई। संधि पर प्राप्त उत्तरों से पता चला कि १८ राष्ट्रों ने जिनमें फ्रांस, इटली और जापान भी हैं, सैद्धांतिक तौर पर संधि को स्वीकार कर लिया है और १२ राज्यों ने जिनमें

ब्रिटेन, जर्मनी, अमरीका तथा रूस हैं, संधि को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया है। संधि को अस्वीकार करने वाले राज्यों की शिकायत थी कि संधि के मसविदे में आक्रमण की परिभाषा स्पष्ट नहीं की गई है तथा आक्रमणकारी राज्य के साथ कठोर व्यवहार करने के लिए राष्ट्रसंघ परिषद को पर्याप्त अधिकार नहीं प्राप्त हुआ है। विरोधी राज्यों का यह भी कहना था कि संधि स्थिर तथा विश्वसनीय नहीं जो कि शस्त्रीकरण में विघटन का आवश्यक आधार है।

जनेवा प्रोटोकोल (समझौता)

सितम्बर १९२४ में ब्रिटेन और फ्रांस के दोनों समाजवादी प्रधान मंत्री—रामजे मेकडोनाल्ड तथा हेरियो—ने निःशस्त्रीकरण, सुरक्षा तथा न्याय पर आधारित शस्त्रीकरण में विघटन सम्बन्धी एक संयुक्त प्रस्ताव राष्ट्रसंघ की पांचवी महासभा में प्रस्तुत किया। इस प्रस्ताव के फलस्वरूप पोलिटीस तथा बेन्स ने प्रशान्त क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों के निबटारे के लिये एक संधि का मसविदा तैयार किया। यह मसविदा २ अक्तूबर १९२४ को राष्ट्रसंघ की असेम्बली में निर्विरोध स्वीकार कर लिया गया। तथाकथित जनेवा संधि की प्रमुख बातें निम्न प्रकार थी: (१) आक्रमण अथवा युद्ध एक अंतर्राष्ट्रीय अपराध है और प्रतिश्रव को पालन करने वाले देशों पर आक्रमण करना भारी अपराध होगा। (२) वैधानिक विवादों को अन्तर्राष्ट्रीय न्याय की स्थायी अदालत सुलझायेगी और राजनैतिक झगड़ों को राष्ट्रसंघ परिषद निपटायेगी। (३) झगड़ों पर जिस समय न्यायालय अथवा परिषद में विचार हो रहा हो उस काल में सैनिक संगठन नहीं किया जा सकता। (४) जो राष्ट्र विवादास्पद मामले को न्यायालय में नहीं रखेगा अथवा जो न्यायालय के निर्णय को स्वीकार न कर आक्रमण करता रहेगा वह आक्रमणकारी समझा जायगा। (५)आक्रमणकारी राष्ट्र

के साथ आर्थिक बहिष्कार, और जरूरी समझा गया तो प्रतिश्रव की धारा १६ के अंतर्गत उसके खिलाफ सैनिक कार्रवाई की जायगी। (६) युद्ध का सारा खर्च आक्रमणकारी राष्ट्र को अदा करना होगा। (७) शस्त्रीकरण में विघटन समस्या पर निशस्त्रीकरण सम्मेलन विचार करेगा और उसका निर्णय मान्य होगा। यह सम्मेलन १५ जून १९२५ को होगा।

जनेवा संधि पर केवल उन्हीं १७ राज्यों ने हस्ताक्षर किये जिन्होंने सिद्धान्तः पारस्परिक सहायता संधि को स्वीकार किया था। ब्रिटेन ने कई कारणों से संधि पर अपनी सम्पुष्टि देने से इन्कार किया। वे कारण निम्न प्रकार हैं: (१) इससे अमरीका से उसका युद्ध छिड़ सकता है जो कि राष्ट्रसंघ में न होने के कारण किसी सदस्य राष्ट्र से झगड़ा करने पर आक्रान्ता घोषित किया जा सकता है। (२) अनिवार्य पंच समझौता किसी सार्वभौमिक सत्ता प्राप्त राज्य की आत्मसुरक्षा के अधिकार में हस्तक्षेप कर सकता है (३) पाबंदियों (Sanctions) में यह विचार आतंकपूर्ण था कि राष्ट्रसंघ का प्रमुख काम युद्ध संगठन करके शांति स्थापित करना है और सम्भवतः बड़े पैमाने पर युद्ध छेड़ना है। (४) यह व्यवस्था कि अक्रान्ता को युद्ध का सब खर्चा भुगतना पड़ेगा अबुद्धिमत्तापूर्ण है क्योंकि इससे हर एक स्थिति में राष्ट्रसंघ की कार्रवाइयों पर नियंत्रण हो जायगा।(५) पाबंदियों का प्रश्न संधि पत्र में ठीक से स्पष्ट नहीं किया गया यद्यपि राष्ट्रसंघ के निर्णय का उल्लंघन करने की नई सम्भावनाएँ पैदा हो गईं। इसलिये जनेवा संधि रद्द कर दी गई। इसके इतनी जल्दी रद्द किये जाने के भी कई कारण हे। माडारियागा जो कि संधि पत्र के मूल संयोजकों में से एक था, के मत में नवम्बर १९२४ में मेकडोनाल्ड का पतन तथा बाल्डविन का अनुदारदली सरकार का बनाना संधि पत्र के अस्वीकार किये जाने के मुख्य कारण थे।

१९२५ का लोकार्नो समझौता

यद्यपि जनेवा समझौता पत्र अस्वीकार कर दिया गया किन्तु यह जाते-जाते यूरोपीय मामलों पर गहरा प्रभाव छोड़ गया। राष्ट्रों के बीच समझौते व भाईचारे की भावना उत्पन्न होने लगी और भावनाओं में इस प्रकार के परिवर्तन से फ्रांस की सुरक्षा की संभावना बढ़ गई। क्षतिपूर्ति की समस्या के बारे में डावस योजना के अनुसार दोनों देशों मे समझौता हो चुका था। फ्रांस के प्रधान मन्त्री श्री हेरियो भी जर्मनी से समझौते के लिए उत्सुक थे। इस बार जर्मनी ने अपनी ओर से प्रस्ताव रखा। फरवरी १९२५ में जर्मनी ने फ्रांस के सामने पारस्परिक सुरक्षा व अहिंसात्मक कार्यवाइयों का एक समझौता पेश किया। इस नये समझौते में राइन, इंग्लैंड, फ्रांस, इटली और जर्मनी में दिलचस्पी रखने वाले राष्ट्रों के बीच एक समझौने का सुझाव दिया गया। इसमें जर्मनी व सीमान्त राज्यों के बीच पांच संधियों का भी प्रस्ताव रखा गया। यह प्रस्ताव फ्रांस के ब्रियां व जर्मनी के स्ट्रैसेमैन के प्रयत्नों से स्वीकार कर लिया गया। इसके साथ निम्नलिखित शर्तें लगाई गई: (१) जर्मनी राष्ट्रसंघ का सदस्य हो (२) बेल्जियम समझौता में एक पार्टी हो और (३) समझौता में कोई ऐसी बात न हो जिससे फ्रांस को पोलैंड या मित्रराष्ट्रों की सहायता लेने या राष्ट्रसंघ के प्रनिश्चय के अनुसार कार्यवाई करने से रोका जाय। (४) पोलैंड व चेकोस्लोवाकिया के बीच होने वाली प्रस्तावित वार्ता में शामिल होना, क्योंकि फ्रांस निश्चित प्रतिरक्षा समझौतों के कारण इन देशों के लिये जिम्मेदार था।

५ अक्तूबर १९२५ के दिन जर्मनी, फ्रांस, ब्रिटेन, इटली, बेल्जियम, पोलैंड व चेकोस्लोवाकिया के प्रतिनिधियों की वार्ता स्विटजरलैंड के लोकार्नो नगर में आरम्भ हुई। युद्ध के बाद यह प्रथम अवसर था जब जर्मनी मित्रराष्ट्रों से समानता व अच्छे सम्बन्धों के लिए

मिला। १२ दिनों तक वार्ता के पश्चात् उक्त सम्मेलन निम्न बातों पर राजी होकर १६ अक्तूबर को समाप्त हो गया : (१) फ्रांस, जर्मनी, ब्रिटेन, इटली व बेल्जियम में एक पारस्परिक सुरक्षा गारंटी की संधि जिसका नाम लोकार्नो संधि रखा जाय। (२) एक ओर जर्मनी व दूसरी ओर फ्रांस, बेल्जियम, पोलैंड व चेकोस्लोवाकिया में ४ पंच संधियां। (३) एक ओर फ्रांस व दूसरी ओर पोलैंड व चेकोस्लोवाकिया में गारंटी की दो संधियां।

(१) पारस्परिक सुरक्षा गारंटी की धारा १ के अनुसार सामूहिक व वैयक्तिक रूप से अधिकारों द्वारा एक ओर जर्मनी और दूसरी ओर बेल्जियम व फ्रांस की सीमाओं की वस्तुतः गारंटी हो गई। इसके साथ साथ राइन के पूरब में खींची गई ५० किलोमीटर लाइन के पश्चिम में जर्मन सीमा का विसैनिकरण हो गया। धारा २ के अनुसार जर्मनी, बेल्जियम व फ्रांस केवल निम्नलिखित बातों को छोड़कर एक दूसरे पर हमला न करने या युद्ध न करने पर राजी हो गये: (क) उचित सुरक्षा, (ख) निशस्त्रीकरण क्षेत्र के विषय में हुए समझौते का उल्लंघन, (ग) एक राज्य के विरोध में राष्ट्रसंघ की कार्रवाई जिसने दूसरे सहायक राष्ट्र पर पहले हमला किया। उनमें यह भी समझौता हुआ कि उनके बीच उठने वाले विवादास्पद मामलों को शांतिपूर्ण ढंग से सुलझाया जाय, जो कूटनीतिकता के सामान्य साधनों से नहीं सुलझ सकते। धारा १ या २ के उल्लंघन पर हस्ताक्षर करने वाले राष्ट्रों ने आहत पक्ष की शीघ्र सहायता करना तय किया। संदेहपूर्ण उल्लंघन के मामले में इस प्रश्न पर राष्ट्रसंघ की परिषद् विचार करेगी और हस्ताक्षर करने वाले राष्ट्रों ने निश्चय किया कि यदि परिषद् मान ले कि शर्तों का उल्लंघन किया गया है तो वह उक्त निश्चय पर दृढ़ रहेंगे। तय हुआ कि इस समझौते से वर्सेल संधि के अन्तर्गत हस्ताक्षर करने वाले राष्ट्रों के अधिकारों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

जर्मनी के राष्ट्रसंघ का सदस्य होते ही यह समझोता लागू होगा और यह उस समय तक लागू रहेगा जब तक परिषद् दो तिहाई बहुमत से यह निश्चय न करले कि राष्ट्रसघ उच्च समझौता करन वाले राष्ट्रों को पर्याप्त रक्षा का आश्वासन देता है।

(२) ४ पच सधियों द्वारा राष्ट्रों ने सामूहिक रूप से सब प्रकार के विवादों पर विश्व अदालत या किसी अन्य अदालत का फैसला शांतिपूर्वक मानना स्वीकार किया जो कि कूटनीति के सामान्य साधनों से नही सुलझ सकते थे। यह धारा उन विवादो पर लागू नही होती थी जो इन संधियों पर हस्ताक्षर होने से पूर्व उठे थे जैसे कि पोलैंड सीमा विवाद। (३) गारंटी की सधियो के द्वारा यह तय किया गया कि यदि हस्ताक्षर करने वाले राष्ट्र लोकार्नो मे की गई प्रतिज्ञाओं का पालन करने में असमर्थ हो तो उनको एक दूसरे की सहायता शीघ्र करनी चाहिए, यदि इस असमर्थता के बाद भी शस्त्रों का प्रयोग होता हो। इन संधियों पर १ दिसम्बर १९२५ को हस्ताक्षर हुए।

लोकार्नो संधि की फ्रांस व जर्मनी मे बडी प्रशसा की गई और इसको विश्वशांति के लिये एक बड़ा कदम बताया गया। इस समझौते की मुख्य कुंजी जर्मनी को राष्ट्रीय परिषद् म स्थायी सीट मिलना था। इसके अतिरिक्त इससे राइन सीमा पर किसी भी जर्मन हमले के लिये फ्रांस को खतरा नहीं रहा लेकिन जर्मनी की पूर्वी सीमा की समस्या का समाधान नही हुआ। यद्यपि जर्मनी ने अपनी पूर्वी सीमा के विषय में किसी प्रकार की आक्रांत्मक कार्रवाई करना अस्वीकार किया परन्तु उसमें साथ-साथ उसका शांतिपूर्ण ढंग से हल भी ढूंढना चाहा। कार ने कहा था कि अधिक काल के लिये लोकार्नो संधि वर्सेल संधि व प्रतिश्रव दोनों के लिये घातक थी। उससे इन दोनों विचारधाराओं को प्रोत्साहन मिला कि वर्सेल सधि मे दवाव की कमी है। जब तक कि उसकी पुष्टि अन्य बातों से न की जाय और सरकारों

से आशा नही की जा सकती कि वे उन सीमाओं की रक्षा करेंगी जिनमें वे स्वयं दिलचस्पी नही रखतीं। किन्तु फिर भी लोकार्नो संधि ने यूरोप में शान्ति स्थापना में महत्वपूर्ण योग दिया।

ब्रियां—कैलोग समझौता (पेरिस की सन्धि)

६ अप्रैल १९२७ को फ्रांसीसी विदेश मन्त्री ब्रियां ने सुझाव दिया कि फ्रांस और अमरीका के बीच युद्ध न होने देने के लिये वह अमरीका के साथ पारस्परिक समझौता कर सकता है। दो मास क बाद ब्रियां क उक्त सुझाव को मसविदा संधि का रूप दिया गया जो अमरीका को भेट किया गया। संधि के अनुसार दोनों राष्ट्रों को वायदा करना होगा तथा सरकारी तौर पर ऐलान करना होगा कि वे परस्पर युद्ध के लिये कभी कदम नही उठायेगे और जो भी झगडा होगा उसे शांतिपूर्ण तरीके से सुलझा लेंगे। ६ मास बाद अमरीकी विदेश मंत्री फ्रक बी. कैलोग ने सुझाव रखा कि द्विराष्ट्रों की संधि के बदले एक एसी संधि होनी चाहिए जिसमें विश्व के समस्त राष्ट्र शामिल हो सके। आपने कहा कि समस्त राष्ट्रों को एक दूसरे के समीप आ जाने से युद्ध का भय भी समाप्त हो जायगा। काफी बहस के बाद कैलोग का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। इसके अनुसार सभी राष्ट्रों ने युद्ध से पृथक् रहने का वायदा किया। वे शस्त्र केवल उसी हालत में उठा सकते थे: (१) जब उनकी अपनी सुरक्षा का सवाल हो (२) वे संधि का उल्लंघन करने वाले राज्य के विरुद्ध शस्त्र उठा सकते थे (३) संधि को लागू करने के रास्ते में उत्पन्न रुकावटों के विरुद्ध हथियार उठा सकते थे (४) ब्रिटिश साम्राज्य के विश्व में फैले विभिन्न क्षेत्रों की आक्रमण से रक्षा के लिये युद्ध किया जा सकता था क्योंकि उनकी रक्षा करना शांति के लिये काफी महत्व की बात थी। राष्ट्र-संघ की सदस्यता के अन्तर्गत थोपी गई जिम्मेवारी को कायम रखने

तक सुचारू ढंग से चलाने के लिये विरोधी अथवा अड़चन डालने वालों के विरुद्ध शस्त्र उठाना।

२७ अगस्त १९२८ को कई दे ओर्से में १५ राज्यों के प्रतिनिधि एकत्र हुए और निम्नलिखित संधि पर हस्ताक्षर किये। यही समझौता पेरिस की संधि के नाम से भी मशहूर हुआ। संधि की धारायें निम्न प्रकार थीं : (१) हम अपने देश की जनता की भलाई के लिय शांतिपूर्ण ढंग से निबटारे तथा परस्पर सम्बन्ध कायम करने के लिये शपथ लेते हैं कि हम युद्ध से पृथक् रहेंगे और अनावश्यक तथा संधि की शर्तों के विरुद्ध कदम नहीं उठायेंगे। (२) परस्पर झगड़े के निबटारे के लिए हम शांतिपूर्ण तरीकों का सहारा लेंगे। (३) वे राष्ट्र जो अपने राष्ट्रीय हितों के लिये आक्रमण करेंगे, उन्हें संधि के अन्तर्गत प्राप्त होने वाली सुविधाएं प्राप्त नहीं होंगी।

पेरिस के समझौते पर हस्ताक्षर होने के कुछ सप्ताहों के भीतर ही ३० राज्य भी उसे स्वीकार करने को तैयार हो गये, जिसमें रूस भी एक था। २४ जुलाई १९२९ को प्रेसिडेंट हूवर ने उक्त समझौते को लागू किया और दो वर्ष के भीतर ६० देशों की स्वीकृति प्राप्त हो गई।

पेरिस की संधि अन्तर्राष्ट्रीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है। प्रो० कार के शब्दों में : "इतिहास में यह प्रथम राजनैतिक समझौता है, जो कि अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को हल कर सकता है।" प्रो० हार्डी का कहना था कि—"नैतिक दृष्टि से भी इस संधि ने एक नवीन युग की सृष्टि की है। पेरिस सन्धि केवल युद्ध का वहिष्कार करने का संकल्पमात्र ही नहीं था, अपितु यह एक ऐसा निर्णय था, जिसके अनुसार राष्ट्रसंघ के बाहर के राज्य—संयुक्त राष्ट्र और रूस—प्रत्यक्ष रूप से शांति के सामूहिक संगठन में भाग ले सकते थे।" परन्तु विचारशील व्यक्ति ब्रियां—कैलोग संधि की दो महान कमी को

अधिक प्रधानता देते हैं। प्रथम—केवल आक्रमणात्मक युद्ध का वहिष्कार किया गया था परन्तु कोई भी राज्य आत्म रक्षा के नाम से युद्ध कर सकता था। इसलिए जिन राष्ट्रों ने इस संधि पर हस्ताक्षर किये थे, वे भी विना युद्ध घोषणा किये लड़ने लगे—जैसा १९३१ में जापान ने चीन में किया। दूसरा—इस संधि को प्रयोग करने की कोई व्यवस्था नहीं थी। चिरशान्ति का युग केवल एक महान संकल्प मात्र था। शूमा के शब्दों में "यदि कोई एक हस्ताक्षरकारी राज्य ने इस संधि को भंग किया तो दूसरे सब उससे मुक्त हो जाते थे। "आश्चर्य का विषय तो यह था की यद्यपि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने इस समझौते का अनुमोदन किया था फिर भी उसने एक विशेष विल पास करके अमेरिकी नौ शक्ति को दुगना कर दिया।

निशस्त्रीकरण की समस्या

कलोग समझौता बिल्कुल झूठा और धोखा सिद्ध हुआ और सुरक्षा समस्या को हल करने का दूसरा उपाय केवल राष्ट्रीय शस्त्रीकरण का संतुलन था। हम यह देख चुके हैं कि–प्रथम विश्व युद्ध के वाद भी निशस्त्रीकरण का प्रभाव विश्वव्यापी नहीं था। फ्रांस ने निशस्त्रीकरण आंदोलन के अन्तर्गत अपनी सेना ५० प्रतिशत कम कर दी। यही नहीं वल्कि उसने सैनिकों की सर्विस अवधि तीन वर्ष से घटा कर डेढ़ वर्ष कर दी। उस के साथ ही इटली ने भी अपनी सेना में कटौती कर दी और जर्मनी, आस्ट्रिया, हंगरी तथा बल्गेरिया की सैनिक ताकत तो प्रायः बिल्कुल ही खत्म कर दी गई। निशस्त्रीकरण के वाद रूस, अमरीका ब्रिटेन और जापान ने धीरे धीरे अपनी सैनिक शक्ति वढ़ानी आरम्भ कर दी। इससे उनमें परस्पर शत्रुता और भय पैदा होने लगा। शस्त्रीकरण की इस अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता को रोकने के लिए १९१९-२० की शान्ति-संधियों का आश्रय लिया गया जिससे विजयी राष्ट्रों में शस्त्रीकरण पर प्रतिवन्ध लगाया गया। किन्तु निशस्त्रीकरण को मानने में सभी राष्ट्र अपने लिए भय समझते थे। उनकी दलील थी

कि राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए शस्त्रीकरण बहुत जरूरी है। इस हालत में यही तय हुआ कि जिस राष्ट्र के पास जितनी सेना है उसमें अब वृद्धि न की जाय।

वाशिंगटन नौ–सम्मेलन

नौ–शस्त्रीकरण की सीमा निर्धारित करने के लिए १९२१-२२ की शरद ऋतु में वाशिंगटन में एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाया गया। फरवरी १९२२ में अमरीका, ब्रिटेन, जापान, फ्रांस तथा इटली में एक पाँच राष्ट्रों की संधि पर हस्ताक्षर हुए। संधि के अनुसार (१) अमरीका को १८ लड़ाकू जहाज, ब्रिटेन के २०, फ्रांस, जापान और इटली प्रत्येक को १० जहाज रखने का अधिकार मिला। (२) विमान के ढोने वाले जहाजों पर नियंत्रण लगा दिया गया। (३) १० वर्षों तक लड़ाकू जहाजों का निर्माण बन्द कर दिया गया तथा पुराने जहाजों की जगह नये जहाज तभी तैयार किए जा सकते थे जब पुराने जहाजों की उम्र ७० वर्ष पूरी हो चुकी हो। (४) युद्धपोतों का अनुपात निम्न प्रकार से निर्धारित कर दिया गया : ब्रिटेन ५, अमरीका ५, जापान ३, फ्रांस १.६७ टन का युद्धपोत रख सकते है। यद्यपि फ्रांस ने ब्रिटेन के उस प्रस्ताव को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया जिसमें कहा गया था कि युद्ध काल में पनडुब्बियों के प्रयोग पर नियन्त्रण लगा दिया जाय। इधर ब्रिटेन ने शिकायत की कि फ्रांस सैनिक जहाज तैयार करने की ओर कदम उठा रहा है।

जनेवा सम्मेलन

पाँच साल के बाद अमरीकी प्रेसिडेन्ट काल्विन कूलिज ने लड़ाकू विध्वंसक जहाज तथा पनडुब्बियों का निर्माण सीमित करने के लिए उक्त पाँचों राष्ट्रों का एक सम्मेलन बुलाया। ब्रिटेन और जापान ने अमरीकी प्रस्ताव को स्वीकार किया किन्तु फ्रांस और इटली ने अस्वीकार कर दिया। २० जून १९२७ को जनेवा में तीन राष्ट्रों का

सम्मेलन हुआ। अमरीका ने सुझाव दिया कि ब्रिटेन और अमरीका ४-४ लाख टन के युद्धपोत रख सकते हैं जिसमें से २५ बड़े जहाज और २० छोटे जहाज होंगे। ब्रिटेन ने कहा कि ७० युद्धपोत से कम से उसका काम नहीं चल सकता क्योंकि उसे समस्त विश्व से रसद मँगानी पड़ती है। किन्तु अमरीका और ब्रिटेन में परस्पर इतना मत-भेद पैदा हुआ कि सम्मेलन बिलकुल भंग हो गया। १९२९ में अमरीकी कांग्रेस ने नये विमान उठाने वाले जहाजों के निर्माण सम्बन्धी एक बिलको पास कर दिया।

लंदन नौसैनिक संधि

जनवरी १९३० में पांच बड़ी नौसैनिक शक्तियों ब्रिटेन, फ्रांस, अमरीका, इटली और जापान का लंदन में एक सम्मेलन हुआ। तीन मास तक लगातार बहस के बाद एक संधि की गई जिस पर २२ अप्रैल को उक्त पांचों राष्ट्रों के हस्ताक्षर हुए। संधि के दो भाग थे। प्रथम भाग जो उक्त पांचों राष्ट्रों द्वारा स्वीकार किया जा चुका था उसमें केपिटल जहाजों, पनडुब्बियों तथा १९२२ की वाशिंगटन संधि द्वारा निर्धारित विमान वाहक जहाजों की संख्या में वृद्धि सम्बन्धी समझौतों का उल्लेख था। दूसरा भाग जिस पर केवल ब्रिटेन, अमरीका और जापान ने हस्ताक्षर किये थे उसमें उक्त देशों के युद्धपोतों की संख्या में क्रमशः ५, ३ और २ जहाज कम कर देने का उल्लेख था। संधि के अनुसार युद्धपोतों की संख्या में उक्त कमी १९३६ की जगह १९३३ से पहले कर देनी थी। स्मरण रहे कि १९२२ के वाशिंगटन सम्मेलन में तय हुआ था कि उक्त कमी १९३६ तक कर देनी चाहिये। दस हजार टन के युद्धपोतों के बारे में निर्णय हुआ कि हस्ताक्षरकर्त्ता तीन देश अमरीका, ब्रिटेन और जापान क्रमशः १८, १५ और १२ युद्धपोत अपने पास रख सकते हैं। संधि की एक सुरक्षा धारा में कहा गया था कि राष्ट्रीय सुरक्षा के खतरे में पड़ने की स्थिति

में उक्त राष्ट्र आवश्यक सूचना देकर अपने युद्धपोतों की संख्या में वृद्धि कर सकेंगे। संधि १ जनवरी १९३१ को लागू कर दी गई। १९३४ में जापान ने अमरीका को नोटिस दिया कि उसे अमरीका और ब्रिटेन की तुलना में समान नौसैनिक सुविधा दी जाय अन्यथा वह उक्त संधियों को आगे स्वीकार नहीं करेगा। १८ जून १९३५ को ब्रिटेन ने जर्मनी के साथ एक नौसैनिक संधि पर हस्ताक्षर किये। इस संधि के अनुसार जर्मनी को ब्रिटिश नौसैनिक शक्ति के ३५ प्रतिशत के बराबर नौसेना रखने का हक दिया गया। इस तरह वर्सेल संधि द्वारा जर्मनी पर जारी किया गया नौसैनिक शक्ति सम्बन्धी प्रतिबन्ध उठा दिया गया। २५ मार्च १९३६ को फ्रांस, अमरीका और ब्रिटेन के बीच एक नई नौसैनिक संधि पर हस्ताक्षर हुए। संधि के अनुसार उक्त तीनों राष्ट्रों के पास केपिटल जहाज ३५ हजार टन, विमान वाहक जहाज २३ हजार टन, हल्के युद्धपोत ८ हजार टन और पनडुब्बी जहाज २ हजार टन तक सीमित कर दिये गये।

१९३७ के प्रारम्भ में जापान नौसैनिक शक्ति संग्रह करने के सम्बन्ध में बिल्कुल स्वतंत्र हो गया। उसने अपनी नौसैनिक ताकत बढ़ानी आरम्भ कर दी। यह देख कर ब्रिटेन और अमेरिका ने भी अपनी शक्ति बढ़ानी शुरू कर दी। इस तरह द्वितीय विश्व युद्ध के लिये भयंकर दौर आरम्भ हो गया।

सेनाओं के लिए राष्ट्र संघ का कमीशन

१९२५ में राष्ट्रसंघ की परिषद ने निशस्त्रीकरण समस्या का अध्ययन करने तथा इसके लिए एक सम्मेलन बुलाने पर विचार करने के लिए एक प्रारम्भिक आयोग की स्थापना की। कमीशन ने आवश्यक अध्ययन के बाद बताया कि उक्त समस्या राजनैतिक और टैक्निकल दोनों दृष्टि से जटिल है। पाँच वर्षों तक कठिन परिश्रम के बाद कमीशन ने संधि का एक मसविदा तैयार किया। संधि के

अनुसार थल, जल और नभ सेनाओं में सैनिकों की संख्या, सैनिक सेवा की अवधि, सेना पर व्यय में कमी करना तथा जहरीले गैसों के प्रयोग पर पावन्दी का उल्लेख था। इसके अतिरिक्त निशस्त्रीकरण सम्वन्धी आवश्यक सूचनाएँ प्राप्त करने के लिए एक स्थायी कमीशन की नियुक्ति करना।

आम निशस्त्रीकरण सम्मेलन

फरवरी १९३२ में निशस्त्रीकरण सम्मेलन आर्थर हेन्डरसन की अध्यक्षता मे जनेवा में हुआ। इसमें ५७ राज्यों के २३२ प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस सम्मेलन का उद्देश्य न केवल मसविदा संधि पर विचार करना था वल्कि प्रत्येक राष्ट्र की सेना की ताकत और उसके खर्च को निशस्त्रीकरण के अन्तर्गत सीमित करना था। इसमें सन्देह नहीं कि यह काम वड़ा जटिल था क्योंकि फ्रांस और जर्मनी में इस विषय पर काफी मतभेद था। फ्रांसीसी प्रतिनिधि अंड्रे टार्डियू ने सुझाव दिया कि एक अंतर्राष्ट्रीय पुलिस सेना कायम की जाय जो निशस्त्रीकरण कानून को तोड़ने वाले के खिलाफ कार्रवाई करे और आवश्यक दण्ड दे। सदस्य राष्ट्रों के वे हथियार अथवा साधन जिनसे आक्रमण का खतरा हो जैसे युद्धपोत, पनडुब्बी तथा वम-वर्षक विमान राष्ट्र-संघ के नियन्त्रण में कर दिए जांय। जर्मन, अमरीकी तथा ब्रिटिश प्रतिधियों ने इस फ्रांसीसी प्रस्ताव का विरोध किया। इससे गतिरोध पैदा हो गया। अक्तूबर १९३३ में जर्मनी हिटलर के नेतृत्व में सम्मेलन से अलग हो गया और इसी के साथ ही उसने राष्ट्रसघ से अपना सम्वन्ध विच्छेद करने सम्वन्धी नोटिस भी राष्ट्रसंघ को भेज दिया। जर्मनी ने कारण में लिखा चूंकि राष्ट्रसंघ के सदस्य जर्मनी को समानता का अधिकार सौंपने के पक्ष में नहीं इसलिए ऐसी संस्था में रहना फिजूल है। आखिर मई १९३४ में सम्मेलन बिना किसी सफलता के भंग हो गया। इसके भंग होते ही फ्रांस, ब्रिटेन और जर्मनी ने

अपनी सुरक्षा सेना पर व्यय के लिए बजट में सुरक्षा कोष बढ़ा दिया।

निष्कर्ष

शस्त्रीकरण की दौड़ को रोकने के लिए जनेवा में किए गए प्रयास के विफल होने के साथ ही वाशिंगटन और लंदन के नौ–समझौते भी भंग हो गये। शस्त्रीकरण के आम सीमीकरण का जहाँ मामला था वहाँ जर्मनी तमाम सैनिक नियंत्रणों से मुक्त होकर सैनिक संगठन करने लगा। उसने ऐसा ही कदम अन्य साथियों से भी उठाने को कहा। जर्मनी की इस प्रकार की हरकत को देखकर अन्य राष्ट्रों में भावी आक्रमण का भय पैदा हो गया और उन्होंने अपनी सुरक्षा के लिए अपने को शक्तिशाली बनाने तथा पड़ौसी राज्यों से समझौता और सन्धि करना शुरू कर दिया। इस हालत में निशस्त्रीकरण की आशा ओझल हो गई और आक्रमणों का भय जड़ पकड़ने लगा। जिसका नतीजा दूसरा विश्व-युद्ध हुआ।

व्याख्यान ५

द्वितीय विश्व संग्राम

विषय प्रवेश---अरिसटोटल का कहना है कि राजनैतिक आंदोलन छोटी घटनाओं से ही पनपते हैं किन्तु उनके पीछे बड़े गहरे कारण होते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से यद्यपि डांजिग पर जर्मनी का आक्रमण साधारण घटना थी और यूरोप के राष्ट्र उसे बिना युद्ध किये शांत कर सकते थे किंतु वे शांतिपूर्ण समझौता कराने में असफल रहे। इससे प्रतीत होता है कि इस घटना के पीछे कुछ ऐसे शक्तिशाली कारण थे जिन्हें यूरोपीय राष्ट्र सुलझाने में असमर्थ रहे।

वास्तव में १९३९ की लड़ाई का उत्तरदायित्व जर्मनी पर ही है। कुछ जर्मन लेखकों ने भी इस बात को स्वीकार किया है। सच बात तो यह है कि जर्मन फ्यूरर काफी दिनों से यूरोप में जर्मन आधिपत्य कायम करने की योजना बनाता चला आ रहा था। १९३९ में उसे अपनी योजना को क्रियान्वित करने का अच्छा मौका मिला और उसने आक्रमण आरम्भ कर दिया।

जर्मनी का उत्थान

१९३३ के बाद एडोल्फ हिटलर के नेतृत्व में जर्मन शक्ति के पुनरुत्थान से अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में बड़ी खलबली मची हुई थी। शूमां का कहना था कि "जर्मनी का इतिहास एक अक्षर 'ह' (एच) हिटलर से आरंभ हुआ और चार 'ह' (एच) हर्मन, होहेनस्टोफेन, हैप्सबर्ज, होहेनज़ालर्न

और हिटलर ने जर्मन शासन को चलाया और बाद में एक 'ह' हिटलर से ही वह समाप्त हो गया।"

जर्मन पुनरुत्थान के अन्तिम नेता का वर्णन गथोर्न हार्डी ने इस प्रकार किया है : "वह अत्यन्त साधारण अथवा हास्यास्पद शक्ल का था। अपनी प्रारम्भिक अवस्था में वह लगातार असफल रहा। वह अत्यन्त भावुक तथा अस्थिर चित्त वाला व्यक्ति था। उसकी शिक्षा बहुत कम थी तथा उसके विचार मौलिक अथवा नये नहीं थे किंतु उसकी सफलता को देखते हुए यह स्पष्ट है कि उसमें राजनीतिज्ञ अथवा नेता के गुण असाधारण मात्रा में थे। यदि हम उसके ईमानदारी व मानवता आदि गुणों के अभाव की ओर ध्यान न दें तथा उसकी भयंकर भूलों की अवहेलना करें क्योंकि बुद्धिमान से बुद्धिमान मनुष्य भी भूलों से वंचित नहीं, तो हम इस बात से इन्कार नहीं कर सकते कि उसमें वास्तविक प्रज्ञता के गुण थे चाहे उसकी प्रज्ञा आसुरी ही क्यों न हो। बिना वास्तविक महानता के यह संभव नहीं था कि वह राजनीतिज्ञों तथा सैनिकों की आज्ञाकारिता एवं स्वामी भक्तित्व प्राप्त कर लेता। जर्मन जनता पर उसका प्रभाव तो और भी अधिक था।"

हर हिटलर

एडोल्फ हिटलर व्यवसाय से राजगीर था। सन् १९१९ के युद्ध के पश्चात् उसने राष्ट्रीय समाजवादी पार्टी के प्रचारक के रूप में अपना राजनीतिक जीवन आरम्भ किया। सन् १९२३ में म्युनिक की शराब

की भट्टी मे आन्दोलन करने के फलस्वरूप उसे बवेरिया जेल में भेज दिया गया। जेल में हिटलर ने 'मीनकैम्फ अथवा मेरा संघर्ष' नामक पुस्तक लिखी जिसमें उसने बहुमत पर आधारित पार्लियामेंट पद्धति का विरोध किया। उसने कहा जर्मनी वास्तव में ऐसा प्रजातंत्र होगा जो स्वतंत्र रूप से अपना नेता चुनेगा। इसके अनुसार प्रत्येक प्रश्न पर बहुमत की स्वीकृति न लेकर केवल एक व्यक्ति (नेता) की स्वीकृति से कार्य होगा। हिटलर ने अपनी पुस्तकों में कई जगह जर्मनी की प्रादेशिक आकांक्षाओं की ओर भी सकेत किया था और आत्मनिर्भरता के सिद्धात का सहारा लेकर उसने लिखा था। "जर्मन रीच अथवा जर्मन राज्य में सभी जर्मन निवासी सम्मिलित है। जर्मनी की राजनैतिक सीमायें (लेबेन स्रोम) जर्मन जनसंख्या के सिद्धात पर निर्धारित की जायेंगी। जिससे जर्मन जनता के लिये पर्याप्त भूमि प्राप्त हो। हमें जर्मन जनता के रहने के लिये अधिक भूमि प्राप्त करनी है तथा जनसंख्या व भू-मात्रा के बीच असंतुलन को दूर करना है तथा अपनी भूमि को जीविका के आधार के साथ हो अपनी शक्ति को बढ़ाने का साधन भी बनाना है। राष्ट्रों की सीमाये मनुष्य द्वारा रची गई हैं और मनुष्य उन्हे बदल भी सकते है। जिन राष्ट्रों का विस्तार जरूरी है उन्हें बढ़ाना नैतिक कर्तव्य है। यदि एक बड़ा राष्ट्र भूमि के अभाव के कारण बर्बाद हो रहा है तो उस हालत में आक्रमण करके उसका अपने लिए भूमि प्राप्त करना कर्त्तव्य हो जाता है।"

हिटलर ने लिखा कि "जर्मनी के सीमा विस्तार का हल पूर्व में बढ़ने से ही हो सकता है। यदि हमें यूरोप में नई भूमि की जरूरत है तो हमें रूस तथा सीमान्त राष्ट्रों की ओर ही कदम बढ़ाना होगा।" हिटलर ने यह स्पष्ट कहा था कि फ्रांस जर्मनी का सदा का कट्टर शत्रु है।

हिटलर की राष्ट्रीय समाजवादी योजना में २५ बातें थी। पहली मांग आत्मनिर्णय के सिद्धांत पर तमाम जर्मन जनता को

एक जर्मन राज्य के अंतर्गत एक सूत्र म बांधना। दूसरी मांग वसल संधि को भंग करना, युद्ध अपराधों को अस्वीकार करना व हर्जाने में एकदम परिवर्तन करना। तीसरी मांग थी जर्मनी की अतिरिक्त आबादी के लिये नये उपनिवेश खोजना। इसके अतिरिक्त अन्य मांगें निम्न प्रकार थीं। पेशेवर सेना के स्थान पर राष्ट्रीय सेना कायम करना, राज्य में शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार की स्थापना, विना मेहनत से होन वाली आयों को समाप्त करना, यहूदियों को जर्मन नागरिकता से वंचित करना, जर्मन जनता के लिये जीवन-यापन का जरिया निकालना, वेकारी दूर करना तथा अन्य बड़े राष्ट्रों के समान शस्त्रीकरण करना।

नाजी क्रांति

जर्मनी में राष्ट्रीय समाजवादी दल का विकास १९३० से ही आरम्भ हो गया। १९३० के आम चुनाव में उक्त दल को ५७६ में से १०७ सीटें प्राप्त हुइ। पहले इस दल को केवल ११ सीटें प्राप्त थीं। इसके बाद १९३२ में दो बार आम चुनाव हुआ। दोनों वार राष्ट्रीय समाजवादी दल को ५८४ सीटों में से १९६ सीटें प्राप्त हुईं जिसकी संख्या कुल सीटों की एक तिहाई से थोड़ी ही कम थी। इस तरह विधान सभा में राष्ट्रीय समाजवादी दल का वहुमत रहा और वह अन्य सभी दलों से शक्तिशाली सिद्ध हुआ। हिटलर संयुक्त मंत्रिमंडल का चांसलर नियुक्त किया गया। संयुक्त मंत्रिमंडल में तीन नाजी और २ राष्ट्रवादी थे। ३० जनवरी १९३३ को हिटलर ने विधान सभा (रीचस्टाग) को भंग करके ५ मार्च १९३३ को नया चुनाव करने का आदेश दिया। आम चुनाव के केवल ६ दिन पूर्व विधान सभा (रीचस्टाग) का भवन रहस्यजनक स्थिति में जलता पाया गया। यह नाजियों के लिये अच्छा अवसर था। हिटलर ने राष्ट्रपति हिन्डेनवर्ग से कहा कि जर्मनी की स्वतन्त्रता तथा सुविधाओं सम्बन्धी वैधानिक गारन्टियों पर नियन्त्रण लगा दिया जाय। इसका परिणाम यह हुआ कि व्यक्तिगत सम्पति पर कब्जा करने,

क़िसी की सम्पत्ति को जब्त करने, समाचार पत्रों, सभा और पार्टियों को भंग और विनाश करने का अधिकार सरकार को मिल गया। हिटलर ने स्थिति का फायदा उठाते हुए कम्युनिस्ट पार्टी को गैर कानूनी करार देकर उस पर प्रतिबन्ध लगा दिया और सोशल डेमोक्रेट दल को आदेश दिया कि वह अपने समाचार पत्रों का प्रकाशन और चुनाव प्रचार शीघ्र वन्द कर दे। इसके वाद जो आम चुनाव हुआ उसके कुल मतों का ४४ प्रतिशत मत नाजी पार्टी के पक्ष में पड़ा। १ अप्रैल को हिटलर और नाजी दल को ४ वर्ष तक शासन सम्भालने का अवसर दिया गया। इसके वाद तीन मास के भीतर ही समस्त नाजी विरोधी दल सदा के लिये भंग कर दिये गये और जर्मनी की राजनीति पर एक ही दल नाजी पार्टी की तानाशाही कायम हो गई। काला, लाल और सुनहले रंग का गणतन्त्र झण्डा हटा कर उसके स्थान पर दो प्रकार के झन्डे एक पुरानी वादशाहत का जो काला, श्वेत और लाल था और दूसरा नये राष्ट्रीयवाद का जिस पर स्वास्तिक चिन्ह था फहराया गया। २ अगस्त १९३४ को जब राष्ट्रपति हिन्डेनवर्ग का देहांत हो गया तब राष्ट्रपति और प्रधान मन्त्री (प्रेसिडेन्ट और चांसलर) के पद मिलाकर एक कर दिये गये। हिटलर जर्मनी का नेता और चांसलर दोनों नियुक्त हुआ। इस तरह प्रजातान्त्रिक जर्मन-गणतन्त्र की समाप्ति के साथ हिटलर के नेतृत्व में नाजी तानाशाही की स्थापना होकर नाजी क्रांति सफलता के साथ समाप्त हो गई।

नाजीवाद के उत्थान के कारण

जर्मनी में नाजीवाद के उत्थान के कई कारण थे और वे इतने गहरे थे कि उनके खिलाफ जर्मनी को एक दिन जरूर उठना पड़ता। प्रथम कारण वर्सेल संधि की शर्तें थीं जो इतनी सख्त और क्रूर थीं कि उससे जर्मन राष्ट्र के विलकुल नष्ट हो जाने का खतरा था। विजयी राष्ट्रों का उनके साथ व्यवहार वड़ा अत्याचारपूर्ण था। इससे जनता में क्रांति पैदा हुई और वे वदला लेने को तैयार हो गये। (२) जर्मनी में

साम्यवाद के विकास होने पर धनी औद्योगिकों को खतरा पैदा होने लगा। इस अवसर का लाभ उठा कर नाजी पार्टी ने प्रचार करना आरम्भ किया कि यदि नाजी पार्टी का पतन हो गया तो जर्मनी में कम्युनिस्टों की संख्या एक करोड़ तक हो जायेगी। इसका असर पूंजीपतियों और औद्योगिकों पर पड़ा और उन्होंने नाजी पार्टी को हर तरह से सहयोग देना आरम्भ किया। इस तरह साम्यवाद के आगे नाजीवाद बहुत बड़ी चट्टान बन गया। (३) नाजी पार्टी ने बेकार और आर्थिक दृष्टि से पीड़ित जनता को सहायता पहुँचाना शुरू किया जिससे वे नाजी पार्टी के साथ हो गये। (४) नाजियों ने जर्मन युवकों को सैनिक शिक्षा देने के लिये सरकारी फौज से अलग अपनी सेना तैयार करनी आरम्भ कर दी। (५) नाजी पार्टी द्वारा यहूदियों के विरुद्ध नीति अपनाने से वे लोग, जो यहूदियों को जर्मन जनता की कठिनाइयों का उत्तरदायी समझते थे, नाजी पार्टी के साथ हो गये। (६) रीचस्टाग (विधान सभा) में पार्टियों की भरमार हो जाने से पार्लामेंट्री मामलों में गतिरोध उत्पन्न होने लगा इससे जनतान्त्रिक व्यवस्था भंग होने लगी और तानाशाही के लिये रास्ता साफ हो गया। (७) जनता का समर्थन प्राप्त करने के लिये नाजी पार्टी ने गलत और जनता को प्रभावित करने वाले प्रचारों का आश्रय लिया। (८) इटली की सफल फासिसवादी क्रांति का उदाहरण रखते हुए जनता से समर्थन की अपील की गई। कहा गया कि जैसे इटली में फासिसवाद की विजय हुई है वैसे ही जर्मनी में नाजीवाद की विजय होगी और वही जनता को तरक्की के रास्ते पर ले जायेगी। (९) नाजीवाद के विरोधियों म मतभेद होने से नाजीवाद को आगे बढ़ने में कोई रुकावट नहीं हुई। कम्युनिस्ट इस भ्रम में थे कि नाजीवाद का पतन जरूर होगा और साम्यवाद शासन में जरूर आयेगा। (१०) नाजी नेता हिटलर में तीक्ष्ण बुद्धि का होना और खतरा होने पर भी बिना घबड़ाये उसका सामना करना।

हिटलर की विदेश नीति

जसा कि पहले वताया जा चुका है कि हिटलर का उद्देश्य (१) वर्सेल संधि को भंग कर देना (२) एक रा'ट्र के अन्तर्गत आत्म-निर्णय के अधिकार द्वारा सारी जर्मन जनता का संगठन करना तथा (३) वढती अर्थात् अतिरिक्त जन संख्या को वसाने के लिये अपने छिने हुए प्रदेशों को पुनः प्राप्त करना और उपनिवेश कायम करना था। हिटलर ने अपनी विदेश नीति को संक्षेप रूप में निम्न प्रकार से प्रकट किया : "राजनैतिक स्वतंत्रता तथा मातृभूमि को शक्तिशाली बनाने के लिये अपने खोये हुए प्रदशों को पुनः अपने अधिकार में करना वहुत जरूरी है। इसकी प्राप्ति के लिये समझौता और यदि यह सम्भव न हो तो युद्ध का आश्रय लेना विदेश नीति की ओर हमारा पहला कदम है। हमारी नीति जर्मनी की रक्षा और उसे शक्ति शाली वनाने के लिये जर्मन सीमा को सैनिक दृष्टि से मजवूत वनाना है। हमारी मान्यता है कि अगर किसी राज्य को दुनिया में कायम रहना है तो वह सैनिक दृष्टि से अपने को शक्तिशाली वनाये जिससे दुश्मन को आक्रमण करने की जल्दी हिम्मत न हो।

दूसरे शब्दों में हिटलर का कहना था कि शाति वल के आधार पर ही टिकाऊ हो सकती है समझौता पर नही। हिटलर की यह नीति राष्ट्रसंघ की जड़ के लिये घातक सिद्ध हुई और इसने शांति स्थापना को असम्भव नही तो मुश्किल अवश्य ही वना दिया। हिटलर ने कहा कि पराधीन वस्तियों में विरोध करवा कर उन्हें अपने साथ नही मिलाया जा सकता वल्कि इसके लिये तलवार उठानी पड़ेगी। इस तलवार को रगड़ कर तेज बनाना हमारी जनतन्त्री सरकार की आंतरिक नीति है और इसकी रक्षा और इसमें सहयोग देने वालों को अपने मे मिलाना विदेश नीति का काम है।

वर्सेल संधि का भंग होना

अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में हिटलर का सबसे महत्वपूर्ण कदम निशस्त्रीकरण सम्मेलन और राष्ट्रसघ का वहिष्कार करना था। उसका कहना था कि उक्त शक्तियों ने जर्मनी को उन अधिकारों से वंचित कर दिया है जिन पर उसकी उन्नति निर्भर है और उसे अन्य राष्ट्रों की तरह अधिकार प्राप्त नहीं। हिटलर ने कहा कि यदि विदेशी राष्ट्रों ने जर्मनी के साथ ऐसा ही व्यवहार रखने का निश्चय किया तो वह अपना रास्ता स्वयं चुनेगा। हिटलर ने अपना यह कार्य जनमत संग्रह द्वारा कर दिखाया। हिटलर का दूसरा कदम पोलैंड के साथ परस्पर आक्रमण न करने का समझौता था जिसने यूरोप और फ्रांस में खलबली मचा दी। यह समझौता १० वर्ष के लिये हुआ। तीसरा कदम आस्ट्रिया को मिलाने का असफल प्रयत्न था। सेंट जर्मेन की संधि ने जैसा कि पहले कहा जा चुका है आस्ट्रिया और जर्मनी के सगठन को तो भंग कर ही दिया था। इस कार्य को छिपाने के लिये हिटलर ने गुप्त रूप से आस्ट्रिया के नाजी विद्रोह को प्रोत्साहन दिया तथा १९३४ में किये गये हमले की ओर से आंखें मूंद ली जिसमें आस्ट्रियन चांसलर की हत्या की कोशिश की गई थी, यद्यपि यह षड़यन्त्र असफल रहा। इसका एक कारण तो यह था कि इसे आस्ट्रिया में जनता का पर्याप्त समर्थन प्राप्त नहीं था। दूसरे मुसोलिनी ने जर्मनी को धमकी दी कि यदि उसने आस्ट्रिया पर हाथ फैलाने का प्रयत्न किया तो आक्रमण किया जायगा। उधर इटली का साथ चेकोस्लोवाकिया और फ्रांस दोनों दे रहे थे। इस हालत में हिटलर ने आस्ट्रिया पर अधिकार जमाने का ख्याल त्याग दिया। वर्सेल संधि के अनुसार सार के भविष्य का निर्णय करने के लिये वहां जनवरी १९३५ में जनमत संग्रह हुआ। इसमें ९० प्रतिशत मतदाताओं ने जर्मनी के साथ मिलने के पक्ष में मत दिया। इस तरह १ मार्च १९३५ को सार के जर्मनी म आ जाने से

हिटलर की विदेश नीति का चौथा कदम भी सफल रहा। एक पखवाड़े के बाद हिटलर ने वर्सेल संधि की सैनिक शर्तों के भंग होने की घोषणा की। यह उसका पांचवां कदम था। इसी के साथ उसने यह भी घोषणा की कि जर्मनी की सैनिक ताकत फ्रांस और ब्रिटेन के मुकाबले में तैयार करने के लिये भर्ती आरम्भ की जायेगी। अभी तक जर्मनी ने यही प्रकट किया कि वह अपनी सैन्य शक्ति केवल अपनी रक्षा एवं शांति स्थापना के लिये बढ़ा रहा है।

शक्ति सन्तुलन का पुनरुत्थान

यद्यपि स्ट्रेसा सम्मेलन का प्रस्ताव बिल्कुल दिखावटी था किन्तु वर्सल संधि को जर्मनी द्वारा भंग किये जाने से संकट पैदा हो गया। इसका परिणाम शक्ति संतुलन का पैदा होना था। १९३४ में बाल्कान राज्यों तुर्की, यूनान, रूमानिया और युगोस्लाविया ने बाल्कान समझौता पर हस्ताक्षर किये जिसके अनुसार—१. बाल्कन राज्यों में प्रादेशिक स्वतन्त्रता की गारन्टी २. बाल्कान सीमाओं की सुरक्षा ३. राजनैतिक कार्रवाई से पूर्ण पारस्परिक विचार-विमर्श करने का निर्णय हुआ। बलगेरिया और अल्बानिया जो अपनी सीमाओं में परिवर्तन चाहते थे इस समझौते में शरीक नहीं हुए। इसी बीच इटली, आस्ट्रिया और हंगरी के बीच रोम में आर्थिक तथा राजनैतिक संधि पर हस्ताक्षर हुए जिसके अनुसार यूरोपीय राज्यों से परस्पर सम्बन्ध प्रोत्साहित करने का निश्चय हुआ। आस्ट्रिया को जर्मनी द्वारा दी गई धमकी से इटली ने फ्रांस का सहयोग लेना चाहा किन्तु युगोस्लाव से उसकी शत्रुता होने से इटली व फ्रांस में समझौता होना रुक गया। इटली, फ्रांस और युगोस्लाविया के परस्पर हितों पर विचार करने के लिये युगोस्लाविया के राजा एलेक्जेंडर १९३४ के पतझड़ में फ्रांस निमंत्रित किये गये। आप जब मार्सिलीज में उतरे तो फ्रांस के विदेश मंत्री ने आपका स्वागत किया किन्तु इसके थोड़ी देर के बाद ही एक

क्रोशियन ने दोनों की गोली चला कर हत्या कर दी। इस पर युगोस्लाविया ने हंगरी के खिलाफ राष्ट्रसंघ में अपील की किन्तु फ्रांस और इटली के बीच बिचाव पर युगोस्लाविया शांत हो गया। इस घटना से फ्रांस और इटली एक दूसरे के निकट खिच आये। १ जनवरी १९३५ को फ्रांसीसी विदेश मंत्री लावल ने मुसोलिनी के साथ एक समझौते पर हस्ताक्षर किये जिसमें तय हुआ कि आस्ट्रिया की स्वतन्त्रता पर हमला होने की हालत में वे दोनों उसकी सहायता करेंगे। आस्ट्रिया को अपने पड़ौसी राज्यों में परस्पर हस्तक्षेप न करने की सिफारिश की जायेगी। फ्रांस इटली को लीबिया के तटीय क्षेत्र के कुछ स्थान देगा तथा ट्यूनिस में इटालियनों की सुरक्षा की गारंटी होगी और अंतिम निर्णय से लावेल ने मुसोलिनी को आश्वासन दिलाया कि फ्रांस, इटली और इथोपिया के परस्पर झगड़े से तटस्थ रहेगा। इस तरह तमाम राष्ट्रों का पुन:वर्गीकरण हो गया जिसमें सबसे महत्वपूर्ण फ्रांको-सोवियत समझौता था।

फ्रांको-सोवियत समझौता

यह हम पहले देख चुके हैं कि वर्सेल सन्धि पर हस्ताक्षर होने के समय से ही फ्रांस की विदेश नीति जर्मनी के विरुद्ध अपनी सुरक्षा करनी थी। फ्रांस के नये विदेश मंत्री वार्थो ने अपने देश की सुरक्षा शक्ति को शक्तिशाली बनाने के लिये कोई भी कसर नहीं छोड़ी। १९३४ की गर्मी में उन्होंने अपनी सुरक्षा योजनाओं को लागू करने के उद्देश्य से वार्सा, प्रेग, बुखारेस्ट और बेल्ग्रेड का दौरा किया किन्तु उनका प्रयास असफल रहा। उनका दूसरा प्रयास जर्मनी की घेरा-बन्दी के लिये सोवियत रूस से समझौता करने का था। जर्मनी में हिटलर के उत्थान से फ्रांस को भारी खतरा अनुभव हुआ। इस समय तक फ्रांस के प्रति रूसी रवैये में काफी परिवर्तन हो गया था। वास्तव

में निम्न तीन कारणों से रूस को अपनी नीति में काफी हेरफेर करने की जरूरत पड़ गई। प्रथम यह कि जापान की ओर से युद्ध का खतरा पैदा हो जाने से रूस को अन्य देशों से समझौतों का सहारा लेना जरूरी हो गया। दूसरे जर्मनी में नाजीवाद के उत्थान से जो रूस की तरफ बढ़ना चाहता था, लोहा लेने के लिय रूस को सहयोगी शक्ति की जरूरत पड़ी। तीसरे रूस में आन्तरिक विकास के लिये शांति कायम रखना बहुत जरूरी था। इसलिये रूस को मजबूर होकर फ्रांस के नेतृत्व में परिवर्तन विरोधी शिविर में शामिल होना पड़ा।

सितम्बर १९३४ में फ्रांस और रूस एक दूसरे के और निकट आ गये। फ्रांस की सिफारिश पर रूस को राष्ट्रसंघ का सदस्य बना लिया गया और उसे एक स्थायी सीट भी प्राप्त हो गई। इसके बाद २ मई १९३५ को फ्रांस और रूस में पारस्परिक सहायता सम्बन्धी एक संधि हुई। इसके अनुसार दोनों में से किसी पर आक्रमण होने पर वे एक दूसरे की सहायता करेंगे। यह संधि ५ वर्ष के लिये की गई। एक पखवाड़े के बाद सोवियत रूस ने चेकोस्लोवाकिया के साथ भी पारस्परिक सहायता की संधि की। इस तरह नाजी क्रांति का परिणाम न केवल राष्ट्रों का नाटकीय ढंग से पुनर्वर्गीकरण हुआ बल्कि फ्रांको-सोवियत समझौता जो युद्ध के कारण लुप्त हो चुका था, पुनर्जिवित हो उठा।

फ्रांको-सोवियत समझौते से फ्रास को जर्मनी के आक्रमण का भय जाता रहा। फ्रांस ही नही बल्कि इससे रूस की पश्चिमी सीमायें भी सुरक्षित हो गईं। २१ मई १९३५ को हिटलर ने अपने एक भाषण में कहा कि फ्रांस और रूस में सैनिक समझौता हो जाने से लोकार्नो समझौता असुरक्षित हो गया है लेकिन जर्मनी लोकार्नो समझौते का तब तक पालन करेगा जब तक अन्य सम्बन्धित देश उससे अलग नही हो जाते।

आंग्ल-जर्मनी नौ (नौबेड़ा) समझौता

१८ जून १९३५ को जर्मनी और ब्रिटेन के बीच नौ समझौता हुआ जिसके अनुसार जर्मनी को अधिकार दिया कि वह ब्रिटिश जहाजी बेड़े के एक तिहाई हिस्से के बराबर नौ सेना तैयार कर सकता है। जर्मनी ने आश्वासन दिया कि वह अपनी यूबोटों (नावों) को व्यापारी जहाजों के विरुद्ध नहीं प्रयोग करेगा। यह समझौता हिटलर के लिये भारी सफलता थी क्योंकि इससे फ्रांस और ब्रिटेन में फूट पैदा हो गई और इटली में असंतोष उत्पन्न हो गया।

राइन भूमि (राइन लैंड) का पुनर्सैनीकरण

१९३५ में हिटलर इथोपिया पर इटली के आक्रमण, ब्रिटेन और फ्रांस की लज्जापूर्ण अस्थायी नीति तथा राष्ट्रसंघ के आलस को चुप-चाप बैठा देखता रहा। ७ मार्च १९३६ को हिटलर ने एक २५ वर्षीय समझौता, राइन सीमा के दोनों ओर असैनिकरण तथा बर्लिन में ब्रिटेन, फ्रांस, बेल्जियम और इटली के राजदूत रखने का प्रस्ताव रखा। दो घंटे के बाद ही उसने घोषणा की कि चूंकि फ्रांको-सोवियत समझौता ने लाकार्नो-संधि का उल्लंघन किया है इसलिये वह राइन भूमि पर पुनः कब्जा करना चाहता है। इस घोषणा के थोड़ी ही देर बाद लगभग ३५ हजार जर्मन सैनिकों ने राइनलैंड पर हमला कर उस पर अपना अधिकार जमा लिया। इस पर फ्रांसीसी विदेशमंत्री फ्लांडिन ने इंग्लैंड से जर्मनी के विरुद्ध संयुक्त सैनिक कार्रवाई करने की अपील की। फ्लां-डिन ने अपनी अपील में कहा कि आज विश्व के सारे छोटे मुल्कों की आंखे ब्रिटेन की ओर लगी हुई हैं, यदि ब्रिटेन कदम उठाये तो वह सारे यूरोप का नेतृत्व कर सकता है। अपील में अन्त में कहा गया था यदि आप ताकत से अभी जर्मनी को नही रोकेंगे तो युद्ध को रोकना असम्भव हो जायेगा। इसके उत्तर में ब्रिटिश प्रधान मंत्री ने कहा कि इंग्लैंड की हालत इस समय ऐसी नहीं कि वह युद्ध में पड़े। राइन भूमि पर जर्मनी

का अधिकार हो जाने का फल यह हुआ कि बेल्जियम ने अक्तूबर १९३६ में फ्रांस के साथ सैनिक सम्बन्ध विच्छेद कर लिया और तटस्थता धारण कर ली। राइन पर जर्मन अधिकार ने ब्रिटेन की सैनिक दुर्बलता भी प्रकट कर दी। चर्चिल ने कहा कि हमारी कमजोरी का सबसे बड़ा कारण यह है कि हमने अपनी सैनिक शक्ति को कायम रखने में अदूरदर्शिता दिखलाई और ठीक नीति से आगे नही बढ़े। इधर ब्रिटेन पर से फ्रांस का भी विश्वास हट गया और उसके प्रति इटली में घृणा पैदा होगई।

राइन भूमि पर जर्मनी के अधिकार का तीसरा असर यह हुआ कि जर्मनी और केन्द्रीय यूरोप में हिटलर का सम्मान बढ़ गया क्योंकि राइन पर जर्मन अधिकार के पीछे हिटलर का विशेष हाथ था।

बर्लिन-रोम मैत्री

२१ मई १९३६ को हिटलर ने अपने एक भाषण में कहा कि जर्मनी न तो आस्ट्रिया के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करना चाहता है, न उसे अपने में मिलाना चाहता है और न उस पर रक्तहीन अभियान ही चाहता है। ११ जुलाई १९३६ को जर्मनी ने आस्ट्रिया के साथ एक समझौता किया जिसमें आस्ट्रियाई संघीय राज्य की सार्वभौमिक सत्ता को मान्यता दी गई। समझौता में जर्मनी ने वायदा किया कि वह आस्ट्रिया के राष्ट्रीय समाजवादी आंदोलन को किसी तरह का सक्रिय सहयोग नही देगा। समझौता का असर यह हुआ कि आस्ट्रिया की समस्या थोड़े दिनों के लिये टल गई और इटली और जर्मनी एक दूसरे के काफी निकट आ गये। ६ दिनों के बाद ही स्पेन का गृह-युद्ध आरंभ हो गया। इससे जर्मनी और इटली के परस्पर मिलजुलकर अतर्राष्ट्रीय मदान म आगे बढ़ने का अच्छा मौका मिला। स्पेन के गृह युद्ध को इन दोनों धूरी राष्ट्रों न अपना हथियार बनाया जिसके द्वारा अन्य देशों म आक्रमण की भूमिका बना सकते थे। इस तरह स्पेन का गृह युद्ध जो एक घरेलू मामला था अंतर्राष्ट्रीय महत्व का विषय बन गया।

२५ अक्टूबर १९३६ को मुसोलिनी के दमाद काउंट सियानो के प्रयास से जर्मनी और इटली के वीच एक समझौता हुआ। समझौते के अनुसार जर्मनी ने आर्थिक सुविधाओं के बदले इथोपिया पर इटली के अधिकार को मान्यता दे दी। निश्चय हुआ कि डेन्यूब घाटी में यथा-पूर्व स्थिति कायम रखने, स्पेन में जनरल फ्रांको के आन्दोलन का समर्थन करने तथा कम्युनिस्ट रूप के विरुद्ध परस्पर सहयोग से कार्रवाई करने में दोनों राष्ट्र एक दूसरे को सहयोग देंगे।

जर्मनी और इटली में उक्त समझौते का पहला परिणाम यह हुआ कि १८ नवम्बर १९३६ को फ्रांको स्पेन के शासक मान लिये गये। इस मान्यता के साथ फ्रांको को दोनों धरी राष्ट्रों ने सैनिक सहायता देनी आरम्भ कर दी। इटली ने फ्रांको की सहायतार्थ स्पेन को ४० हजार सशस्त्र सैनिक भेजे। एक सप्ताह के बाद जर्मनी ने जापान के साथ एक विरोधी समझौता पत्र पर हस्ताक्षर किया। इस समझौते का उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय कार्रवाइयों के विरुद्ध मिलजुल कर कार्रवाई करना था। कार के अनुसार राजनैतिक दृष्टि से यह समझौता फ्रांको सोवियत समझौता का विरोधी रूप था। ६ नवम्बर १९३७ को इटली ने इस समझौते पर हस्ताक्षर किया, जिसका बाद में स्पेन की फ्रांको सरकार ने भी (२७ मार्च, १९३९) अनुसरण किया, इस तरह एक तरफ जर्मनी, इटली और जापान और दूसरी तरफ फ्रांस, रूस और ब्रिटेन के बीच शक्ति का एक नया संतुलन पैदा हो गया। जर्मनी, इटली और जापान धूरी राष्ट्र माने गये। इधर इटली ११ दिसम्बर १९३७ को राष्ट्रसंघ से अलग हो गया। १९३८ में फ्यूरर हिटलर रोम में द्वितीय ड्यूक से मिला और उसने आक्रमण के लिये जर्मनी की कमर कस दी।

नेविल चेम्बरलेन की संतुष्टीकरण नीति

मई १९३७ में वाल्डविन ने ब्रिटेन के प्रधान मंत्री पद से इस्तीफा

दे दिया और उनके स्थान पर अथ मंत्री नेविल चेम्बरलेन प्रधान मंत्री नियुक्त हुए। चेम्बरलेन को केवल अपने देश को छोड़कर बाहरी मुल्कों के बारे में ज्ञान नहीं था। वह विदेशियों के रवैयों को समझने में अयोग्य थे। इनमें जनता को आकृष्ट करने की ताकत नहीं थी और शायद इसीलिये उन्होंने शांति आंदोलन का आश्रय लिया। सब तरफ से निराश चम्बरलेन ने अपने को उठाने का एक ही मार्ग देखा और वह था शांति स्थापना। उनका विचार था कि किसी भी मूल्य पर यदि आक्रमणकारी को खुश कर के भी शांति की स्थापना की जा सके तो की जाय। वह इटली की मित्रता खरीदने पर तुले हुए थे और इसलिये विदेश मंत्री इडन ने जब संतुष्टिकरण नीति त्याग कर सुदृढ़ नीति अपनाने पर जोर दिया तो चेम्बरलेन ने उन्हें इस्तीफा देने के लिये मजबूर किया। नतीजा यह हुआ कि २० फरवरी १९३८ को इडन को विदेशमंत्री पद से मजबूर होकर हटना पड़ा। अप्रैल १९३९ में नये विदेशमंत्री लार्ड हेलिफेक्स ने रोम में मुसोलिनी के साथ एक समझौता किया जिसके अनुसार ब्रिटेन ने अबिसीनिया पर इटली का शासन स्वीकार कर लिया। स्वेज नहर क्षेत्र के नियंत्रण में इटली को भी हिस्सा देने, भूमध्य तथा लाल सागर में फौजों के आवागमन संबन्धी सूचनाओं का आदान प्रदान, बिना बताये उक्त क्षेत्र में नये नौ तथा हवाई अड्डे स्थापित न करने तथा हानिकारक प्रचार रोकने का निश्चय हुआ। चर्चिल का कहना था कि ब्रिटेन स्पेन और अबिसीनिया की जनता के मूल्य पर सुरक्षा संगठन की उपेक्षा करके कुछ वर्षों तक शांति कायम रख सका।

आस्ट्रिया का अपहरण

राइन भूमि के पुनः मोर्चाबन्दी के बाद हिटलर ने आस्ट्रिया को जर्मनी में विलीन (एसलंस) तथा पूर्वी सीमान्त का विस्तार (ड्रांग नाच आस्ट्रिन) नीति अपनाई। २४ अगस्त १९३६ को जर्मनी में

सैनिक सेवा की अवधि एक वर्ष से बढ़ाकर दो वर्ष कर दी गई। जर्मनी को आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाने के लिये एक नई पंचवर्षीय योजना चालू की गई। जर्मन सेनापति को आदेश दिया गया कि वह आस्ट्रिया पर अधिकार करने के लिए सैनिक योजनाएँ तैयार करें। जून १९३७ में हिटलर ने अपने सलाहकारों तथा उच्चाधिकारियों के समक्ष अपनी योजनाएं प्रकट कीं। हिटलर ने कहा कि हमें अपने दो बड़े शत्रुओं फ्रांस और ब्रिटेन के साथ टक्कर लेनी है क्योंकि वे मध्य यूरोप में अपना आधिपत्य जमाना चाहते हैं।

संयुक्त आंग्ल-फ्रांसीसी आक्रमण के विरुद्ध पश्चिमी मोर्चा के लिये फ्रांसीसी "मैगनट लाइन" के ठीक सामने सिगफ्रिड लाइन का निर्माण आरम्भ कर दिया गया। जर्मनी ने प्रतिवर्ष शस्त्रीकरण पर १०० करोड़ पौंड खर्च करना शुरू कर दिया। ४ फरवरी १९३८ को हिटलर ने प्रधान सेनापति फ्रिच को पद त्यागने के लिए वाध्य किया और जर्मन सेना का सर्वोच्च सेनापति स्वयं वन गया। न्यूरथ के स्थान पर रिवनट्रोप विदेश मन्त्री वना दिये गये। रिवनट्रोप ब्रिटेन में जर्मनी के राजदूत रह चुके थे। सर्वोच्च सेनापति वनने के ८ दिन वाद ही हिटलर ने आस्ट्रिया के प्रधान मन्त्री शुशनिग को वरचेसगाडन वुलाया और सैनिक धमकियों द्वारा उस पर जोर डाला कि वह आस्ट्रियाई मंत्रिमण्डल में आस्ट्रियाई नाजी सेड्सइन्क्वार्ट को सुरक्षा मन्त्री नियुक्त करने तथा आस्ट्रियाई नाजी दल को सरकारी मान्यता देने के लिये तैयार हो जाय। ९ मार्च को शुशनिग ने घोषणा की कि आस्ट्रिया के भविष्य का प्रश्न निश्चित करने के लिये आज से चार दिन वाद आस्ट्रिया में जनमत संग्रह किया जायगा। इधर ११ मार्च को जर्मनी ने आस्ट्रिया को चेतावनी (अल्टिमेटम) भेजी कि जनमतसंग्रह स्थगित कर दिया जाय और प्रधानमन्त्री शुशनिग त्याग-पत्र दे दें अन्यथा जर्मनी आस्ट्रिया पर हमला कर देगा। इस पर शुशनिग ने स्तीफा दे दिया। इसके तीन दिन वाद हिटलर विजयी मुद्रा में वियाना में प्रविष्ट

हुआ और आस्ट्रियाई नाजी सेइस इन्क्वार्ट को आस्ट्रिया का प्रधान मन्त्री नियुक्त कर दिया। उसने आस्ट्रियाई नेशनल बैंक पर कब्जा कर लिया और जर्मनी में आस्ट्रिया को विलीन करने के लिए जनमत संग्रह किया। इसमें लगभग ९९·७३ प्रतिशत मतदाताओं ने जर्मनी में मिलने के पक्ष में मत दिया।

आस्ट्रिया के जर्मनी में मिला दिये जाने से जर्मनी की न केवल जनशक्ति ६० लाख बढ़ गई बल्कि दक्षिण-पूर्वी यूरोप में सैनिक और राजनैतिक दृष्टि से उसकी धाक जम गई। इससे इटली, यूगोस्लाविया और हंगरी से निकट सम्पर्क कायम करने का जर्मनी को अच्छा मौका मिल गया। जर्मनी को आस्ट्रिया से भारी मात्रा में मगनेसाइट (विमानों के निर्माण में प्रयोग होता है) हाथ लगा। इसके अतिरिक्त आस्ट्रियाई बैंक से दो करोड़ पौण्ड नकद प्राप्त हुआ। इसका नतीजा यह हुआ कि जर्मनी आत्मनिर्भर बन गया। चर्चिल ने ब्रिटेन की लोकसभा में ठीक ही कहा था—"वियना के जर्मनी के अधिकार में चले जाने से नाजी जर्मनी का दक्षिण-पूर्वी यूरोप के तमाम यातायात पर कब्जा हो गया।" अब चेकोस्लोवाकिया को खतरा पैदा हो गया। इस तरह वर्सेल सन्धि की वह धारा, जिसके द्वारा जर्मनी और आस्ट्रिया को पृथक् किया गया था, सदा के लिये नष्ट हो गई।

चेकोस्लोवाकिया में संकट

आस्ट्रिया के बाद जर्मनी के आक्रमण का शिकार चेकोस्लोवाकिया को होना पड़ा। चेकोस्लोवाकिया के सामने सबसे बड़ी घरेलू समस्या थी सुडेटान जर्मन अल्पसंख्यकों के लिये स्वायत्तशासन की व्यवस्था करना। चेकोस्लोवाकिया की कुल १॥ करोड़ जनसंख्या में उक्त अल्पसंख्यकों की आबादी लगभग ३५ लाख थी। इन अल्पसंख्यकों के लिये अलग शिक्षा संस्थाएँ थी और उन्हे संयुक्त सरकार में प्रतिनिधित्व प्राप्त था। जर्मनी मे नाजीवाद के विकास से राष्ट्रीय

भावना को प्रोत्साहन मिला और सुडेटान जर्मन पार्टी ने हेनेलीन के नेतृत्व में पृथकवादी आन्दोलन आरम्भ कर दिया। हिटलर ने अपने भाषणों में हेनेलीन का समर्थन किया और सुडेटानलैंड की स्थापना पर जोर दिया। १९३७ में चेक सरकार ने जर्मन अल्पसंख्यकों को सरकारी पदों, सहायता कोषों, और सांस्कृतिक संस्थाओं को सरकारी सहायता में विशेष सुविधायें प्रदान कीं। इसके अतिरिक्त सरकारी तौर पर जर्मन भाषा को स्वीकार कर लिया। किन्तु इतने पर भी जर्मन अल्पसंख्यकों को संतुष्टि नहीं हुई। अप्रैल १९३८ में हेनेलीन ने कार्ल्सबैड में अपने एक वक्तव्य में ८ मांगें प्रस्तुत कीं जिसमें जर्मन क्षेत्रों के लिये स्वायत्तशासन और वहां की जनता को राजनैतिक तथा राष्ट्रीय स्वतन्त्रता प्रदान करने की मांग थी। इधर हिटलर ने भी घोषणा की कि जर्मन जनता का कर्त्तव्य है कि वह चेकोस्लोवाकिया की परतन्त्रता में पड़े अपने भाई जर्मनों की स्वतन्त्रता के लिये आवश्यक कदम उठायें। जर्मनी के समाचार-पत्रों ने भी जर्मन अल्पसंख्यकों की स्वतन्त्रता के लिये खूब आन्दोलन किया। किन्तु चूंकि चेकोस्लोवाकिया को फ्रांस रूस, रूमानिया और युगोस्लाविया का सहयोग प्राप्त था, इसलिये उसने आत्मसमर्पण न कर मोर्चा लेना उचित समझा। अगस्त १९३८ में ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री चेम्बरलेन ने लार्ड रूसीमान को जर्मन अल्पसंख्यकों के विवाद को सुलझाने के लिए चेकोस्लोवाकिया भेजा। लार्ड रूसीमान की रिपोर्ट चेकोस्लोवाकियाई सरकार के लिये निहायत विरोधी थी। उन्होंने अपनी रिपोर्ट में कहा था "सुडेटान क्षेत्र में गत २० वर्षों से चला आ रहा चेकोस्लोवाकिया का शासन यद्यपि अत्याचारी और आंतकवादी नहीं है किन्तु जिस तरह शासन चल रहा है, वह अत्यन्त अयोग्य और भेदभाव की भावना से पूर्ण है।" यद्यपि रिपोर्ट में यह स्वीकार किया गया कि आर्थिक और ऐतिहासिक दृष्टि से सुडेटान लैंड चेकोस्लोवाकिया से पृथक होने योग्य नहीं किन्तु

अन्त में उन्होंने सिफारिश की थी कि जर्मन जिलों को अविलम्ब जर्मनी को लौटा देना चाहिये । १२ सितम्बर को हिटलर ने नूरेम्बर्ग में अपने एक वक्तव्य में कहा कि अब मेरा सन्तोष समाप्त हो चुका है । दूसरे ही दिन नाजी नेता ने जेक मंत्रिमंडल से वार्ता भंग कर सैनिक शक्ति से जेक सरकार को पलटने का असफल प्रयत्न किया । वह भाग कर जर्मनी चला गया और हिटलर ने अपनी सेनाएँ जेक सीमा की ओर बढ़ानी शुरू कर दीं । इस तरह युद्ध सन्निकट आ गया । १५ सितम्बर को चेम्बरलेन हिटलर से, यह प्रार्थना करने के लिये कि वह अपनी सेनाएं आगे न बढ़ाये, बर्चेसगाडेन को रवाना हुए । वार्ता में फ्यूरर हिटलर ने सूडेटान जनता को अविलम्ब आजाद करने की मांग की और कहा कि ऐसा न किया गया तो जर्मनी चेकोस्लोवाकिया पर शीघ्र ही आक्रमण कर देगा । चेम्बरलेन तत्काल लन्दन के लिये रवाना हो गय और हिटलर कि मांग पर विचार करने के लिये फ्रांसीसी प्रधान मंत्री और विदेश मंत्री की एक अविलम्ब बैठक बुलाई । काफी समय तक बहस के बाद एक आंग्ल-फ्रांसीसी चुनौती १९ सितम्बर को चेकोस्लोवाकिया को भेजी गयी जिसमें मांग की गई कि सूडेटानलैंड को शीघ्र रीच (जर्मन सरकार) को सौंप दिया जाय। इस संबन्ध में तीन दिन के भीतर उत्तर सूचित करने को कहा गया। इसके साथ ही एक धमकी भी दी गई कि यदि उक्त शर्त नामंजूर कर दी गई तो जेक सरकार को सैनिक सहायता की संधि भंग करके चेकोस्लोवाकिया के विरूद्ध जर्मनी को सहायता दी जायेगी। इस धमकी पर चेक सरकार को आंग्ल-फ्रांसीसी चुनौती के आगे झुकना पड़ा। चुनोती की शर्तें मंजूर करने के बाद चेक प्रधान मंत्री होजा ने त्याग-पत्र दे दिया और उनके स्थान पर जनरल सिरोवी प्रधान मंत्री बने ।

२२ सितम्बर को चेम्बरलेन आंग्ल-फ्रांसीसी योजना को क्रियान्वित करने सम्बन्धी विचार विमर्श के लिये हिटलर से मिलने गाडेसबर्ग को

रवाना हो गये । इस भेंट में हिटलर ने चेकोस्लोवाकिया के पोलिश तथा हंगेरियन अल्पसंख्यकों के क्षेत्र १ अक्तूबर तक सैनिक अधिकार में ले लेने की मांग की थी ।

चेम्बरलेन २४ सितम्बर को निराश होकर लंदन लौट आये । इस पर ब्रिटेन मंत्रिमंडल ने गाडेसवर्ग शर्तो को अस्वीकार कर दिया। ब्रिटेन और फ्रांस ने निश्चय किया कि यदि जर्मनी ने हमला किया तो वे चेकोस्लोवाकिया कि सहायता करेंगे । और इसके बाद ब्रिटेन और फ्रांस में सैनिक संगठन आरम्भ हो गया। ब्रिटेन में बमबारी से बचने के लिये खाइयां खोदी जाने लगी और लोगों को हवाई आक्रमण से बचने के लिये आवश्यक शिक्षा और सामान दिये जाने लगे । ब्रिटेन ने अपने जहाजी बेड़े को शक्तिशाली बनाना शुरू कर दिया । २७ सितम्बर को चेम्बरलेन ने रेडियो पर कहा यदि कोई समझौता होने की संभावना हो तो मैं तीसरी बार भी जर्मनी जाने को तैयार हूं । यही नहीं बल्कि चेम्बरलेन ने हिटलर को एक पत्र लिखा जिसमें पुनः समझौता वार्ता के लिये अनुरोध किया गया । हिटलर ने इसे सस्ती विजय समझी और चेम्बरलेन को म्युनिक आने के लिये निमंत्रित किया ।

म्युनिक समझौता

२९ सितम्बर को म्युनिक में चार राष्ट्रों का एक सम्मेलन हुआ जिसमें म्युनिक समझौता किया गया । सम्मेलन में भाग लेने वाले चार राष्ट्र थे ब्रिटेन (चेम्बरलेन), फ्रांस (डालाडियार), जर्मनी (हिटलर) और इटली (मुसोलिनी) । समझौते में तय हुआ कि (१) चेक लोग १ अक्तूबर से १० दिन के भीतर सुडेटान लैंड को खाली कर दें (२) एक अन्तर्राष्ट्रीय कमीशन सीमाएं निर्धारित करे तथा जनमत संग्रह वाले क्षेत्रों का निरीक्षण करे । (३) ब्रिटेन और फ्रांस चेकोस्लोवाकिया की नई सीमाओं की बाहरी आक्रमण से रक्षा

करने में साथ देंगे (४) पोलिश और हंगेरियन अल्पसंख्यकों का प्रश्न हल हो जाने के बाद जर्मनी और इटली भी चेकोस्लोवाकिया की सीमाओं की रक्षा में सहयोग की गारन्टी देंगे। (५) आबादी की अदलाबदली। चेक राष्ट्रपति बेनेश को मजबूर होकर फांसी का फंदा अपने हाथों अपने गले में लगाना पड़ा। उन्होंने उक्त शर्तनामा पर हस्ताक्षर कर दिये। इसके बाद उन्होंने इस्तीफा दे दिया और उनके स्थान पर इमिल हचा राष्ट्रपति नियुक्त हुए। ३० सितम्बर को चेम्बरलेन और हिटलर ने एक संयुक्त घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर किये जिसमें कहा गया था कि जर्मनी और ब्रिटेन एक दूसरे के खिलाफ कभी युद्ध नहीं करेंगे। चेम्बरलेन ने उक्त घोषणा पत्र अपनी एक विजय समझी और खुशी से उसे फहराते हुए लन्दन को रवाना हो गये। म्युनिक समझौता अविलम्ब ही लागू कर दिया गया। सुडेटानलेंड पर जर्मनी का अधिकार हो गया। अन्तर्राष्ट्रीय कमीशन ने चेकोस्लोवाकिया की नई सीमा निर्धारित की। पोलैंड ने चेकोस्लोवाकिया को आक्रमण की धमकी देकर टेस्चेन पर अधिकार कर लिया। इधर हंगरी ने भी स्लोवाकिया से लगभग ५ हजार वर्ग मील भूमि छिनकर अपने कब्जे में कर ली। स्मरण रहे की ६ दिसम्बर को हिटलर ने परस्पर आक्रमण न करने के एक फ्रैंको-जर्मन समझौते पर हस्ताक्षर किये थे।

म्युनिक समझौता संतुष्टिकरण नीति का ही रूप था। चर्चिल ने ब्रिटिश पार्लमिण्ट में भाषण देते हुए कहा "यह समझौता ब्रिटेन और उससे भी अधिक फ्रांस के लिए बहुत बड़ी हार है। इंग्लैंड और फ्रांस के दबाव से चेकोस्लोवाकिया का विभाजन नाजी धमकी के आगे पश्चिमी जनतन्त्र के झुकने के बराबर है।" एमरी के शब्दों में "म्युनिक समझौता दबाव से हुई जीत का प्रतीक है जो इतिहास में सबसे सस्ती समझी जा सकती है।" शूमां ने म्युनिक समझौता पर प्रकाश डालते हुए कहा था कि यह हिटलर के लिए भारी विजय थी। म्युनिक सम-

झौता हिटलर द्वारा रूसी साम्यवाद के विरुद्ध किए गए प्रचार का फल था। हिटलर का कहना था कि रूसी साम्यवाद पश्चिमी पूँजीवाद के लिए भारी खतरा है और इसकी रक्षा नाजी जर्मनी ही कर सकता है। इस प्रचार का असर यह हुआ कि पूँजीवादी देशों ने जर्मनी का हाथ मजबूत करना तथा उसे संतुष्ट करना शुरू किया। इसी चक्कर में आकर ब्रिटेन और फ्रांस ने म्युनिक समझौता में हिटलर की शर्तों को मंजूर कर लिया और उसके संकेतो पर चलने को तैयार हो गए। यद्यपि रूस पारस्परिक सुरक्षा सधियों के अनुसार चेकोस्लोवाकिया की सुरक्षा में मदद कर सकता था और इसीलिए जब हिटलर के साथ चेक सरकार का तनाव बढ़ा तो रूस ने कहा था कि यदि पारस्परिक सुरक्षा संधियों के अनुसार फ्रांस जेक की सहायता करने को तैयार हो तो रूस भी उसका साथ देगा। किन्तु साम्यवाद के भय ने ब्रिटेन और फ्रांस को रूस से पृथक रहने को मजबूर किया जिसका परिणाम यह हुआ कि म्युनिक समझौता में रूस को नहीं बुलाया गया। इस प्रकार म्युनिक बैठक ने फ्रांसीसी-सोवियत समझौता १९३५ को भंग कर दिया। इससे रूस को अपना नया साथी ढूंढना पड़ा। इधर पोलैंड की सुरक्षा भी बिल्कुल समाप्त हो गई। मार्शल किटेल ने नुरेम्बर्ग मुकदमों में ठीक ही कहा था "कि म्युनिक समझौता हिटलर की एक चाल थी जिसके द्वारा वह रूस को यूरोप से निकाल बाहर करना और जर्मन सेना को मजबूत बनाना चाहता था।" म्युनिक समझौता हो जाने पर हिटलर को डेन्यूब और बाल्कान क्षेत्रों पर आर्थिक और सैनिक अधिकार जमाने का मौका मिल गया।

चेकोस्लोवाकिया का विनाश

म्युनिक समझौता के बाद हिटलर ने कई बार इस बात को दोहराया कि "जर्मनी का यूरोप में आखिरी प्रादेशिक दावा सुडेटानलैंड है। सुडेटानलैंड को जर्मनी में मिला दिये जाने के बाद जेक सरकार

के खिलाफ हमारी किसी प्रकार की शिकायत नहीं रहेगी इसकी हम गारंटी देंगे।" १९ नवम्बर १९३८ को चेकोस्लोवाकिया एक संघीय गणतन्त्र (फेडरल रिपब्लिक) में परिवर्तित कर दिया गया। रूथेनिया और स्लोवाकिया में गणतंत्र के राष्ट्रपति द्वारा नामजद दो प्रधान मंत्रियों के नेतृत्व में दो स्वायत्त लोक सभाओं की स्थापना कर दी गई किन्तु विदेशी नीति और प्रतिरक्षा विभाग केन्द्रीय पार्लमेंट के हाथ में रहने दिये गये। ९ मार्च १९३९ को राष्ट्रपति हचा ने स्लोवाक के प्रधानमंत्री फादर टिसो को पदच्युत कर दिया। टिसो पर आरोप लगाया गया कि वह पृथकवादी आन्दोलन को प्रोत्साहित कर रहे हैं जिससे राज्य की एकता को खतरा पैदा होने का भय है। टिसो भाग कर जर्मनी आ गए और हिटलर से अपील की। १५ मार्च को राष्ट्रपति हचा को बर्लिन बुलाया गया और वहा चेकोस्लोवाकिया पर आक्रमण का भय दिखला कर उन्हें एक घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए वाधित किया गया। घोषणा-पत्र में राष्ट्रपति हचा ने स्वीकार किया "मैं पूर्ण विश्वास के साथ चेक जनता और देश का भविष्य जर्मन रिच के फ्यूरर के हाथों में सौंपता हूँ।" इसके बाद जर्मन सेना ने बोहेमिया और मोरेविया पर अपना अधिकार जमा लिया।

ब्रिटेन और फ्रांस ने इन मामलों में बिल्कुल हस्तक्षेप नहीं किया। यद्यपि म्युनिक समझौता में यह तय हो चुका था कि सुरक्षा के मामले में चेकोस्लोवाकिया को ब्रिटेन और फ्रांस दोनों सहायता करेंगे, किन्तु चेम्बरलेन ने यह कह कर हस्तक्षेप करने से इन्कार कर दिया कि स्लोवाक डायट (संसद) ने स्लोवाकिया की स्वतंत्रता की घोषणा कर दी है इसलिए वहां की स्थिति बिलकुल बदल गई है और यह हस्तक्षेप करने का मौका नहीं। बोहेमिया और मोरेविया पर अधिकार हो जाने से जर्मनी के हाथ में १८ हजार वर्गमील जमीन, लगभग ७० लाख की आवादी, स्कोडा का प्रसिद्ध शस्त्र कारखाना और नेशनल बक का सोना आ गया। इसके अतिरिक्त स्लोवाकिया के मिलने

से जर्मनी को २० लाख आबादी की लगभग १५ हजार वर्ग मील भूमि हाथ लगी। इस तरह म्युनिक समझौता के ६ मास के भीतर एवं आस्ट्रिया पर कब्जा होने के एक वर्ष के भीतर जर्मनी ने चेकोस्लोवाकिया को पूरी तरह से बर्बाद कर दिया।

ब्रिटिश नीति में परिवर्तन

इसी बीच हिटलर ने २१ मार्च को लिथुआनिया से मेमेल छीन लिया तथा रूमानिया के तेलमंगर पर कब्जा कर लिया। इसके अतिरिक्त उसने पोलैंड से मांग की कि यदि वह जर्मनी के साथ २५ वर्ष तक परस्पर आक्रमण न करने का समझौता चाहता है तो डांजिग और पूर्वी रूस से जर्मनी को जोड़ने वाले समुद्र तटीय गलियारे को जर्मनी को लौटा दे। किन्तु पोलैंड ने इन शर्तों को अस्वीकार कर दिया। इन घटनाओं से चेम्बरलेन को विश्वास हो गया कि हिटलर के आश्वासनों पर अब विश्वास नहीं किया जा सकता। इसलिए उन्होंने निम्न ऐतिहासिक भाषण के साथ ब्रिटिश विदेश नीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन करने की घोषणा की। आपने कहा "हम हरएक देश का सहयोग चाहे उनका आन्तरिक शासन जैसा भी हो, स्वागत करते हैं, आक्रमण के लिए नहीं बल्कि आक्रमण को रोकने के लिए।" ३१ मार्च १९३९ को चेम्बरलेन ने घोषणा की कि पोलिश स्वतन्त्रता पर हमला होने पर ब्रिटेन पोलैंड को हर तरह से अविलम्ब सहायता देना आरम्भ कर देगा। यही घोषणा फ्रांस ने भी की।

७ अप्रैल को इटालियन फौजों ने अल्बानिया पर अकस्मात् हमला कर दिया और राजा जोग को गद्दी से उतार कर १९२७ के आंग्ल-इटालियन समझौता का उल्लंघन करते हुए अल्बानिया को अपने अधिकार में ले लिया। ब्रिटेन ने तत्काल ही यूनान और रूमानिया को सुरक्षा सहायता की गारन्टी दी और पारस्परिक सहायता व सहयोग सम्बन्धी एक आंग्ल-तुर्की समझौता किया। २६ अप्रैल को चेम्बरलेन ने अनिवार्य सैनिक शिक्षा का एक बिल प्रस्तुत किया। दो दिन के

बाद हिटलर ने १९३३ के आंग्ल-जर्मन समझौता और १९३४ की जर्मन-पोलिश संधि को मानने से इन्कार कर दिया। उसने ब्रिटेन पर आरोप लगाया कि वह घेरेबन्दी की नीति अपना रहा है।

रूस-जर्मन संधि (२३ अगस्त १९३९)

लायड जार्ज और चर्चिल ने कई बार कहा था यदि ब्रिटेन पोलैंड की जर्मन आक्रमण से रक्षा करना चाहता है तो उसे अविलम्ब रूस के साथ सुदृढ़ समझौता कर लेना चाहिये। मार्च में एक ब्रिटिश व्यापारिक शिष्टमंडल मास्को गया। किंतु वाल्टिक राज्यों के मामलों पर ब्रिटेन और रूस में कोई समझौता नहीं हो सका। जुलाई में विदेश विभाग के विशेषज्ञ विलियम स्ट्रांग के नेतृत्व में एक ब्रिटिश सैनिक शिष्टमंडल रूस के साथ सुरक्षा योजनाओं पर विचार करने के लिये मास्को भेजा गया। इस अवसर पर फ्रांसीसी सैनिक विशेषज्ञ भी मास्को में उपस्थित हुए। स्टालिन ने पूछा कि जर्मनी के खिलाफ कार्रवाई करने के लिये फ्रांस कितने सैनिक डिवीजन की व्यवस्था कर सकता है। फ्रांसीसी मिशन से उत्तर मिला कि १०० डिवीजन। इसके बाद स्टालिन ने ब्रिटिश सैनिक शिष्टमंडल से पूछा। उन्होंने कहा कि दो डिवीजन अभी और दो बाद में। इसके बाद स्टालिन ने कहा कि जर्मनी के खिलाफ युद्ध छेड़ने के लिये हमें तीन सौ से भी अधिक डिवीजनों की जरूरत पड़ेगी। आखिर वार्ता असफल रही। २३ अगस्त १९३९ के रिब्बेन-ट्रोप और मोलोटोव ने रूसी-जर्मन परस्पर आक्रमण न करने की संधि पर हस्ताक्षर किये। संधि में वायदा किया गया कि दोनों में कोई भी देश १० वर्षों तक एक दूसरे के प्रति हिंसावादी तथा आक्रमणकारी कार्रवाई नहीं करेगा तथा वे किसी बाहरी ताकत को जो दोनों में से किसी पर आक्रमण करे, उसे सहायता नहीं देंगे। एक गुप्त समझौते में जर्मनी ने यह दिखलाया कि राजनैतिक दृष्टि से लटाविया, इस्थोनिया, तथा फिनलंड में उसकी कोई दिलचस्पी नहीं किंतु लिथआनिया को वह अपने प्रभाव में रखना चाहता है। रूस-जर्मन संधि से दोनों

सीमाओं पर युद्ध का भय जाता रहा जिसका लाभ उठाकर हिटलर ने पोलैंड पर आक्रमण कर दिया।

पोलैंड

सीमा पर कई घटनाएँ होने पर ४ अगस्त को डांजिग सेनेट (परिषद) ने पोलिश चुंगी अधिकारियों को सूचित किया कि वे अब सीमा पर पहरा नहीं दे सकते। इस खुली चुनौती पर पोलिश कमिश्नर जनरल ने डांजिग सेनेट को एक विरोध-पत्र भेजा, जिसमें उसे धमकी दी गई थी, यदि पोलिश अधिकारियों के साथ हस्तक्षेप किया गया तो उसका सख्ती से मुकाबला किया जायगा। ९ अगस्त को जर्मनी ने हस्तक्षेप किया और पोलैंड को चेतावनी दी कि यदि डांजिग को पोलैंड ने अब और कोई धमकी पत्र भेजा तो इसका पोलिश-जर्मन सम्बन्ध पर बुरा असर पड़ेगा। इस पर पोलैंड ने डांजिग और पोलैंड के मामले में जर्मन हस्तक्षेप का कानूनी तौर पर विरोध करते हुए कहा कि यदि जर्मनी ने हस्तक्षेप किया तो यह आक्रमणकारी रवैया समझा जायगा। हिटलर ने इसके उत्तर में पोलिश सीमा पर जर्मन सेना तैनात कर दी। २२ अगस्त को चेम्बरलेन ने हिटलर को एक व्यक्तिगत पत्र भेजा जिसमें सीधी पोलिश-जर्मन समझौता वार्ता करने का प्रस्ताव था जिसमें कोई भी निर्णय होने पर उसे अन्तर्राष्ट्रीय गारन्टी दी जायगी। हिटलर ने ब्रिटिश राजदूत हेंडरसन को उत्तर दिया कि ब्रिटेन द्वारा पोलैंड की सहायता का निर्णय जर्मनी की नीति में कोई परिवर्तन नहीं ला सकता और इसीलिए वह जर्मनी के राष्ट्रीय सम्मान का बलिदान करने के बजाय लम्बी लड़ाई के लिये तैयार है। २५ अगस्त को पारस्परिक सहयोग के आंग्ल-पोलिश समझौते पर हस्ताक्षर हुए। २८ अगस्त को ब्रिटेन ने फिर जर्मन-पोलिश झगड़े के निबटारे का प्रस्ताव रखा। २९ अगस्त को जर्मनी के समाचार पत्रों ने पोलैंड में जर्मनों की कथित हत्या की खबर प्रकाशित की। इस पर हिटलर ने वर्सेल्स संधि में संशोधन की मांग की और कहा कि

पोलैंड के १५ लाख जर्मनों की तत्काल सुरक्षा की व्यवस्था की जाय, उसी दिन हेंडरसन को बताया गया कि जर्मनी पोलैंड के साथ वार्ता के लिए उसी हालत में तैयार है जब पोलैंड अपना प्रतिनिधिमंडल जो प्रस्तावों को तत्काल स्वीकार कर सके, ३० अगस्त को बर्लिन भेजे। हेंडरसन ने इसका विरोध किया और कहा कि यह चुनौती है क्योंकि एक पोलिश प्रतिनिधि को बिना उसे यह सूचित किये कि वार्ता के प्रस्तावों का आधार क्या है, वार्ता के लिये बुलाना नितांत अनुचित है। पोलैंड के प्रति जर्मनी का आक्रमणकारी रवैया पश्चिमी राष्ट्रों के लिये चेतावनी सिद्ध हुई। ३० अगस्त को रिब्बनट्रोप ने १६ सूत्री प्रस्ताव को असामयिक बताया और कहा कि इसकी अब जरूरत नहीं। उसी दिन पोलैंड ने अपनी सेनाएं संगठित कर लीं। १ सितम्बर १९३९ को जर्मनी ने लड़ाई की सूचना दिये बिना पोलैंड पर आक्रमण कर दिया। तीसरे दिन ही ३ सितम्बर को प्रातः ११ बजे ब्रिटेन ने जर्मनी के खिलाफ युद्ध की घोषणा कर दी। उसी दिन ६ बजे संध्या को फ्रांस ने भी ब्रिटेन की नीति का अनुसरण किया और इस तरह एक ऐसे युद्ध का श्रीगणेश हुआ जैसा मानव संसार ने कभी देखा भी नहीं था।

युद्ध काल की घटनायें

जर्मनी की सफलता—जर्मनी के भयंकर आक्रमण के सामने पोलैंड को २६ दिन के भीतर ही आत्मसमर्पण कर देना पड़ा। इसका विभाजन हुआ, जिसका कुछ हिस्सा रूस को मिला। इधर सोवियत संघ ने फिनलैंड पर आक्रमण कर दिया और उसके प्रमुख प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। १९४० की बसन्त ऋतु में जर्मन सेनाओं ने डेनमार्क नार्वे, लक्सेमबर्ग, बेल्जियम और हालैंड पर अधिकार जमा लिया। मई में चेम्बरलेन को मजबूर होकर त्याग-पत्र देना पड़ा और ब्रिटेन के नये प्रधान मंत्री श्री चर्चिल बने। इन्हीं दिनों डंकर्क में जर्मनों के घेरे में पड़े ३३५००० ब्रिटिश सनिकों को निकाला गया। १६ जून को फ्रांस ने जर्मनी के सामने आत्मसमर्पण कर दिया। उत्तरी और

पश्चिमी फ्रांस जर्मनी के अधिकार में आ गये और विची नगर पर फ्रांस का केवल नाम मात्र अधिकार रह गया। इसी बीच इटली ने फ्रांस का कुछ हिस्सा अपने अधिकार में लेने के लोभ में दक्षिणी फ्रांस के कुछ पश्चिमी जिलों पर अधिकार कर लिया। जर्मनी ने रूमानिया पर अधिकार किया और रूस ने बेसारबिया पर। डब्रूजा बलगेरिया को दे दिया गया और ट्रांसिलवानिया का आधा हिस्सा हंगरी को। इटली ने पूर्वी फ्रांस स्थित ब्रिटिश सोमालीलैंड को पराजित कर उसे अपने अधिकार में ले लिया। इसके अतिरक्त उसने मिस्र पर भी हमला कर दिया। जर्मनी ने बलगेरिया, युगोस्लाविया, यूनान और क्रीट पर एक साथ ही धावा बोल दिया और तुर्की के साथ परस्पर आक्रमण न करने के समझौते पर हस्ताक्षर किए। इस प्रकार धूरी राष्ट्रों की लगातार सफलता का अंत हो गया।

स्थिति का पलटना

बाल्कान के विभाजन से रूस और जर्मनी के बीच फूट पदा हो गयी। २२ जून १९४१ को हिटलर ने अचानक रूस पर आक्रमण कर दिया। इसी बीच अमरीकी कांग्रेस ने उधार और पट्टा बिल पास किया और ब्रिटेन तथा रूस को हर तरह से सहायता देने का निश्चय किया। रूसी सेना ने जमकर मास्को, लेनिनग्राड तथा सेवास्टपोल की रक्षा की। ७ दिसम्बर को जापान ने पर्लहार्बर में अमरीकी जहाजी बेड़े पर बमबारी की। दूसरे दिन अमरीका ने जापान के खिलाफ,

चर्चिल

युद्ध का एलान कर दिया और इसके तीन दिन बाद इटली और जर्मनी के खिलाफ भी। जापान ने फिलिपिन, डच पूर्वी द्वीप समूह, फ्रांसीसी हिन्दचीन, थाइलैंड, सिंगापुर और बर्मा पर धावा बोल दिया। चर्चिल स्टालिन और रूजवेल्ट से मिले और तमाम ब्रिटिश साम्राज्य को धूरी राष्ट्रों के खिलाफ खड़ा कर दिया। नवम्बर १९४२ में अमरीकी सेनाओं ने उत्तरी अफीका में ब्रिटिश सेना की सहायता की और धूरी राष्ट्रों को उत्तरी इटली की ओर खदेड़ दिया। आंग्ल-अमरीकी सेनाओं ने पुनः माल्टा और सिसली पर अधिकार कर लिया और इटली को मजबूर किया कि वह मुसोलिनी को हटाकर सितम्बर १९४३ में एक युद्ध विराम संधि करे। नवम्बर में चर्चिल, स्टालिन और रूजवेल्ट की एक बैठक तेहरान में हुई जिसमें पश्चिमी यूरोप में जनरल आइजनहावर को सर्वोच्च सेनापति नियुक्त किया गया। १९४४ में रूसी फौजों ने स्टालिनग्राड की लड़ाई में जर्मनों को परास्त कर दिया। जून में अमरीकी और ब्रिटिश सेनाएं फ्रांस के नार्मंडी में प्रविष्ट हुईं। पेरिस को आजाद किया और बर्लिन की ओर बढ़ीं। फरवरी १९४५ में याल्टा में चर्चिल, स्टालिन और रूजवेल्ट पुनः मिले और जर्मनी को परास्त करने की अंतिम योजना तैयार की। रूसी फौजों ने हर मोर्चे से आक्रमण आरंभ कर दिया और मई के प्रारंभ में पश्चिम से आंग्ल-अमरीकी फौजों तथा पूर्व से रूसी सेनाओं न बर्लिन पर हमला कर दिया। बर्लिन का पतन हो गया और हिटलर ने आत्महत्या कर ली। मुसोलिनी स्विटजरलैंड की ओर भागता हुआ रास्ते में मार डाला गया। ६ और ९ अगस्त को अमरीकी फौज ने जापान के प्रमुख नगर हिरोशिमा और नागासाकी पर अणुबम गिराये। इधर रूस ने जापान के खिलाफ युद्ध का एलान कर दिया। २ सितम्बर को जापान ने बिनाशर्त आत्मसमर्पण कर दिया। १२ अप्रैल १९४५ को प्रेसिडेन्ट रूजवेल्ट का देहांत हो गया और उपराष्ट्रपति ट्रूमेन राष्ट्रपति नियुक्त किये गये। जुलाई में चर्चिल के स्थान पर एटली ब्रिटेन के प्रधान मंत्री

बने। दूसरे विश्व युद्ध का यह संक्षिप्त इतिहास है। वैसे विस्तृत वर्णन के लिये तो काफी पृष्ठों की जरूरत है।

शांति संधियां

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विजयी राष्ट्रों के सामने कई गम्भीर समस्यायें आ खड़ी हुईं। सब में उलझी समस्या थी कि विजित धूरी राष्ट्रों पर किस तरह से शासन किया जाय जिससे कि भविष्य में वे पुनः युद्ध के लिये खड़े न हो सकें। दूसरी समस्या थी युद्ध से क्षति-ग्रस्त देशों का पुन निर्माण और पुनःसंस्थापन की। तीसरी सबसे बड़ी समस्या थी युद्ध से पीडित विश्व में स्थायी शांति की स्थापना करना। विदेश मंत्रियों की कई बैठकों के बाद २९ जुलाई १९४६ को पेरिस शांति सम्मेलन हुआ जिसमें २१ देशों ने भाग लिया। ७८ दिनों तक विचार करने के बाद १० फरवरी १९४७ को निम्नलिखित संधियों पर हस्ताक्षर किये गये। हस्ताक्षरकर्त्ताओं में पांच शत्रु देश और मित्र-राष्ट्र थे, जिनमें युद्ध चला था।

१. इटली

प्रदेश—इटली ने फ्रांस को सेंटबर्नार्ड, मांटथाबर, धाबर्टन, मोंटसेनिस, टेन्डा तथा ब्रिगा जिला; यूगोस्लाविया को जारा, पेला-गोसा, लगोस्टा तथा डालमाशियन समुद्र तट के कई द्वीपों को सौंपा; ट्रिस्ट को स्वतंत्र प्रदेश बना दिया गया जिसका शासन संयुक्त राष्ट्रसंघ की सुरक्षा परिषद को सौंपा गया। यूनान को रोडेस तथा डोडेकैनिज के अन्य द्वीपों को सौंपा गया। अल्बानिया और इथोपिया की स्वतंत्रता को मान्यता दी गई।

निशस्त्रीकरण—फ्रांस और युगोस्लाविया से मिली हुई इटली की सीमाओं का विसैनीकरण; परमाणु शस्त्रों, पनडुब्बियों, तारपीडो, विमान वाहक जहाजों के निर्माण पर प्रतिबन्ध तथा टैंकों की संख्या घटाकर २०० कर दी गई। नौ बेड़े में युद्ध पोतों की संख्या घटाकर दो और अफसरों

और नाविकों की संख्या कुल २५०० कर दी गई। थल सेना में सैनिकों की संख्या २५०००० और हवाई वेड़े में लड़ाकू विमानों की संख्या घटाकर २०० और यातायात विमानों की संख्या १५० कर दी गई।

क्षतिपूर्ति—तय हुआ कि इटली क्षतिपूर्ति के रूप में रूस को १० करोड़ डालर, युगोस्लोविया को १२ करोड़ ५० लाख डालर, यनान को १० करोड़ ५० लाख डालर, इथोपिया को २॥ करोड़ और अल्वानिया को ५०.लाख डालर देगा।

२. रूमानिया

प्रदेश—रूमानिया की सीमाओं का पुनर्संस्थापन।

निशस्त्रीकरण—थल सेना में विमानमारक तोपों की संख्या १२०००० से घटाकर ५ हजार कर दी गई। नौ सेना में १५ हजार टन के जहाज और ५ हजार कर्मचारी, हवाई वेड़े के विमानों की संख्या १५० और सैनिकों की संख्या ८००० कर दी गई। शस्त्रों पर प्रतिबन्ध वैसा ही लगाया गया जैसा कि इटली में।

क्षतिपूर्ति—१२ सितम्बर १९४४ से रूस को ८ वर्षो में ३० करोड़ डालर देगा।

३. हंगरी

प्रदेश—१ जनवरी १९३८ को आस्ट्रिया और चेकोस्लोवाकिया के साथ निर्धारित सीमाओं का पुनर्संस्थापन, तीन गांवों को चेकोस्लोवाकिया, ट्रांसलवानिया और रूमानिया में वांट दिया गया।

निशस्त्रीकरण—थल सेना में सैनिकों की संख्या ६५ हजार, हवाई वेड़े में ५ हजार सैनिक और ९० विमान। इटली की तरह शस्त्रों पर प्रतिवन्ध।

क्षतिपूर्ति—८ वर्षो की अवधि में रूस को २० करोड़, युगोस्लाविया को ५ करोड़ और चेकोस्लोवाकिया को ५ करोड़ डालर।

४. बल्गेरिया

प्रदेश—जनवरी १९४१ की सीमाओं का पुनर्संस्थापन।

निशस्त्रीकरण—थल सेना में सैनिक ५५ हजार, नौ बेड़े में ३५०० सैनिक और, २५० टन के जहाज, हवाई बेड़े ५२०० सैनिक और ९० विमान, शस्त्रों पर प्रतिबन्ध इटली की तरह।

क्षतिपूर्ति—४॥ करोड़ डालर यूनान को, २॥ करोड़ युगोस्लोवाकिया को ८ वर्षो की अवधि में।

५. फिनलैंड

प्रदेश—जनवरी १९४१ की सीमाओं का पुनर्संस्थापन केवल पेटसामो को छोड़कर जो रूस को सौंपा जा चुका है। १२ मार्च १९४० का सोवियत-फिनिश संधि का पुनर्संस्थापन।

निशस्त्रीकरण—थल सेना में सनिकों की संख्या ३४४००, नौ बेड़े में कर्मचारियों की संख्या ४५०० और ७० हजार टन के जहाज, हवाई बेड़े में ३००० आदमी और ६० विमान।

क्षति पूर्ति—१९ सितम्बर १९४४ से ८ वर्षो में सोवियत संघ को ३० करोड़ डालर।

जर्मनी (१९४५–५३)

जर्मनी के आत्मसमर्पण करने के बाद जर्मनी पर अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस और रूस का अधिकार माना गया। इससे जर्मनी को ४ टुकड़ों में विभाजित करना पड़ा। विभाजन के अनुसार अमरीका को १ करोड़ ५ लाख की आबादी का ५२५०० वर्ग मील क्षेत्र, ब्रिटेन को २ करोड़ ३० लाख की आबादी का ३६ हजार वर्ग मील क्षेत्र; फ्रांस को ६० लाख की आबादी का १६५००० वर्ग मील का क्षेत्र और रूस को १ करोड़ ८० लाख की जनसंख्या की ४५ हजार वर्ग मील भूमि प्राप्त हुई। राजधानी बर्लिन को चार राष्ट्रों के नेतृत्व में चार भागों में विभाजित कर दिया गया। निश्चय हुआ कि जर्मनी पर शासन सम्बन्धित देशों की सरकारों के आदेश पर ही होगा। चारों क्षेत्रों के सेनापतियों को मिलाकर एक नियंत्रण परिषद् (कंट्रोल काउंसिल)

वनेगा जिसका निर्णय चारों क्षेत्रों को मानना होगा। २ अगस्त १९४५ को पोटसडम में अमरीका, ब्रिटेन और रूस के तीन प्रमुख अधिकारियों का एक सम्मेलन हुआ जिसमें निम्नलिखित निर्णय किये गये : (१) शांति संधियों के लिये तीनों देशों के विदेश मन्त्री आवश्यक कार्यक्रम तैयार करें। (२) जर्मनी का पूर्ण रूप से असैनिकरण और निशस्त्रीकरण (३) नाजी कानून का उन्मूलन और नाजी दल को भंग किया जाय। (४) युद्ध अपराधियों पर मुकदमा। (५) प्रशासन का केन्द्रीयकरण तथा गणतंत्री उसूलों पर स्थानीय उत्तरदायित्व का विकास। (६) शस्त्रों और वारूदों के उत्पादन पर प्रतिवन्ध। (७) जर्मनी की विदेशों में पड़ी सम्पत्ति और औद्योगिक उत्पादनों से प्राप्त रकम क्षतिपूर्ति अदा करने में व्यय की जाय।

१९४६ में जर्मनी से सम्बन्धित प्रत्येक मामलों पर रूस और अमरीका में खेंचातानी होने लगीं। क्षतिपूर्ति, सीमा निर्धारण तथा जर्मन सरकार के भविप्य को लेकर भारी तनाव फैल गया। रूस की मांग थी कि जर्मनी को शक्तिशाली संघीय राज्य बनाया जाय और वह १८ वर्षों के भीतर १० अरब डालर क्षतिपूर्ति अदा करे। इसके अतिरिक्त रूर का अन्तर्राष्ट्रीयकरण किया जाय और पूर्वी सीमायें नये ढंग से निर्धारित की जांय। आंग्ल-अमरीकी गुट चाहता था कि जर्मनी में डेमोक्रेटिक फेडरल सरकार की स्थापना की जाय, सेनाओं का पुनर्निर्धारण किया जाय और जर्मनी की हालत आर्थिक दृष्टि से स्वस्थ वना दी जाय जिससे वह क्षतिपूर्ति आसानी से अदा कर सके। इस सम्वन्ध में १९४७ में लन्दन और मास्को में चार विदेश मन्त्रियों का दो वार सम्मेलन हुआ लेकिन असफल रहा। ६ फरवरी १९४९ को आंग्ल-अमरीकी क्षेत्रों के अधिकारियों ने मिलकर रूसी विरोध के वावजूद संगठित और अदालती शासन चलाने का निश्चय किया। सोवियत संघ ने इसके विरोध में विदेश मंत्री परिषद् और नियंत्रण परिषद से सम्वन्ध विच्छेद कर लिया। १९४८ में सोवियत संघ ने वर्लिन

४. बल्गेरिया

प्रदेश––जनवरी १९४१ की सीमाओं का पुनर्सस्थापन ।

निशस्त्रीकरण––थल सेना में सैनिक ५५ हजार, नौ बेड़े में ३५०० सैनिक और, २५० टन के जहाज, हवाई बेड़े ५२०० सैनिक और ९० विमान, शस्त्रों पर प्रतिबन्ध इटली की तरह ।

क्षतिपूर्ति––४॥ करोड़ डालर यूनान को, २॥ करोड़ युगोस्लोवाकिया को ८ वर्षों की अवधि में ।

५. फिनलैंड

प्रदेश––जनवरी १९४१ की सीमाओं का पुनर्सस्थापन केवल पेटसामो को छोड़कर जो रूस को सौंपा जा चुका है । १२ मार्च १९४० का सोवियत-फिनिश संधि का पुनर्सस्थापन ।

निशस्त्रीकरण––थल सेना में सनिकों की संख्या ३४४००, नौ वेड़े में कर्मचारियों की संख्या ४५०० और ७० हजार टन के जहाज, हवाई वेड़े में ३००० आदमी और ६० विमान ।

क्षति पूर्ति––१९ सितम्बर १९४४ से ८ वर्षों में सोवियत संघ को ३० करोड़ डालर ।

जर्मनी (१९४५–५३)

जर्मनी के आत्मसमर्पण करने के वाद जर्मनी पर अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस और रूस का अधिकार माना गया । इससे जर्मनी को ४ टुकड़ों में विभाजित करना पड़ा । विभाजन के अनुसार अमरीका को १ करोड़ ५ लाख की आवादी का ५२५०० वर्ग मील क्षेत्र, ब्रिटेन को २ करोड़ ३० लाख की आवादी का ३६ हजार वर्ग मील क्षेत्र; फ्रांस को ६० लाख की आवादी का १६५००० वर्ग मील का क्षेत्र और रूस को १ करोड़ ८० लाख की जनसंख्या की ४५ हजार वर्ग मील भूमि प्राप्त हुई । राजधानी वर्लिन को चार राष्ट्रों के नेतृत्व में चार भागों में विभाजित कर दिया गया । निश्चय हुआ कि जर्मनी पर शासन सम्बन्धित देशों की सरकारों के आदेश पर ही होगा । चारों क्षेत्रों के सेनापतियों को मिलाकर एक नियंत्रण परिषद् (कंट्रोल काउंसिल)

देने पर अमरीकी सेनाओं ने टोकियो पर अधिकार जमा लिया और वहां अस्थायी सैनिक शासन की स्थापना कर दी। जनरल डगलस मैकार्थर वहां मित्र राष्ट्रों के सर्वोच्च सेनापति नियुक्त हुए। रूस ने दक्षिणी सखालिन और कुरिल द्वीपों पर अपना अधिकार जमाया। फारमोसा और मंचूरिया चीन को वापस कर दिये। कोरिया में रूस ने ३८ वीं समानान्तर रेखा के उत्तर और अमरीकी फौजों ने इस रेखा के दक्षिणी भाग पर कब्जा जमाया। दिसम्बर में सर्वोच्च सेनापति के अधीन जापान में मित्रराष्ट्रीय परिषद् की स्थापना की गई, जिस में ब्रिटेन, अमरीका, चीन और रूस के प्रतिनिधि रखे गये। मित्र-राष्ट्रीय परिषद की नीति और सलाह को कार्यान्वित करने के लिये फरवरी १९४६ में वाशिंगटन में ११ राज्यों के एक सुदूर पूर्वी कमीशन की स्थापना की गई। मित्रराष्ट्रीय परिषद ने जापान को निशस्त्र कर दिया और युद्ध अपराधियों के विरुद्ध मुकदमा चलाने की व्यवस्था की। जापान में सबसे बड़ी व्यापारी संस्था जेवासू को भंग कर दिया और जापान के लिये एक नया संविधान तैयार किया। नये संविधान में युद्ध की निन्दा की गई और एक उत्तरदायी संसदीय सरकार की स्थापना की गई। जापान संसद अर्थात् डायट में दो सभायें हैं एक कांसलरों की सभा और दूसरी प्रतिनिधि सभा अर्थात् लोक सभा। वयस्क मताधिकार के आधार पर इनका निर्वाचन क्रमशः ६ और ४ वर्षों के लिये होता है। संविधान में भाषण, प्रकाशन, निष्पक्ष अदालती जांच, अनिवार्य शिक्षा, तथा जाति व धार्मिक स्वतन्त्रता की व्यवस्था है। प्रथम चुनाव १० अप्रैल १९४६ में हुए और प्रधान मंत्री शिगेरू योशीदा ने चुनाव के एक मास बाद संयुक्त मन्त्रिमंडल की स्थापना की। किन्तु क्षतिपूर्ति और पुनर्शस्त्रीकरण के प्रश्न ने शांति संधि में देर कर दी। १२ मई १९४९ को क्षतिपूर्ति की मात्रा २५ प्रतिशत घटा दी गई। १३ अप्रैल १९५१ को जनरल मैकार्थर (कोरियाई युद्ध को रोकने के लिये कम्युनिस्ट चीन के विरुद्ध आक्रमणकारी कार्रवाई के लिये जिद्द

जाने वाले रास्तों को बंद कर दिया और इस तरह शीत युद्ध आरम्भ हो गया। पश्चिमी राष्ट्रों ने ९ महीनों तक बर्लिन की जरूरतों को विमान द्वारा भेज कर पूरा किया। १३ अप्रैल १९४९ को वाशिंगटन में तीन विदेश मंत्रियों (वेविन, शूमां तथा एचेसन) का एक सम्मेलन हुआ जिसके अनुसार तीनों देशों के जर्मन-क्षेत्रों को मिलाकर एक पश्चिमी जर्मन सरकार की स्थापना कर दी गई और उसकी राजधानी बोन रखी गई। इसके अतिरिक्त सैनिक शासन के स्थान पर नागरिक शासन कायम कर दिया गया। १२ मई १९४९ को रूस ने बर्लिन घेरे को उठा लिया। अमरीका ने जर्मनी की हालत आर्थिक दृष्टि से स्वस्थ बनाने के लिय मार्शल सहायता योजना के अंतर्गत उसे ५० करोड़ ९० लाख डालर की सहायता देनी स्वीकार की। २६ मई १९५२ को पश्चिमी राष्ट्रों ने जिन्होंने पहले ही क्षतिपूर्ति की मात्रा कम कर दी थी पश्चिमी जर्मनी में जहाज निर्माण कूटनीतिज्ञों की नियुक्तियां तथा संघीय गणतंत्री संविधान बनाने का अवसर प्रदान किया और अंत में वहां से विदेशी अधिकार हटा लिया। इस तरह सोवियत संघ के निरंतर विरोध से जर्मनी और आस्ट्रिया के साथ शांति संधियां अभी तक नहीं की जा सकी हैं।

१९५३ के जून में पूर्वी जर्मनी में व्यापक उपद्रवों के समाचार मिले। हजारों मजदूरों ने पूर्वी बर्लिन में प्रदर्शन कर स्वतन्त्र चुनाव की मांग की और 'साम्यवादी दल मुर्दावाद' के नारे लगाये। पश्चिमी राष्ट्रों का कहना है कि यह उपद्रव साम्यवादी निरंकुशता के विरुद्ध जनता के रोष के स्वाभाविक परिणाम थे। किन्तु रूसी अधिकारियों ने फौजी कानून घोषित कर दिया और सैकड़ों व्यक्ति गिरफ्तार कर लिये गये। उन्होंने अमरीकियों पर इन उपद्रवों को भड़काने का आरोप लगाया है।

जापानी शांति संधि

२ सितम्बर १९४५ को जापान द्वारा विना शर्त आत्मसमपण कर

राष्ट्रसंघ में रूसी-प्रतिनिधि ग्रोमिको ने संधि पर हस्ताक्षर करने वालों को सावधान किया कि यह कदम सुदूरपूर्व में एक और युद्ध को जन्म देगा। जापानी शांति संधि के रचयिता जान फोस्टर डलेस ने कहा—बड़े दुःख की बात है कि चीन जिसे जापान के आक्रमण से काफी क्षति उठानी पड़ी संधि में शामिल नहीं हुआ। आपने कहा कि यद्यपि इस संधि से लोग संतुष्ट नहीं, किन्तु यह एक अच्छी संधि है। इससे दूसरा युद्ध होने का कोई भय नहीं। वास्तव में यह एक शान्ति संधि है।

युद्ध समाप्त होने से अब तक की स्थिति का अध्ययन करने से पता चलता है कि १९४५ की विजय जो लाखों व्यक्तियों की जान के मूल्य पर प्राप्त की गई उसने शान्ति और सुसम्बन्ध की स्थापना के स्थान पर परस्पर घृणा और तनाव पैदा कर दिया। विश्व के अमरीकी और रूसी दो गुटों में बंट जाने तथा पश्चिम के पूंजीवादी जनतंत्र और पूर्व के सोवियत साम्यवाद के बीच भयंकर तनाव उत्पन्न हो जाने से शान्ति-स्थापना की समस्या गम्भीर हो गई है। वास्तव में शान्ति की स्थापना संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा ही सम्भव है।

करने के कारण) वापस बुला लिये गये और उनके स्थान पर ले० जनरल मैथू रिजवे सर्वोच्च सेनापति नियुक्त हुए। ११ महीने तक वार्ता के बाद जापानी शांति संधि पर विचार करने के लिये ५२ राष्ट्रों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन ४ सितम्बर १९५१ को सानफ्रांसिस्को में हुआ। ८ सितम्बर को, ४९ राष्ट्रों ने संधि पर अंतिम रूप से हस्ताक्षर किये। सोवियत संघ, पोलैंड और चेकोस्लोवाकिया ने हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया। भारत और बर्मा सम्मेलन में शामिल नहीं हुए। संधि में जापान ने संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य बनने की इच्छा प्रकट की।

संधि में निम्न बातें निर्दिष्ट थी: १. शांति---मित्रराष्ट्रों ने होंशू, होकैंडू, कियूशू, शिकोकू और कुछ छोटे द्वीपों की सार्वभौमिक सत्ता स्वीकार की। २. प्रदेश---ग्यूएलपार्ट, पोर्टहेमिल्टन, डेगलाट, दक्षिणी सखालिन, कुरिल द्वीपों, रियूकू बोनिन तथा वाल्केनों क्षेत्र, पार्सवेला तथा मारकस द्वीपों, स्प्राटली और पार्सल द्वीपों, मरियाना, करोलिन तथा मार्शल पर से जापानका अधिकार समाप्त कर दिया गया। ये क्षेत्र अमरीका और संयुक्तराष्ट्रसंघ की संरक्षक समिति के अधीन कर दिये गये। ३. सुरक्षा---तय हुआ कि जापान अपने अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को शान्तिपूर्ण तरीकों से निबटायेगा और संयुक्त राष्ट्रसंघ को हर तरह से सहयोग देगा। ४. आर्थिक---जापान को प्रत्येक देश से व्यापार करने का अधिकार दिया गया। ५. क्षतिपूर्ति---युद्ध से हुई क्षति के लिये जापान को मित्रराष्ट्रों को क्षतिपूर्ति देनी होगी। लेकिन चूंकि जापान के पास साधन पर्याप्त नहीं इसलिये जापान क्षतिपूर्ति की अदायगी इस प्रकार करेगा कि क्षतिपूर्ति पाने के अधिकारी राष्ट्रों से कच्चे माल लेकर उनसे आवश्यक माल तैयार कर सम्बन्धित देशों को वापस भेज देगा। अन्तर्राष्ट्रीय विवाद का निबटारा अन्तर्राष्ट्रीय अदालत द्वारा किया जायगा।

इस संधि की प्रतिक्रिया रूस में काफी तेजी से हुई। संयुक्त

राष्ट्रसंघ में रूसी प्रतिनिधि ग्रोमिको ने संधि पर हस्ताक्षर करने वालों को सावधान किया कि यह कदम सुदूरपूर्व में एक और युद्ध को जन्म देगा। जापानी शांति संधि के रचयिता जान फोस्टर डलेस ने कहा—बड़े दुःख की बात है कि चीन जिसे जापान के आक्रमण से काफी क्षति उठानी पड़ी संधि में शामिल नहीं हुआ। आपने कहा कि यद्यपि इस संधि से लोग संतुष्ट नहीं, किन्तु यह एक अच्छी संधि है। इससे दूसरा युद्ध होने का कोई भय नहीं। वास्तव में यह एक शान्ति संधि है।

युद्ध समाप्त होने से अब तक की स्थिति का अध्ययन करने से पता चलता है कि १९४५ की विजय जो लाखों व्यक्तियों की जान के मूल्य पर प्राप्त की गई उसने शान्ति और सुसम्बन्ध की स्थापना के स्थान पर परस्पर घृणा और तनाव पैदा कर दिया। विश्व के अमरीकी और रूसी दो गुटों में बंट जाने तथा पश्चिम के पूंजीवादी जनतंत्र और पूर्व के सोवियत साम्यवाद के बीच भयंकर तनाव उत्पन्न हो जाने से शान्ति-स्थापना की समस्या गम्भीर हो गई है। वास्तव में शान्ति की स्थापना संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा ही सम्भव है।

करने के कारण) वापस बुला लिये गये और उनके स्थान पर ले० जनरल मैथ्यू रिजवे सर्वोच्च सेनापति नियुक्त हुए। ११ महीने तक वार्ता के बाद जापानी शांति संधि पर विचार करने के लिये ५२ राष्ट्रों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन ४ सितम्बर १९५१ को सानफ्रांसिस्को में हुआ। ८ सितम्बर को, ४९ राष्ट्रों ने संधि पर अंतिम रूप से हस्ताक्षर किये। सोवियत संघ, पोलैंड और चेकोस्लोवाकिया ने हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया। भारत और बर्मा सम्मेलन में शामिल नही हुए। संधि में जापान ने संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य बनने की इच्छा प्रकट की।

संधि में निम्न बातें निर्दिष्ट थी: १. शांति--मित्रराष्ट्रों ने होंशू, होकैडू, कियशू, शिकोकू और कुछ छोटे द्वीपों की सार्वभौमिक सत्ता स्वीकार की। २. प्रदेश--ग्यूएलपार्ट, पोर्टहेमिल्टन, डेगलाट, दक्षिणी सखालिन, कुरिल द्वीपों, रियूकू बोनिन तथा बाल्केनों क्षेत्र, पार्सवेला तथा मारकस द्वीपों, स्प्राटली और पार्सल द्वीपों, मरियाना, करोलिन तथा मार्शल पर से जापानका अधिकार समाप्त कर दिया गया। ये क्षेत्र अमरीका और संयुक्तराष्ट्रसंघ की संरक्षक समिति के अधीन कर दिये गये। ३. सुरक्षा—तय हुआ कि जापान अपने अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को शान्तिपूर्ण तरीकों से निबटायेगा और संयुक्त राष्ट्रसंघ को हर तरह से सहयोग देगा। ४. आर्थिक—जापान को प्रत्यक देश से व्यापार करने का अधिकार दिया गया। ५. क्षतिपूर्ति—युद्ध से हुई क्षति के लिये जापान को मित्रराष्ट्रों को क्षतिपूर्ति देनी होगी। लेकिन चूंकि जापान के पास साधन पर्याप्त नहीं इसलिये जापान क्षतिपूर्ति की अदायगी इस प्रकार करेगा कि क्षतिपूर्ति पाने के अधिकारी राष्ट्रों में कच्चे माल लेकर उनसे आवश्यक माल तैयार कर सम्बन्धित देशों को वापस भेज देगा। अन्तर्राष्ट्रीय विवाद का निबटारा अन्तर्राष्ट्रीय अदालत द्वारा किया जायगा।

इस संधि की प्रतिक्रिया रूस में काफी तेजी से हुई। संयुक्त

स्तर तक तथा इस ढंग से निशस्त्रीकरण किया जाय कि संसार में कहीं भी कोई राष्ट्र इस अवस्था में न रह जाय कि दूसरे पड़ौसी राष्ट्र पर शारीरिक अत्याचार कर सके। १२ जून १९४१ को १४ देशों के प्रतिनिधि जिसम यूरोप के ९ निर्वासित देश भी सम्मिलित थे, लन्दन में मिले और वलपूर्वक घोषणा की कि शान्ति स्थापना का एक मात्र सत्य आधार विश्व के स्वतन्त्र व्यक्तियों का इच्छा प्रेरित सहयोग है जिससे अत्याचार के भय से मुक्त होकर सभी आर्थिक तथा सामाजिक सुरक्षा का आनन्द उठा सकेंगे।

जन्म तथा विकास

"संयुक्त राष्ट्रसंघ" नाम फ्रकलिन डिलेन रूजवेल्ट द्वारा प्रस्तावित किया गया था। इसका पहला प्रयोग संयुक्त राष्ट्र द्वारा की गई घोषणा में हुआ था और बाद में अमरीका के स्व० राष्ट्रपति को श्रद्धांजलिस्वरूप नये अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की संज्ञा के रूप में किया गया था।

लन्दन घोषणा के तीन माह पश्चात अमरीकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट तथा ब्रिटेन के प्रधान मंत्री चर्चिल के नाटकीय सम्मेलन के परिणामस्वरूप विश्व संगठन के रूप में नया कदम उठा। उनका मिलन अगस्त १९४१ में प्रशान्त सागर में कहीं एक जहाज पर हुआ और एक संयुक्त घोषणा की गई जो एतिहासिक प्रशान्त आदेश पत्र (चार्टर) नाम से विख्यात है।

प्रशान्त आदेश पत्र

यह केवल उनके देशों की राष्ट्रीय नीति के विशिष्ट समान सिद्धांतों जिन पर उन्होंने विश्व के स्वर्णिम भविष्य के लिये अपनी आशायें प्रकट की थीं द्वारा स्वीकृत थी। आदेशपत्र में ८ निम्नलिखित सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया था:—

(१) हम साम्राज्य विस्तार अथवा किसी नये प्रदेश पर अधिकार

व्याख्यान ६

संयुक्त राष्ट्रसंघ

विषय प्रवेश——द्वितीय विश्व युद्ध के अनुभव, विश्व के आर्थिक मामलों को अनिवार्य रूप से एक प्रणाली में एकरूपता, श्रम अवस्थाओं के समीकरण की वलवती आवश्यकता, जीवन के न्यूनतम स्तर और मानव अस्तित्व के भय ने एक नवीन अन्तर्राष्ट्रीय विभाग को जन्म दिया तथा विश्व संगठन की नींव डाली। विज्ञान की नई शक्तियों उदाहरणतः मशीनगन तथा अणुवमों से लड़े गये युद्धों से हुए विनाश तथा महानाशों ने मानव जीवन की अनित्यता को वदल दिया और शान्ति स्थापना के लिये विश्व मैत्रित्व की भावना को जन्म दिया। अतः उस प्रलय को, जिसका अनुभव मनुष्यों ने अव किया है, रोकने के लिये विश्व के राष्ट्र विशेषकर अमरीका, ब्रिटेन तथा रूस ने विश्व न्याय तथा मैत्रीपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के लिये एक स्थायी विश्व संगठन की स्थापना के निमित्त सजग तथा सामूहिक प्रयास आरम्भ किये। ६ जनवरी १९४१ को जब कि सम्पूर्ण यूरोप धूरी पर गिर चुका था राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने चार आवश्यक स्वाधीनताओं की घोषणा की——

(१) भाषण व अपने अन्य विचारों को प्रगट करने की स्वतन्त्रता। (२) ईश्वर की पूजा व उपासना करने की स्वतन्त्रता। (३) आर्थिक अभाव व कमी से स्वतन्त्रता तथा (४) भय से स्वतन्त्रता जिसका विश्व की भाषा में अनुदित अर्थ होता है कि विश्व भर में इस

समानता के सिद्धान्त पर आधारित हो और जिसकी सदस्यता बड़े छोटे सभी राष्ट्रों के लिए खुली हो । चार राष्ट्रों की उक्त घोषणा के दो महीने के बाद चर्चिल, रूजवेल्ट और स्टालिन प्रथम बार ईरान की राजधानी तेहरान में मिले । इन तीनों नेताओं ने घोषणा की कि हमें पूर्ण विश्वास है कि हमारा यह प्रयास स्थायी शान्ति की स्थापना में सफल सिद्ध होगा । उन्होंने कहा–हम स्वीकार करते हैं कि शान्ति स्थापना का उत्तरदायित्व तमाम संयुक्त राष्ट्रों और हम पर निर्भर करता है जिसका उद्देश्य विश्व में सद्भावना क़ायम करना और संसार से युद्ध के भय और भावना को सदा के लिए अन्त कर देना है ।

आर्थिक और सामाजिक समस्याओं सम्बन्धी सम्मेलन

आम अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की स्थापना के पूर्व सामाजिक और आर्थिक समस्याओं पर विचार करने के लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ के कई सम्मेलन हुए । प्रथम सम्मेलन मई-जून १९४३ में वर्जिनिया (हाट-स्प्रिंग) में हुआ जिसमें खाद्य और कृषि सम्बन्धी एक अन्तरीम आयोग की स्थापना की गई, जो एफ. ए. ओ. के नाम से पुकारा गया । अक्तूबर १९४२ में लंदन में हुए मित्रराष्ट्रों के शिक्षा मंत्रियों के सम्मेलन में एक संयुक्त राष्ट्रसंघ शैक्षिक तथा सांस्कृतिक संस्था (यूनेस्को) की स्थापना के लिए योजनाएँ बनाई गई । इसी बीच ९ नवम्बर १९४३ को वाशिंगटन में ४४ राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने एक समझौते द्वारा संयुक्त राष्ट्रसंघ सहायता तथा पुनर्वास प्रशासन संस्था की स्थापना की । दूसरे ही दिन उक्त संस्था की बैठक न्यूजर्सी में हुई । जुलाई १९४४ में न्यूहेम्पशायर में संयुक्त राष्ट्रसंघ मुद्रा तथा आर्थिक सम्मेलन हुआ जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और पुनर्निर्माण तथा विकास के अंतर्राष्ट्रीय बैंक समझौता के लिए धारायें तैयार की गई । निश्चय हुआ कि बैंक में जमा ९ अरब १० करोड़ डालर के कोष से लम्बी अवधि के लिए ऋण उचित सूद पर दिया जा सकता है । अन्तर्राष्ट्रीय

करना नहीं चाहते हैं। (२) हम बिना जनता की अनुमति से किसी राष्ट्र की सीमा में परिवर्तन नहीं करना चाहते। (३) जनमत से ही प्रत्येक राष्ट्र का शासन चलेगा (४) प्रत्येक राष्ट्र को व्यापार की पूर्ण स्वतन्त्रता मिलनी चाहिये और कृत्रिम बाधा का अवसान होना चाहिए। (५) सब राष्ट्रों में पारस्परिक आर्थिक सहयोग रहना चाहिए। (६) नाजीवाद के विनाश के बाद प्रत्येक पराजित राज्य पुनः प्रतिष्ठित होगा और उसको पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त होगी। (७) सब राष्ट्रों के लिए समुद्र का पथ खुला रहेगा। (८) अस्त्र शस्त्रों व युद्ध सामग्री में कमी होनी चाहिए और अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के लिये प्रत्येक राज्य को प्रयत्न करना चाहिए।

२४ सितम्बर को इस आदेश पत्र पर सोवियत रूस तथा यूरोप के उस अधिकृत देशों बेल्जियम, चेकोस्लोवाकिया, यूनान, नीदरलैंड्स, नार्वे, पोलैंड, युगोस्लाविया तथा फ्रांस ने भी हस्ताक्षर किये।

संयुक्त राष्ट्रसघ और मास्को घोषणा

१ जनवरी १९४२ को प्रेसिडेन्ट रूजवेल्ट, विंस्टन चर्चिल, लिटविनो (रूस) तथा टी. वी. सुंग (चीन) ने संयुक्त राष्ट्रसंघ घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर किए और दूसरे दिन २२ अन्य राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने भी हस्ताक्षर किए। भारत सरकार की ओर से घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर उस समय अमरीका में भारतीय राजदूत सर गिरिजाशंकर बाजपेयी ने किए। हस्ताक्षरकर्ताओं ने शपथ ग्रहण की कि वे पृथक संधि न करेंगे।

३० अक्तूबर १९४३ को अमरीका, ब्रिटेन, रूस और चीन के विदेश मंत्रियों का एक सम्मेलन मास्को में हुआ। सम्मेलन में अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की स्थापना के लिए एक ऐसी अंतर्राष्ट्रीय संस्था की स्थापना पर जोर दिया जो शान्तिप्रिय देशों की सार्वभौमिक

सान फ्रांसिस्को सम्मेलन

२५ अप्रैल १९४५ को ५० राष्ट्रों के ८५० प्रतिनिधि गोल्डेन गेट नगर में एकत्रित हुए। ये प्रतिनिधि विश्व की आबादी का ८० प्रतिशत से भी अधिक जनता का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। प्रतिनिधियों ने सचिवालय के ३५०० योग्य अधिकारियों के सहयोग से चार्टर तैयार करने का कार्य आरम्भ किया। इस सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व सर रामास्वामी मुदालियर, सर फिरोजखां नून तथा सर बी. टी. कृष्णमाचारी ने किया। इस सम्बन्ध में विभिन्न आयोगों और समितियों की ४०० बैठकें हुईं और कई बार ऐसा संकट पैदा हुआ कि ऐसा लगा कि सम्मेलन भंग हो जायेगा। किन्तु आखिर चार्टर स्वीकार कर लिया गया और २६ जून को वेटरन मेमोरियल हाल में ५० राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने उस पर हस्ताक्षर कर दिये। प्रेसिडेन्ट ट्रूमैन ने सम्मेलन के अन्तिम अधिवेशन में भाषण देते हुए कहा: "संयुक्त राष्ट्रसंघ का चार्टर जिस पर आपने अभी हस्ताक्षर किये हैं वह एक ऐसी मजबूत बुनियाद है जिस पर हम एक सुन्दर विश्व का निर्माण कर सकते हैं। इसके लिए इतिहास आपका सम्मान करेगा।" आपने कहा चार्टर की सफलता विश्व की जनता पर निर्भर है। यदि हमने इस चार्टर का पालन न किया तो हम विश्व की उस विशाल जनता के गद्दार समझे जायेंगे जिन्होंने शांति स्थापना के लिए हमें यहां भेजा है। इसके साथ ही यदि हमने चार्टर को अपनी स्वार्थ भावना को पूरी करने में प्रयोग किया तो हम उतने ही गद्दार और धोखेबाज समझे जायेंगे। इस तरह सान फ्रांसिस्को सम्मेलन समाप्त हो गया। इसके आयोजन में अमरीकी सरकार को २० लाख डालर का खर्च उठाना पड़ा। कहा जाता है कि ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय सभा पहले कभी भी नहीं हुई थी।

२४ अक्तूबर १९४५ को हस्ताक्षरकर्ता देशों द्वारा चार्टर की

सिविल अमरीकी सम्मेलन नवम्बर दिसम्बर १९४४ में शिकागो में हुआ ।

डम्वार्टन ओक और याल्टा

७ अक्तूबर १९४४ को चीन, ब्रिटेन, रूस तथा अमरीका के प्रतिनिधियों की एक बैठक डम्बार्टन ओक में हुई जिसमें विश्व संस्था के लिए एक प्रस्ताव तयार किया गया। इस योजना के अनुसार चार संस्थाओं—सभी सदस्यों की महासमिति (जनरल असेम्बली), ११ सदस्यों की सुरक्षा परिषद, आर्थिक और सामाजिक परिषद और एक अन्तर्राष्ट्रीय अदालत को मिला कर संयक्त राष्ट्रसंघ संस्था की स्थापना की जाय। सदस्य राष्ट्र युद्ध को रोकने तथा आक्रमणकारी कार्रवाइयों को दबाने के लिए सुरक्षा परिषद को सैनिक सहायता देंगे। कहा गया कि राष्ट्रसंघ के पास सैनिक ताकत न रहने के कारण ही वह असफल रहा। इसलि संयुक्त राष्ट्रसंघ की सफलता के लिए सुरक्षा परिषद जैसी संस्था जरूरी समझी गई। यह योजना आवश्यक अध्ययन और विचार के लिए सभी सदस्य मित्रदेशों को भेज दी गई।

डम्बार्टन ओक के प्रस्तावों में एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात भूल से छूट गई और वह थी सुरक्षा परिषद मतदान की प्रणाली। ११ फरवरी १९४५ को क्रिमिया (याल्टा) मे चर्चिल, रूजवेल्ट और स्टालिन मतदान प्रणाली पर विचार करने के लिए मिले। बैठक में उक्त प्रश्न हल कर लिया गया और २५ अप्रैल १९४५ को सान फ्रांसिस्को में संयुक्त राष्ट्रसंघ का एक सम्मेलन बुलाया गया। इसका उद्देश्य डम्बार्टन ओक योजना के आधार पर प्रस्तावित अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का चार्टर तैयार करना था। अप्रैल में प्रेसिडेंट रूजवेल्ट का अकस्मात देहांत हो गया और उनके स्थान पर उपराष्ट्रपति ट्रूमैन प्रेसिडेंट नियुक्त हुए।

भी देश की स्वतन्त्रता पर आक्रमण नहीं कर सकता। (५) कोई भी देश किसी देश को, जो चार्टर के विरुद्ध काम करेगा, सहायता नहीं देगा। (६) संयुक्त राष्ट्रसंघ को इस बात को देखना होगा कि वे देश जो संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्य नहीं वे विश्व में शांति और सुरक्षा के सहयोग में बाधा तो नहीं डालते, (७) संयुक्त राष्ट्र-संघ किसी भी देश के घरेलू अर्थात् आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा।

सदस्यता—सान फ्रांसिस्को सम्मेलन में भाग लेने वाले तमाम देश संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्य माने गये। संयुक्त राष्ट्रसंघ घोषणा पत्र का हस्ताक्षरकर्ता पोलैंड उक्त सम्मेलन में सम्मलित नहीं हो सका था क्योंकि उस समय उसकी सरकार को संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्यों की मान्यता प्राप्त नहीं हो सकी थी। इसीलिये चार्टर में उसके लिये एक स्थान सुरक्षित कर दिया गया था जो १५ अक्तूबर १९४५ को हस्ताक्षर कर उसने प्राप्त कर लिया। इस तरह संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रारम्भिक सदस्यों की संख्या ५१ थी। चार्टर की धारा ४ के अनुसार कोई भी शांतिप्रिय राज्य जो चार्टर के सिद्धान्तों पर चलने को तैयार हो संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य बन सकता था। नये सदस्य सुरक्षा परिषद की सिफारश पर ही बनाये जा सकते थे। इसके लिये जनरल असेम्बली (महासमिति) के दो तिहाई सदस्यों का समर्थन प्राप्त करना जरूरी होता था। १९४६–४९ में आंग्ल-अमरीकी गुट ने अल्बानिया, बल्गेरिया, हंगरी, मंगोलिया और रूमानिया को संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य बनाने का विरोध किया और सोवियत संघ ने आस्ट्रिया, आयरलैंड, फिनलैंड, इटली, पुर्तगाल तथा ट्रांसजोर्डन के सदस्यता के आवेदन पत्र को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। इसी बीच १९४६ में अफगानिस्तान, आइसलैंड, स्वीडन तथा थाइलैंड, १९४७ में पाकिस्तान और यमन, १९४८ में बर्मा, १९४९ में इज-राइल और १९५० में हिन्देशिया संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्य स्वीकार

सम्पुष्टि किए जाने के वाद संयुक्त राष्ट्रसंघ ने कार्य आरम्भ कर दिया। चार वर्ष तक अथक परिश्रम के वाद युद्ध को रोकने, शांति और न्याय की स्थापना के लिये अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की स्थापना का प्रयास सफल रहा। १० जनवरी १९४६ को संयुक्त राष्ट्रसंघ की जनरल असेम्वली की प्रथम वैठक राष्ट्रसंघ की २६ वीं वर्षगांठ पर, लन्दन के वेस्ट मिनिस्टर हाल में हुई।

संयुक्त राष्ट्रसंघ चार्टर

उद्देश्य—चार्टर के अनुसार संयुक्त राष्ट्रसंघ के निम्न चार उद्देश्य थे: (१) अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की स्थापना, शांति का उल्लंघन कर आक्रमण करने वालों के खिलाफ कार्रवाई करना, किसी भी ऐसी कार्रवाई को रोकना जो शांति के लिये खतरनाक हो, अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को न्याय के आधार पर शांतिपूर्ण तरीके से सुलझाना (२) सामान अधिकार और आत्मनिर्णय के सिद्धान्त के आधार पर राष्ट्रों के बीच मैत्री सम्बन्ध स्थापित करना तथा विश्व शांति को मजबूत बनाने के लिये आवश्यक कार्रवाई करना, (३) अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और अन्य मानवीय समस्याओं को सुलझाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को प्रोत्साहित करना और मानवीय अधिकारों तथा आधारभूत स्वतन्त्रता का सम्मान करना।

सिद्धान्त—चार्टर की धारा २ में उन मौलिक सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है जिन पर संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना की गई है। वे हैं: (१) संयुक्त राष्ट्रसंघ इसके सारे सदस्यों के सार्वभौमिक समानता पर आधारित है। (२) प्रत्येक सदस्य चार्टर के प्रति अपने उत्तरदायित्व को निभायेगा। (३) सभी राष्ट्रों को अपने अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को शांतिपूर्ण तरीके से सुलझाना होगा जिससे शांति और सुरक्षा को खतरा न पहुँचे। (४) कोई भी राष्ट्र किसी

भी देश की स्वतन्त्रता पर आक्रमण नहीं कर सकता। (५) कोई भी देश किसी देश को, जो चार्टर के विरुद्ध काम करेगा, सहायता नहीं देगा। (६) संयुक्त राष्ट्रसंघ को इस बात को देखना होगा कि वे देश जो संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्य नहीं वे विश्व में शांति और सुरक्षा के सहयोग में बाधा तो नहीं डालते, (७) संयुक्त राष्ट्र-संघ किसी भी देश के घरेलू अर्थात् आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा।

सदस्यता—सान फ्रांसिस्को सम्मेलन में भाग लेने वाले तमाम देश संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्य माने गये। संयुक्त राष्ट्रसंघ घोषणा पत्र का हस्ताक्षरकर्ता पोलैंड उक्त सम्मेलन में सम्मलित नहीं हो सका था क्योंकि उस समय उसकी सरकार को संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्यों की मान्यता प्राप्त नहीं हो सकी थी। इसीलिये चार्टर में उसके लिये एक स्थान सुरक्षित कर दिया गया था जो १५ अक्तूबर १९४५ को हस्ताक्षर कर उसने प्राप्त कर लिया। इस तरह संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रारम्भिक सदस्यों की संख्या ५१ थी। चार्टर की धारा ४ के अनुसार कोई भी शांतिप्रिय राज्य जो चार्टर के सिद्धान्तों पर चलने को तैयार हो संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य बन सकता था। नये सदस्य सुरक्षा परिषद की सिफारश पर ही बनाये जा सकते थे। इसके लिये जनरल असेम्बली (महासमिति) के दो तिहाई सदस्यों का समर्थन प्राप्त करना जरूरी होता था। १९४६–४९ में आंग्ल-अमरीकी गुट ने अल्बानिया, बल्गेरिया, हंगरी, मंगोलिया और रूमानिया को संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य बनाने का विरोध किया और सोवियत संघ ने आस्ट्रिया, आयरलैंड, फिनलैंड, इटली, पुर्तगाल तथा ट्रांसजोर्डन के सदस्यता के आवेदन पत्र को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। इसी बीच १९४६ में अफगानिस्तान, आइसलैंड, स्वीडन तथा थाइलैंड, १९४७ में पाकिस्तान और यमन, १९४८ में बर्मा, १९४९ में इज-राइल और १९५० में हिन्देशिया संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्य स्वीकार

कर लिये गये। इस तरह कुल सदस्य राज्यों की संख्या ६० हो गई।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के वर्तमान सदस्य राज्यों की संख्या निम्न ६० है— अफगानिस्तान, अर्जेंटाइना, आस्ट्रेलिया, बेल्जियम, बोलीविया ब्राजिल, बर्मा, बेलोरसियन, कनाडा, चीली, चीन, कोलम्बिया, कोस्टारिका, क्यूबा, चेकोस्लोवाकिया, डेनमार्क, डोमीनियन रिपब्लिक इक्वेडर, मिस्र, सालवेडर, इथोपिया, फ्रांस, यूनान, ग्वाटेमाला, हेटी, होंड्राज, आइसलैंड, भारत, हिन्देशिया, ईरान, इराक, इजराइल, लेबनान, साइबेरिया, लक्जेमबर्ग, मेक्सिको, नीदरलैंड, न्यूजीलैंड, निकार्गोआ, नार्वे, पाकिस्तान, पनामा, प्रागवे, पीरू, फिलिपीन, पोलैंड, यहूदी अरब, स्वीडन, सीरिया, थाइलैंड (तमाम), तुर्की, यूक्रानिया, दक्षिणी अफ्रीका, रूस, ब्रिटन, अमरीका, उरुगवे, वेनेज्यूला, यमन और युगोस्लाविया। चार्टर में संयुक्त राष्ट्रसंघ से पृथक होने की कोई व्यवस्था नहीं की गई है किन्तु वह राज्य जिसके विरुद्ध सुरक्षा परिषद कार्रवाई कर रही हो, सदस्यता की सुविधाओं से वंचित रखा जा सकता है। यदि कोई सदस्य चार्टर के सिद्धान्तों का उल्लंघन करता पाया गया तो सुरक्षा परिषद की सिफारिश पर सदस्यता से वंचित किया जा सकता है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के अङ्ग

संयुक्त राष्ट्र संघ का कार्य निम्न संस्थाओं के बल पर निर्भर है: महासभा (जनरल असेम्बली), सुरक्षा परिषद, आर्थिक तथा सामाजिक परिषद, संरक्षक परिषद, अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय और सचिवालय। संयुक्त राष्ट्रसंघ के अस्थायी प्रधान कार्यालय पहले लेकसक्सेस तथा फ्लशिंग मेडो में थे। बाद में १४ अक्तूबर १९५२ को न्यूयार्क की ४२वीं गली में ६.५ करोड़ डालर की लागत से तयार विशाल भवन में संघ का स्थायी कार्यालय लाया गया तभी से वह वहीं है। संयुक्त राष्ट्रसंघ की सरकारी भाषायें : चीनी, अंग्रेजी, फ्रांसीसी,

रूसी तथा स्पेनिश हैं। इसका काम अधिकतर अंग्रेजी और फ्रांसीसी भाषा में होता है।

महासभा (जनरल असेम्बली)

महासभा में जो संयुक्त राष्ट्रसंघ की धूरी है तमाम सदस्य राष्ट्रों के प्रतिनिधि होते हैं। एक सदस्य को एक मत का अधिकार होता है। महासभा की बैठक प्रतिवर्ष २ सितम्बर के बाद होती है जिसका एक ही अधिवेशन होता है। संयुक्त राष्ट्र संघ की बहुमत की मांग पर विशेष अधिवेशन बुलाया जा सकता है। महामंत्री को १५ दिन के नोटिस पर अधिवेशन बुलाने का अधिकार है। प्रत्येक सदस्य को महासभा की विषय सूची पर कोई भी विषय विचारार्थ रखने का अधिकार है किन्तु वह विषय घरेलू अर्थात् देश के आंतरिक मामलों से सम्बन्धित नहीं होना चाहिये। विषय चार्टर के अनुसार होना चाहिये।

महासभा के कार्य निम्न प्रकार हैं। (१) शांति और सुरक्षा की स्थापना के लिये अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के सिद्धान्तों पर विचार करना और उस पर अपनी सिफारिशें देना। इसके अतिरिक्त निशस्त्रीकरण तथा शस्त्रीकरण के सिद्धान्तों पर शांति व सुरक्षा का ध्यान रखते हुए विचार करना तथा अपनी सिफारिशें देना। (२) किसी भी समस्या पर जो शांति और सुरक्षा के लिये घातक है, विचार करना और सिफारिशें देना। (४) अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक सहयोग को प्रोत्साहित करने, अन्तर्राष्ट्रीय कानून के विकास, मानव अधिकारों तथा मौलिक स्वतंत्रता; आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक तथा स्वास्थ्य क्षेत्रों में अन्तर्राष्ट्रीय सुसम्बन्ध कायम करने पर विचार और उन पर आवश्यक सिफारिशें देना। (५) सुरक्षा परिषद तथा संयुक्त राष्ट्रसंघ के अन्य विभागों से रिपोर्टें प्राप्त करना और उन पर विचार करना। (६) राष्ट्रों के परस्पर सम्बन्धों पर प्रभाव

टालने वाली किसी भी स्थिति को शांतिपूर्ण ढंग से सुलझाने के लिये सिफारिशें देना। संरक्षक समझौतों को संरक्षक परिषद द्वारा निरीक्षण और क्रियान्वित कराना (८) सुरक्षा परिषद के लिये ६ अस्थायी सदस्य, आर्थिक तथा सामाजिक परिषद के किये १८ सदस्य तथा अन्तर्राष्ट्रीय अदालत के लिय १५ जजों को चुनना और सुरक्षा परिषद की सिफारिश पर महामंत्री नियुक्त करना। (९) संयुक्त राष्ट्रसंघ के बजट पर विचार करना तथा उस पर अपना निर्णय देना।

महासभा में मतदान की प्रणाली इस सिद्धान्त पर आधारित है कि महत्वपूर्ण प्रश्नों पर निर्णय उपस्थित सदस्यों में से दो तिहाई के मत से किये जा सकते हैं। धारा १८ के अनुसार महत्त्वपूर्ण प्रश्न निम्न प्रकार के माने गये हैं: (१) अन्तर्राष्ट्रीय शांति की सुरक्षा सम्बन्धी सिफारिशें (२) सुरक्षा परिषद के अस्थायी सदस्यों का चुनाव (३) आर्थिक तथा सामाजिक परिषद के सदस्यों का चुनाव (४) संरक्षक परिषद के सदस्यों का चुनाव (५) संयुक्त राष्ट्रसंघ के नये सदस्य बनाना (६) सदस्यों के अधिकारों और सुविधाओं का स्थगन (७) संरक्षक व्यवस्था को क्रियान्वित करने सम्बन्धी प्रश्न (८) बजट सम्बन्धी प्रश्न। अन्य प्रश्नों का निर्णय उपस्थित साधारण बहुमत द्वारा ही दिया जाता है। उस सदस्य राष्ट्र को जिसने कि संयुक्त राष्ट्रसंघ को अपना पूरा चंदा नहीं दिया है, मत देने का अधिकार नहीं होता। महासभा प्रत्येक अधिवेशन के लिये अध्यक्ष चुनती है। उसे जरूरत पड़ने पर और संस्थाएं स्थापित करने का भी अधिकार है।

औररिकार्डर चुनती है। सदस्यों का चुनाव योग्यता और अनुभव के अतिरिक्त समान भौगोलिक वितरण के आधार पर होता है। महासभा समय समय पर तदर्थ (एडहाक) समितियों और आयोगों की स्थापना करती है जैसे कि १९ अक्तूबर १९४७ में यूनान, अल्बानिया, बल्गेरिया तथा युगोस्लाविया के विवादों का निबटारा करने के लिये उसने सद्भावना समिति की स्थापना की। इसने कोरिया में संयुक्त राष्ट्र आयोग (कमीशन) की भी स्थापना की है। महासभा के दूसरे तीसरे तथा चौथे अधिवेशनों में सभी सदस्यों को मिलाकर अनिश्चित काल के लिये आंतरिक समिति की स्थापना की गई जिसका काम उन प्रश्नों पर विचार करना था जिनका शांति और सुरक्षा पर प्रभाव पड़ने का खतरा हो। इस सभा का नाम छोटी सभा है। संयुक्त राष्ट्र-संघ का १९५३ के बजट का अनुमान ४७७६५२०० डालर है जो पिछले वर्ष (१९५२) से ३३१,८५० डालर कम है। बजट उस चंदे से पूरा किया जायेगा जो सदस्य राष्ट्रों के चंदे से प्राप्त होगा। कुल खर्च में से अमरीका ३६·९ प्रतिशत, ब्रिटेन ११·५, प्रतिशत, सोवियत संघ १२·२८ प्रतिशत, फ्रांस और चीन प्रत्येक ५–५ प्रतिशत और भारत ३ प्रतिशत व्यय बर्दाश्त करेगा।

महासभा का प्रथम अधिवेशन १० जनवरी १९४६ को लंदन में आरम्भ हुआ। १४ अक्तूबर १९५२ को महासभा का ७वां अधिवेशन न्यूयार्क में नये भवन में आरम्भ हुआ। इस समय कनाडा के विदेश मंत्री श्री पियर्सन महासभा के अध्यक्ष चुने गये हैं। संयुक्त राष्ट्रसंघ में भारत के प्रतिनिधि मंडल के सदस्य ये हैं: श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित (नेतृ), श्री वी.के कृष्णमेनन, श्री वी० शिवराव (संसद के सदस्य) नवाब अली यारजंग (अर्जेन्टाइना स्थित भारतीय राजदूत), तथा इलाहाबाद हाईकोर्ट के एडवोकेट श्री गिरिजा शंकर पाठक। श्री राजेश्वर दयाल संयुक्त राष्ट्रसंघ में भारत के स्थायी प्रतिनिधि हैं।

---

१ एक डालर ५ रु० के बराबर होता है

संयुक्त राष्ट्रसंघ का संगठन
अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय
साधारण-सभा
सुरक्षा-परिषद
आर्थिक सामाजिक परिषद
सचिवालय
न्यासरक्षा-समिति
विशेष संस्थाएँ

सुरक्षा परिषद्

सुरक्षा परिषद में ११ सदस्य हैं। इनमें से पांच स्थायी और ६ अस्थायी सदस्य हैं। चीन, फ्रांस, ब्रिटेन, रूस तथा अमरीका स्थायी सदस्य हैं। परिषद के अस्थायी सदस्य हैं, चीली, यूनान, पाकिस्तान (यह तीन १९५३ पर्यन्त), और कोलोम्बिया, लेबनान, डेनमार्क (१९५४ पर्यन्त)। शांतिस्थापना सम्बन्धी योग्यता और अनुभव तथा समान भौगोलिक वितरण के आधार पर संयुक्त राष्ट्रीय महासभा दो वर्ष के लिये अस्थायी सदस्यों को चुना करती है। कोई सदस्य अविलम्ब पुन: निर्वाचन के लिये योग्य नहीं होते। परिषद की सदस्य संख्या निर्दिष्ट होने से छोटे छोटे सदस्य राज्य इसकी संख्या की वृद्धि के लिये गुटबन्दी नहीं कर सकते जैसे कि पुरातन राष्ट्रसंघ की परिषद् में हुआ करता था। परन्तु भविष्य में यदि कोई महान शक्ति का उत्थान हो तो चार्टर के संशोधन के विना उसको भी परिषद में स्थायी स्थान मिलना असम्भव है। प्रत्येक सदस्य राज्य का केवल एक ही प्रतिनिधि परिषद् में उपस्थित हो सकता है।

कार्यक्रम—सुरक्षा परिषद अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा के लिये उत्तरदायी है। राष्ट्रसंघ के उद्देश्य के अनुसार शान्ति स्थापना के लिये अविलम्ब कार्रवाई जरूरी है। इसलिये धारा २१ के अनुसार सुरक्षा परिषद की बैठक महीने में दो वार होती है। अपनी सुविधा के अनुसार परिषद की बैठक कहीं भी की जा सकती है। आजकल परिषद की बैठक न्यूयार्क में होती है। परिषद का प्रत्येक सदस्य एक मत देने का अधिकारी होता है। केवल कार्यक्रम सम्बन्धी मामलों पर किन्हीं सात सदस्यों की अंगीकार सूचक वोट से निर्णय किया जाता है। अन्य सभी मामलों (गुरुत्वपूर्ण) में (स्वतंत्र या पृथक मतदान) सात सदस्यों की अंगीकार सूचक वोट जिनमें पांच स्थायी प्रमुख सदस्यों की सहमति हो किसी भी निर्णय के लिये आवश्यक है।

इन पांच स्थायी सदस्यों में से यदि एक भी असहमत हो और अपने वोटों के अधिकार का उपयोग कर उस निर्णय को रद्द करे तो उसे निषेधाधिकार वोट (वीटो) कहते हैं। अन्य शब्दों में, इन पांच प्रमुख सदस्यों का महत्वपूर्ण निर्णय में सहमत होना अनिवार्य है। यह स्मरण रखना चाहिये कि किसी भी बैठक में किसी स्थायी सदस्य की अनुपस्थिति अथवा वोट नहीं देने से उसे निषेधाधिकार वोट नहीं कह सकते हैं। यदि परिषद का कोई भी सदस्य स्थायी अथवा अस्थायी किसी झगड़े में संलिप्त हो तो वह मतदान से वंचित होता है (धारा २७)।

सुरक्षा परिषद में केवल उसके सदस्य ही वोट दे सकते हैं। परन्तु जो राज्य सुरक्षा परिषद का सदस्य नहीं है और वह राज्य भी जो संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य नहीं है, परिषद के विशेष आमंत्रण से कार्यक्रम में भाग ले सकता है किन्तु उसका मताधिकार नहीं होता। विशेष आमंत्रण दो आधार पर हो सकता है। प्रथम यदि परिषद की दृष्टि में कोई विचाराधीन समस्या के निर्णय में किसी सदस्य राज्य के स्वार्थ की हानि हो तो वह उस राज्य को उसमें भाग लेने के लिये अनुरोध कर सकता है (धारा ३८)। द्वितीय यदि कोई संयुक्त राष्ट्रीय सदस्य या गैर सदस्य सुरक्षा परिषद के विचाराधीन प्रश्न में एक दल है तो उसे बहस में बिना मताधिकार के भाग लेने के लिये अवश्य बुलाना चाहिये। सुरक्षा परिषद अपने अध्यक्ष की निर्वाचन प्रणाली तथा कार्रवाही के नियम आदि अपने आप ही प्रस्तुत करती है (धारा ३०)। परिषद के सदस्य, अंग्रेजी नाम के प्रथम अक्षर के क्रमानुसार एक महीने के लिये अध्यक्ष बनते रहते हैं। यदि परिषद के विचाराधीन प्रश्न में अध्यक्ष का राज्य, प्रत्यक्ष रूप में सम्बन्धित हो, तो उस समय के लिये वह चाहे तो अनुपस्थित रह सकता है।

राष्ट्रसंघ के चार्टर (अधिपत्र) में अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति व्यवस्था

कायम रखने के लिये परिषद के हस्तक्षेप की चार विभिन्न अवस्थाओं का उल्लेख किया गया है।

प्रथम अवस्था—शान्तिपूर्ण समझौता (धारा ३३)। किसी झगड़े के दलों को अपने झगड़े, वार्ता, जांच, सोच विचार, विचार-विमर्श, मध्यस्थ-निर्णय, न्यायिक समझौता, प्रादेशिक संस्थाओं की प्रस्थापना, प्रबन्धों या अपने इच्छानुसार अन्य शांतिपूर्ण ढंग से तय कर लेने चाहियें। कोई भी राज्य, जो संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य नही है सुरक्षा परिषद या महासभा के सामने वह झगड़ा ला सकता है जिसमें वह भी सम्मिलित है। परन्तु शर्त यह है कि वह चार्टर के शांति समझौता की बाध्यतामूलक शर्तों को मान ले।

द्वितीय अवस्था—यदि शांति भंग हो जाय अथवा एक राज्य दूसरे पर आक्रमण करे तो परिषद झगड़ने वाले राज्यों को अपनी स्थायी शर्तों के स्वीकार करने के लिये आह्वान कर सकती है किन्तु उस अवस्था में उन राज्यों के अधिकार तथा दावे अक्षुण रहेंगे। उदाहरण के तौर पर वह मांग कर सकती है कि सम्बन्धित देश अपनी सेनाएं कथित स्थिति पर बुला लें या युद्ध विराम पर हस्ताक्षर करें। यदि एक अथवा दोनों दल इस मांग को अस्वीकार कर दें तो यह भविष्य की कार्यवाही के लिए नोट किया जायगा (धारा ३९-४०)।

तृतीय अवस्था—परिषद सदस्य राज्य से आर्थिक नाकेबन्दी करने—जिसमें रेल, डाक, समुद्र, वायु, तार, रेडियो, तथा यातायात के अन्य साधनों की पूरी या आधी रुकावट या कूटनीतिक सम्बन्ध विच्छेद सम्मिलित हो—को कह सकती है (धारा ४१)।

चतुर्थ अवस्था—अन्त में यदि परिषद के विचार में यह सब ढंग अपर्याप्त हों तो वह सभी सैनिक कार्यवाही, सैन्य प्रदर्शन, अवरोध तथा वायु, जल या स्थल सेना का प्रयोग स्थिति के अनुसार कर सकती है। संयुक्त राष्ट्रीय सदस्य (धारा ४३) प्रतिज्ञा बद्ध है कि इसके आह्वान

पर सशस्त्र सैन्य सहायता तथा सुविधाएं, जिनमें मार्ग का अधिकार भी सम्मिलित है प्रदान करे। संयुक्त राष्ट्रसंघ की सैन्य आवश्यकता की पूर्ति के लिए संयुक्त अंतर्राष्ट्रीय सदस्यों का कर्त्तव्य है कि वे सदा राष्ट्रीय वायु सेनाएँ प्रस्तुत रखें, जिससे कि संयुक्त राष्ट्रीय कार्यवाही अविलम्ब की जा सके (धारा ४५)।

सुरक्षा परिषद् को इसका भी अधिकार है कि वह महासभा को किसी सदस्य, जिसके विरुद्ध सुरक्षात्मक या दृढ़ीकरण पग उठाये जा रहे हैं, की सदस्यता स्थगित करने तथा निष्कासन की सिफारिश कर सके। यह परिषद् महासभा के विशेष अधिवेशन भी बुला सकती है। परिषद् सैनिक दृष्टि से महत्वपूर्ण क्षेत्र के लिये प्रन्यास समझौते का समर्थन करती है और सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्य स्वभावतः ही प्रान्यासिक परिषद् (ट्रस्टीशिप कांउसिल) के सदस्य हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त महासभा को यह उन शर्तों की सिफारिश करती है जिनके आधार पर संयुक्त राष्ट्र का गैर सदस्य, अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय विधान के आधीन हो जाता है तथा न्यायालय के निर्णय के कार्यान्वित होने में शर्तों को निश्चित करती है। सुरक्षा परिषद् तथा महासभा एक साथ, लेकिन स्वतन्त्रतापूर्वक, न्यायालय के न्यायाधीशों का निर्वाचन करती है। यह महामन्त्री की नियुक्ति तथा नये सदस्यों की महासभा की सदस्यता के लिये सिफारिश करती है।

सीमित भौगोलिक क्षेत्र में पारस्परिक सहायता के लिये प्रादेशिक समझौता कर सकता है। इस धारा के अनुसार रूस ने पूर्वीय यूरोपीय लोकसत्तावादी राज्यों से २३ पारस्परिक सहायता तथा मित्रता की संधियां की हैं। ब्रिटेन, फ्रांस, वेल्जियम, नीदरलैंड, लक्सेमबर्ग के बीच ब्रसेल्स की संधि (मार्च १७, १९४८) तथा उत्तर अटलांटिक संधि (अप्रैल ४, १९४९) जिनमें बेल्जियम, कनाडा, डेनमार्क, फ्रांस, आइसलैंड, इटली, लक्सेमबर्ग, नीदरलैंड, नारवे पुर्तगाल, ब्रिटेन, अमरीका, यूनान आदि सम्मिलित हैं, इसी प्रकार की संधि की है। प्रशांत सुरक्षा संधि तथा मध्यपूर्व सुरक्षा संगठन प्रादेशिक समझौते का और एक रूप है।

सुरक्षा परिषद् आवश्यकता के अनुसार अपने आधीन संस्थाओं को घटा तथा बढ़ा सकती है। अस्त्र-शस्त्र पर नियंत्रण की योजना तथा महासभा को एक वार्षिक रिपोर्ट पेश करना परिषद् के प्रधान कार्य हैं। परिषद् के सहायक अंग तीन प्रकार के हैं—'स्थायी, अस्थायी और विशेष। स्थाई अंगों में **प्रथम**—सैन्य कर्मचारी वृन्द समिति—इसमें परिषद के पांच स्थाई राज्यों के सेनापति होते हैं और वे अपने आधीन सशस्त्र सेनाओं का संचालन, शस्त्रीकरण तथा सम्भावित निःशस्त्रीकरण के लिये उत्तरदायी होती है। **द्वितीय**—विशेषज्ञों की समिति—जो कि परिषद् द्वारा प्रस्तुत किये गये कार्यवाही नियमों का संशोधन, व्याख्यान और पुनर्विचार करती है। इसमें परिषद् के प्रत्येक सदस्यों के प्रतिनिधि होते हैं। **तृतीय**—नये सदस्यों के प्रवेश की समिति—जिसमें परिषद् के प्रत्येक सदस्य के एक एक प्रतिनिधि होते हैं। यह समिति चार्टर की चतुर्थ धारा के अनुसार गैर सदस्य राज्यों के स० रा० सं० में प्रवेश करने के आवेदन-पत्रों की छानबीन करती है। अस्थायी सहायक अंगों में—अणुशक्ति आयोग (एटोमिक एनर्जी कमीशन) जिनमें सुरक्षा परिषद् के सभी सदस्य और कनाडा सम्मिलित हैं,

उल्लेखनीय है। इसके कार्य—शान्ति के लिये सभी राष्ट्रों के मध्य आधारभूत वैज्ञानिक सूचनाओं का विनिमय तथा शान्तिपूर्ण प्रयोजनों के निमित्त प्रयोग के लिये, अणुशक्ति नियन्त्रण के सुझाव देना है। निःशस्त्रीकरण का क्रियमन, अस्त्र-शस्त्र तथा सेना पर नियन्त्रण के लिये प्रथीय शस्त्रीकरण आयोग (कन्वेनशनल आर्मामेन्टस् कमीशन). जिसमें सुरक्षा परिषद् के सदस्य होते है, परिषद् के एक अन्य अस्थायी सहायक अंग के रूप में कार्य कर रहा है। विशेष सहायक अंगों में रा० रा० ने भारत व पाकिस्तान, कोरिया, बालकान तथा फिलस्तीन आदि प्रत्येक समस्या के लिए पृथक आयोग को नियुक्त किया है। इस प्रकार सुरक्षा परिषद् संयुक्त राष्ट्रसंघ का सबसे महत्वपूर्ण अंग है क्योंकि उसकी सफलता या असफलता से शांति या युद्ध, अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक अथवा निक्षेपित राज्य का निर्णय होता है।

यह प्रमाणित होता है कि परिषद् अपने कार्यकलाप में सर्वदा ही असफल नहीं रही वल्कि उसने कई स्थानों में संघर्ष को रोक कर शांति का बीज वपन कर दिया है। परन्तु यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि प्रमुख पांच बड़े राष्ट्रों के पारस्परिक संघर्ष से और निषेधाधिकार के प्रयोग से सुरक्षा परिषद् एक प्रकार से पंगु हो गयी है। जून १९५३ तक अकेला रूस ५५ वार निषेधाधिकार को प्रयोग में लाकर महासभा तथा परिषद के निर्णयों का खंडन कर चुका है। सके विरोध में आंग्ल-अमरीकी गुट ने सितम्बर १९४७ में शांति और सुरक्षा के लिए महासभा की अस्थाई समिति, जिसमें महासमा के सारे सदस्य हैं, की स्थापना की। इस समिति को छोटी महासभा कहा जाता है, इसके उद्देश्य हैं कि यदि सुरक्षा परिषद शान्ति रखने में असफल रहे तो यह महासभा के सामने समझौते तथा सहयोग के लिए अपनी सिफारिश पेश करे अर्थात निषेधाधिकार प्रयोग करन वाले राज्य के विरुद्ध लोकमत का संगठन करे किन्तु यह ध्यान में रहे कि सं० रा० सं० की स्थापना के पूर्व प्रमुख पांच राष्ट्रों में निषेधाधिकार सम्बन्ध में समझौता हुआ था और इसीलिए उसमें योगदान किया था। जब तक कि संघ के चार्टर में कोई संशोधन नहीं होता तव तक इस परिस्थिति में किसी भी परिवर्तन की आशा रखना व्यर्थ है। सुरक्षा परिषद के कार्यकलाप में उन्नति होना तब तक असम्भव है जब तक आंग्ल-अमरीकी पूंजीवादी गुट तथा रूस-चीन द्वारा परिचालित साम्यवादी गुट का आपसी समझौता न हो।

राजनैतिक तथा सुरक्षा प्रश्न

ईरान:---ईरान की आंतरिक सुरक्षा तथा शान्ति सम्बन्धी प्रथम प्रश्न संयुक्त राष्ट्र के सम्मुख १९४६ में आया। ईरान सरकार ने १९ जनवरी को आरोप लगाया कि सोवियत सशस्त्र सेनाएँ ईरान के विभिन्न भागों पर अधिकार कर रहीं है तथा २९ जनवरी १९४२ की ब्रिटेन रूस और

ईरान के मध्य हुई त्रिदलीय संधि तथा अन्तर्राष्ट्रीय विधि का उल्लघंन कर आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप कर रही है। सोवियत प्रतिनिधि ने इन आरोपों से इन्कार किया और कहा कि अज़रबेजान प्रान्त में होने वाली घटनाएं ईरान राज्य की सीमाओं में प्रजातन्त्र राज्य की लोकप्रिय भावनाओं के कारण हो रही हैं और कहा कि उनकी सरकार ईरान सरकार से प्रत्यक्ष वार्ता प्रारम्भ करना चाहती है। इसके अनुसार एक ईरानी प्रतिनिधि मास्को गया और सोवियत संघ से प्रार्थना की कि वह आन्तरिक हस्तक्षेप न करे और आश्वासन दे कि सोवियत सेनाएँ शीघ्र हटा ली जायंगी। रूसी इन प्रार्थना पर सहमत नहीं हुए और निम्न सुझाव दिये : (१) सोवियत सेनाओं की अनिश्चित काल के लिए ईरान में स्थिति (२) अज़रबेजान की आन्तरिक जनतन्त्रता की स्वीकृति तथा (३) सोवियत ईरानी संयुक्त पूंजी कम्पनी की स्थापना। ईरान ने इन मांगों को अस्वीकार कर दिया और सुरक्षा परिषद को समस्या के हल करने को कहा। ४ अप्रैल १९४६ को जब परिषद ने, मामले पर विचार करने का निर्णय किया तो सोवियत प्रतिनिधि ने

पत्र की भावना के लिये असंगत है, की ओर दिलाया। परिषद् ने, यह विचार करते हुए कि सीरिया तथा लेवनान के प्रदेशों में विदेशी सेनाओं की उपस्थिति आदेशपत्र में निहित सभी सदस्यों की सार्वभौमता के सिद्धान्त के अयोग्य है, एक प्रस्ताव रखा जिसमें परिषद का विश्वास प्रकट किया गया था कि जितनी शीघ्र हो सके विदेशी सेनाएँ वापिस हटाई जायं तथा दोनों दलोंमें उसे समाप्त करने केलिये वार्ता प्रारम्भ हो। सोवियत संघ ने स्पष्ट तौर पर इस आधार पर विटो लेलिया कि इस प्रस्ताव की शब्दावली पर्याप्त रूप से शक्तिपूर्ण नहीं है। यद्यपि प्रस्ताव पारित होने में असफल होगया। फ्रांस तथा ब्रिटेन ने परिषद के बहुमत का पालन करते हुए ३० अप्रैल १९४६ को अपनी सेनाएँ सीरिया तथा लेवनान से हटा लीं। यह मामला यह बताने में महत्वपूर्ण है कि सुरक्षा परिषद् का कार्य, विटो के प्रयोग से बाधित होने पर भी उन मामलों में जहां सम्बन्धित शक्तियां सुरक्षा परिषद के बहुमत के विचार का आदर करती हैं, का रचनात्मक फल मिलता है।

स्पेन—८ अप्रैल १९४६ को पोलिश (Polish) प्रतिनिधि ने सुरक्षा परिषद का ध्यान स्पेन की विषम स्थिति की ओर, जो कि अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा तथा शान्ति के लिये खतरा थी, आकर्षित किया। बताया गया कि—१. फासिस्ट इटली तथा नाजी जर्मनी की सहायता से फ्रांको राज्य शक्तिशाली हो गया है २. फ्रांको संयुक्त राष्ट्र के विरुद्ध हुए युद्ध का महत्वपूर्ण धुरा था। (३) फ्रांको ने स्पेन को उन जर्मन वैज्ञनिकों, जो मानवमात्र की शान्ति के लिये भयदायक कार्यों में संलग्न हैं, के लिये शरणदाता होने की अनुमति दे दी है ४. फ्रांको ने स्पेन का माल बन्द करने के लिये फ्रांस को विवश तथा फ्रांस की सीमा पर सैनिक जमाव करके अन्तर्राष्ट्रीय विग्रह की स्थिति उत्पन्न करदी है। परिषद ने पांच सदस्यों की एक समिति इस वक्तव्य की जांच करने के लिये नियुक्त की। विस्तृत जांच के पश्चात १२ दिसम्बर को महासभा

ने स्पेन की फ्रांको सरकार को अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं (इन्टरनेशनल एजेन्सियां) की सदस्यता से निषेध कर दिया तथा सदस्य राज्यों से सिफारिश की कि मैड्रिड से अपने दूतों को तुरन्त बुला लें। तीन राज्यों, जिनमें ब्रिटेन भी सम्मिलित था, ने प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया जब कि ४९ राज्यों के फ्रांको के स्पेन से कूटनीतिक सम्बन्ध थे ही नहीं। ५ नवम्बर १९५० को संयुक्त राष्ट्र ने प्रतिबन्ध हटा दिया और स्पेन को विशिष्ट संस्थाओं में भाग लेने की अनुमति दे दी। जनवरी १९५३ में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका तथा स्पेन के मध्य दो छोर का समझौता हुआ जिसके द्वारा स्पेन ने अमरिकी सहायता के बदले सैन्य आधार की स्वीकृति अमरीका को दे दी।

स्थान पर जाकर तथ्यों की जानकारी के लिए एक आयोग बना, जिसने जून १९४७ में परिषद को अपनी रिपोर्ट दी। ३ पुस्तकों तथा ७६७ पृष्ठों की इस रिपोर्ट में कहा गया था कि--(१) यूनान, अल्बानिया, बल्गेरिया तथा युगोस्लाविया को साधारणतया अच्छे पड़ौसी-सम्बन्ध स्थापित करने के लिए कहना चाहिए। (२) ये देश १९३१ के ग्रेसियो बल्गर कन्वेशन के आधार पर सामान्य सीमा के नियमन तथा संरक्षण के लिए एक नया समझौता करें। (३) सीमोल्लंघन से उत्पन्न होने वाले मामलों को सुलझाने के लिए दो वर्ष के लिए एक आयोग (कमीशन) नियुक्त किया जाना चाहिए। (४) बाल्कान राज्य अल्पसंख्यकों के स्वेच्छा निष्कासन के लिए एक समझौता करें। सुरक्षा परिषद ने इन सिफारिशों को स्वीकार कर लिया तथा सहायक ढंग के रूप में एक आयोग की नियुक्ति कर दी। यून्स्कौब (बाल्कान के लिए संयुक्त राष्ट्र की विशेष समिति) को यूनान की स्वतन्त्रता के लिए गम्भीर खतरों का सामना करना पड़ा। तीन वर्ष (१९४६-४९) तक साम्यवादी नियंत्रित सशस्त्र तथा शिक्षित गुरिल्ले, जिन्हें यूनान के कई पड़ौसियों की सहायता (समर्थन) प्राप्त थी, देश में लूटमार करते रहे। यद्यपि संयुक्त राष्ट्र के प्रभावपूर्ण कार्य सोवियत विटो (अस्वीकृति) से कुंठित हो जाते थे फिर भी अमेरिकी सेना तथा वित्तीय सहायता से यूनान गुरिल्लाओं को दबाने तथा गृहयुद्ध को समाप्त करने में सफल हो गया। १९५० में युन्स्कौब ने रिपोर्ट दी कि यूनानी साम्यवादी गुरिल्ला सेनाओं की दुबारा चढ़ाइयां साफ कर दी गई हैं और देश में आन्तरिक शान्ति स्थापित हो गई है। लगभग २८२९५ यूनानी बालकों का अपहरण गुरिल्लों द्वारा हुआ। यह सत्य है कि मूल राजनीतिक समस्या--यूनान के अपने पड़ौसियों से सम्बन्ध--अभी तक हल नहीं हुई है। अल्बेनिया, बल्गेरिया तथा युगोस्लाविया अब भी यूनान को दोषी बताते हैं तथा संयुक्त राष्ट्र के बहुमत निर्णय का अभी तक विरोध करते हैं। किन्तु १९४७ से यून्स्कौब उक्त स्थल पर ही स्थिति को देखने, रिपोर्ट करने

तथा प्रत्येक आरोप और प्रत्यारोप का परीक्षण करने तथा चारों पड़ोसी देशों में सम्बन्ध स्थापित करने के लिए है। युद्ध-ग्रस्त क्षेत्रों का पुनः संस्थापन तथा शरणार्थियों के पुनर्वास का कार्य संयुक्त राष्ट्रीय सहायता तथा निरीक्षण द्वारा शीघ्रतापूर्वक किया जा रहा है। नवनिर्वाचित प्रधान मंत्री मार्शल अलेक्जेंडर पैपागोस (१७ नवम्बर १९५२) भी युन्स्कोब के साथ पूर्ण हार्दिक सहयोग कर रहे हैं।

तथा अन्तर्राष्ट्रीय झगड़े की जड़ बना रहा। अब लगभग १० हजार आंग्ल-अमेरिकी दस्ते ट्रिस्ट के 'ए' क्षेत्र पर अधिकार किये हुए हैं जो कि जून १९५२ में इटली को सौंप दिया गया है जबकि यह रिपोर्ट दी गई है कि 'बी' क्षेत्र पूर्णतया युगोस्लाविया में मिला दिया गया है।

इन्डोनेशिया:—जनवरी १९४६ में यूक्रेनिया के प्रतिनिधि ने सुरक्षा परिषद में शिकायत की कि ब्रिटिश तथा जापानी सैनिकों की हिन्देशिया में स्थानीय जनता के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के लिए गम्भीर संकट है। कहा गया कि ९ मार्च १९४२ को नीदरलैंड की सेना ने जापान को आत्म-समर्पण कर दिया तथा हिन्देशियाई जनता को जापानी राज्य के आधीन रह कर कष्ट उठाने पड़े। १७ अगस्त १९४५ को जब जापान ने आत्म-समर्पण किया तो इन्डोनेशिया डा० सुकर्णो के नेतृत्व में 'अस्थाई हिन्देशिया प्रजातन्त्र राज्य' घोषित किया। छः माह पश्चात् ब्रिटिश तथा भारतीय सैनिकों ने हिन्देशिया पर अधिकार कर लिया तथा डच राज्य स्थापित कर दिया। स्वतन्त्रता के राष्ट्रीय आन्दोलन का कठोरतापूर्वक दमन होने लगा। सुरक्षा परिषद ने ११ फरवरी १९४६ में पांच सदस्यों—संयुक्तराष्ट्र अमेरिका, सोवियत संघ, चीन, ब्रिटेन तथा नीदरलैंड्स का एक आयोग मौके पर जाकर जांच करने तथा हिन्देशिया में शान्ति एवं व्यवस्था की व्यवस्था के लिए नियुक्त कर दिया। १९४७ की गर्मियों में गड़बड़ फैल गई किन्तु आयोग १५ नवम्बर १९४७ को एक लिंगजेही नामक समझौते की बात करने में सफल हो गया। इस समझौते के अनुसार १६ राज्य के प्रजातंत्रीय शासन वाले हिन्देशिया की स्वतंत्रता १ जनवरी १९४९ तक स्वीकृत होनी थी। संयुक्तराष्ट्र सदस्यता में डच सहायता के बदले हिन्देशिया ने डच राज्य का आदर करने की प्रतिज्ञा की। डच सेनाओं ने अपने समझौते के उल्लंघन में दिसम्बर १९४८ में 'पुलिस कार्यवाही' आरम्भ कर दी। सुरक्षा परिषद ने पुनः हस्तक्षेप किया। आस्ट्रिया,

बेल्जियम तथा संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के एक नवनिर्मित आयोग से पुनः वार्ता हुई तथा बाद में एक गोलमेज कान्फ्रेंस द्वारा एक पूर्ण समझौता हो गया। २० जनवरी १९४९ में नई दिल्ली में हुए एशियाई प्रादेशिक सम्मेलन में भारत ने डच पक्ष का समर्थन किया। २७ दिसम्बर १९४९ को करोड़ों एशियाइयों की प्रसन्नता के लिए जकार्त्ता में राजधानी सहित अपने पैतृक नीदरलैंड्स से सम्बन्धित स्वतंत्र संयुक्त राज्य हिन्देशिया गणतंत्र का प्रादुर्भाव हुआ। डा० सुकर्णो इसके प्रथम राष्ट्रपति बने। हमारे प्रधान मंत्री श्री नेहरू ८ जून १९५० को हिन्देशिया गए और एक घोषणा की कि दक्षिण-पूर्वी एशिया के एक भाग का स्वतंत्र तथा एक का परतंत्र रहना अब अधिक सम्भव नहीं है। २८ सितम्बर १९५० को वह संयुक्त राष्ट्र का ६० वां सदस्य बना। अब डच न्यूगिनी के भावी पद की समस्या और शेष रहती है। हिन्देशिया ने इस भाग की मांग की किन्तु आस्ट्रेलिया ने घोषित किया कि भूगोल के अनुसार न्यूगिनी उस का भाग है। ४ दिसम्बर को हेग में डच-हिन्देशियाई सम्मेलन हुआ। हिन्देशिया ने मांग की--(१) नीदरलैंड को, पश्चिमी न्यूगिनी को हिन्देशिया का भाग घोषित कर देना चाहिए जिसको पांच माह के बाद कार्य रूप दे दिया जाय। (२) दोनों देश आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृति विकासों के लिए सहयोग से काम करें। डच ने इन मांगों को पूर्णतया अस्वीकार कर दिया कि जब तक न्यूगिनी के निवासी अपने भाग्य का निर्णय स्वयं नहीं करते उस पर उसका अधिकार रहेगा। इस प्रकार वहां भविष्य में संयुक्त राष्ट्रीय हस्तक्षेप की सम्भावना है।

दक्षिण अफ्रीका--जून १९४६ में भारत ने दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के प्रश्न को उठाया। भारत ने कहा कि भारतीय नैटाल के ब्रिटिश उपनिवेश में यूरोपवासियों की अपील तथा एक समझौते के आधार पर जिसमें कहा गया था कि दक्षिण अफ्रीका में जाने वाले भारतीयों को उससे पृथक विधि (कानून) से जो यूरोपियनों पर

लागू है शासित नहीं किया जायगा। सर्वप्रथम भारतीय १८६० में प्रतिज्ञा-बद्ध भारतीय स्वतंत्र श्रमिकों के रूप में आए थे। किन्तु १८५५ के बाद से निवासियों के विरुद्ध आंदोलन से भेदभाव होने लगा। १९०७ में महात्मा गांधी ने धैर्ययुक्त विरोध प्रारम्भ किया तथा पुनः १९१३ में अनेकों विभिन्न प्रतिबंधों का विरोध किया। इसके परिणामस्वरूप गांधी-स्मट समझौता तथा भारतीय सहायता विधेयक का निर्माण हुआ जिससे भारतीयों की कठिनाइयों का उपचार हो गया और उनका देशान्तर को जाना रुक गया। १९२७ में केपटाउन-समझौते के विभिन्न नाम से इसका नवीनकरण हो गया। १९४३ मे जब भारतीय विरोधी आन्दोलन जोरों पर पहुँच गया तो नेटाल प्रांत ने 'नियमन विधेयक' (Pegging Act) पारित किया जिससे एशियाइयों के भूमि प्राप्त करने सम्बन्धी अधिकार पर वैधानिक प्रतिबन्ध लग गये। १९४६ मे दक्षिण अफ्रीका सरकार ने एशियाई भूमि अधिकार तथा भारतीय प्रतिनिधित्व विधेयक पारित किये जिसका परिणाम यह हुआ कि व्यापार तथा निवास के बारे में भारतीयों का पूर्ण अलगाव हो गया। भारत के कथनानुसार इस नियमन से केपटाउन समझोते और मानव अधिकार तथा स्वतंत्रता सम्बन्धी संयुक्त राष्ट्रीय आदेश पत्र (चार्टर) का पूर्ण उल्लंघन होता है। भारत ने द० अफ्रीकी सरकार से अपने व्यापारिक सम्बन्ध तोड़ लिये और अपने उच्चायुक्त को वापिस बुला लिया। दक्षिण अफ्रीकी प्रतिनिधि ने कहा कि समस्या पूर्णतया राज्य के घरेलू अधिकार की है, तथा पश्चिमी जीवन स्तर के स्थायित्व के लिये श्वेत और अश्वेत का भदभाव अनिवार्य है। १९ नवम्बर १९४६ की प्रथम महासभा ने दक्षिण अफ्रीका को 'धार्मिक जातीय अत्याचार तथा भेदभाव की तुरन्त समाप्ति' के लिये कहा, १९४९ में मेक्सीको तथा फ्रांस ने एक गोलमेज सम्मेलन का सुझाव दिया जो कि दक्षिणी अफ्रीका के सतत विरोध से कभी न हो पाया। दक्षिण अफ्रीका प्रधान मंत्री डा० मलान ने जून १९५० में प्रसिद्ध दलीयक्षेत्र विधेयक पारित कर कर दिया।

अलगाव की इस नई नीति ने जो 'पृथक्कीकरण' कहलाई, जून १९५२ में भारतीयों को धैर्ययुक्त विरोध के लिये बढ़ावा दिया। ११ नवम्बर १९५१को सातवीं संयुक्त राष्ट्रीय महासभा के सदस्यों के सम्मुख श्रीमती पंडित ने कहा—दक्षिण अफ्रीका की नीति उन सबके लिये गंभीर धमकी है जिनके लिये संयुक्त राष्ट्र की स्थापना हुई है। एक जाति का दूसरे पर प्रभुत्व स्थिर रखने के लिये निर्मित जाति भेद भाव की नीति के अनुसरण से दक्षिण अफ्रीका में स्थिति दिन प्रति दिन बिगड़ रही है।" अपने मूलभुत अधिकारों तथा स्वतंत्रता स्थापित करने का साहस करने पर भारतीयों को कारावास, आर्थिकदंड, यहां तक कि कोड़े (इत्यादि की मार भी) सहनी पड़ रही है। मौके पर जाकर स्थिति की जांच के लिये ३ सदस्यों का एक संयुक्त राष्ट्रीय सद्कार्यालय आयोग स्थापित किया गया है। संयुक्त राष्ट्र सभा के कार्यक्रम में पृथक्कीकरण अभी तक सम्मिलित है, भारतीय प्रतिनिधि ने कहा कि जातीय संघर्ष भयदायक विस्फोटक स्थिति निर्माण कर रहा है जिससे अन्तर्राष्ट्रीय शांति को संकट तथा संयुक्त राष्ट्रीय आदेशपत्र (चार्टर) में निहित आधार भूत मानव अधिकारों का उल्लंघन हो रहा है। दलीय क्षेत्र विधेयक की स्थगन समझौता वार्त्ता जो कि गत ७ वर्षों से विचाराधीन है, के लिए 'आवश्यक शर्तें' है। यह दक्षिण अफ्रीकी सरकार के अपने हित में है कि वह स्थिति को बद से बदतर होने से रोकने के लिये त्रिसदस्यीय आयोग का स्वागत करे।

राष्ट्रसंघ ७वीं महासभा के अध्यक्ष ने दक्षिण अफ्रीका के जातीय भेद-भाव के प्रश्न की जांच करने के लिये एक आयोग के तीन सदस्यों की घोषणा की है। डा० राल्फ बुंच, डा० जेम्स टारेस बोडेट तथा श्री हरनाम सांताक्रूज को इसके लिए निमन्त्रित किया गया किन्तु श्री बोडेट ने अपनी असमर्थता प्रकट कर दी है। हाल ही में भारत, पाकिस्तान तथा दक्षिण अफ़्रीका के मध्य समझौता-चर्चा

का प्रवन्ध कराने के लिये क्यूवा, सीरिया तथा युगोस्लाविया के प्रतिनिधियों के एक आयोग की पुनः नियुक्ति की गई है। वर्तमान में दक्षिण अफ्रीका में गोरों की काली रंग-भेद–नीति के विरुद्ध सत्याग्रह में अव गोरे भी भारतीयों के साथ हो रहे हैं। अतः यूरोपीय निवासी भी पृथक्करण कानून की अवैधता को अनुभव करने लगे हैं और मलान सरकार के विरुद्ध उन्होंने भी मोर्चा खोल दिया है। किन्तु साम्यवाद-निरोधक कानून तथा जन-सुरक्षा अधिनियम के अन्तर्गत मलान-सरकार को इतने व्यापक अधिकार प्राप्त हैं कि वह सत्याग्रहियों पर मनमाना अत्याचार कर रहे हैं । फरवरी १९५३ में श्री मणिलाल गांधी को ५० पौंड का जुर्माना या ५० दिनों का सश्रम कारावास का दण्ड मिला है। अप्रैल में डा० मलान दक्षिण अफ्रीकी संघ के चुनावों में वहुमत के साथ विजयी हो गए और पृथक्करण व वर्ण-भेद की नीति अभी भी जारी है।

काश्मीर—६ जनवरी १९४८ को भारत ने सुरक्षा परिषद के अधिकार की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए यह आरोप लगाया कि पाकिस्तान कवायलियों को एक ऐसे राज्य पर जो व्रिटिश शासन के समाप्त हो जाने के वाद वैधानिक रूप से भारत में सम्मिलित हो गया है, आक्रमण करने (१५ अक्तूवर १९४७) में सहायता दे रहा है। भारत ने मांग की कि यह आक्रमण वन्द कर देना चाहिए। कवायली वापस वुला लिये जाने चाहिएँ तथा पाकिस्तान को राज्य प्रदेश की सीमा का उल्लंघन करने से मना किया जाना चाहिए। जव सुरक्षा परिषद ने इस मामले को उठाया तो पाकिस्तान ने इन आरोपों से इन्कार कर दिया तथा काश्मीर के भारत में प्रवेश को 'अवैध' वताया और दोनों देशों के वीच झगड़े के अन्य गम्भीर प्रश्न खड़े कर दिए। चार माह के तर्क-वितर्क के पश्चात् २१ अप्रैल १९४८ को परिषद ने लड़ने के लिए घुसे कवायलियों तथा पाकिस्तानियों की वापसी से शान्ति तथा व्यवस्था के स्थापनार्थ उपाय सोचने के लिये भारत तथा पाकिस्तान

को डा० ग्राहम ने पाक तथा भारतीय प्रतिनिधि मंडल के नेताओं से जनेवा में पुनः असफल वार्ता की। अनुमान है कि इस समय पाकिस्तान की ब्रिटेन और अमरीका के साथ गुप्त वातचीत चल रही है। वह किसी भी शर्त पर काश्मीर के विषय में ब्रिटेन और अमरीका को अपने पक्ष में करना चाहता है। इधर काश्मीर पर भारतीय संविधान को लागू करने के उद्देश्य से जम्मू में प्रजा परिषद ने आन्दोलन शुरू कर दिया है। फलस्वरूप परिषद के अनेक कार्य-कर्त्ताओं को—जिनमें भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी भी थे—को गिरफ्तार कर लिया गया। २४ जून १९५३ को प्रातःकाल श्रीनगर में डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी का हृदय-गति रुकने से स्वर्गवास हो गया।

कोरफू चैनल प्रश्न :—१० जनवरी १९४७ को ब्रिटिश प्रतिनिधि ने सुरक्षा परिषद के सम्मुख अल्बेनिया तथा अपनी सरकार के बीच के झगड़े को उपस्थित किया। यह मामला २२ अक्तूबर १९४६ को अल्बेनिया के निकट कोरफू चैनल में ब्रिटिश विध्वंसक 'वोलेज' तथा 'सौमरेज' की सुरंगों से हुई हानि से सम्बन्धित है। विस्फोट के परिमाणस्वरूप ४४ नाविक मारे गये तथा ४२ घायल हो गये और दोनों विध्वंसकों को भी क्षति पहुँची, जिसमें एक तो पूर्णतया नष्ट हो गया। अल्बेनिया के प्रतिनिधि ने कहा कि उसकी सरकार ने सुरंगे नहीं बिछाईं तथा वह अपने प्रादेशिक समुद्र क्षेत्र में नौपरिवाहन की सुरक्षा के लिये उत्तरदायी नहीं। 'बिना सूचना के शीतकाल में सुरंग बिछाना अनुचित तथा मानवता के विरुद्ध अपराध है' इस ब्रिटिश प्रस्ताव को सोवियत संघ ने विटो (अस्वीकार) कर दिया। अंत में ९ अप्रैल १९४७ को परिषद ने इस मामले को अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के सुपुर्द कर दिया। अल्बेनिया ने सदस्य न होते हुए भी सिफारिश को स्वीकार कर लिया।

मिस्र :—८ जुलाई १९४८ को मिस्री प्रतिनिधि ने सुरक्षा परिषद में शिकायत की कि कहीं आंग्ल-मिस्री विवाद अंतर्राष्ट्रीय शांति तथा

सुरक्षा के लिए ये खतरा न बन जाय। यह समस्या दुहरी थी: मिस्र में ब्रिटिश सेनाओं की उपस्थिति तथा आंग्ल-मिस्री सूडान के प्रति ब्रिटेन की नीति। कहा गया था कि ब्रिटिश सेनाएँ १९३६ की आंग्ल-मिस्री सन्धि की शर्तों के अनुसार रखी गई थीं। इस प्रश्न पर सुरक्षा परिषद द्वारा दो माह से अधिक विचार किया गया किंतु ब्रिटेन को, झगड़े ग्रस्त दलों में से एक होने के कारण मत देने का अधिकार न था। यद्यपि परिषद सूडान और मिस्र को ब्रिटिश नियंत्रण से मुक्त कर देने के लिए पग उठाना चाहती थी किन्तु फिर भी वह कोई निश्चित प्रस्ताव स्वीकार न कर सकी।

फरवरी (१९५३) में ब्रिटेन और मिस्र ने एक समझौते पर हस्ताक्षर कर सूडान को स्वशासन देना स्वीकार कर लिया। इस प्रकार सूडान पर दोनों देशों का गत ५३ वर्षों से संयुक्त शासन का अवसान हो गया है। अब मिस्र और ब्रिटेन के बीच मुख्य विवाद स्वेज क्षेत्र में ब्रिटिश सेनाओं की मौजूदगी ही रह गया है।

हैदराबाद:—१५ अगस्त १९४७ को जब भारत से अंग्रेजी राज्य समाप्त हुआ तो भारतीय रियासतों में सबसे बड़ी रियासत हैदराबाद न तो पाकिस्तान में सम्मिलित हुई और न भारत में। निजाम हैदराबाद ने केवल एक वर्ष के लिए यथापूर्व अस्थाई समझौता किया। २१ अगस्त १९४८ को हैदराबाद ने सुरक्षा परिषद को सूचित किया कि "हैदराबाद तथा भारत में गम्भीर विवाद उत्पन्न हो गया है। कहा गया कि इस शाही रियासत पर आक्रमण करने की धमकियां, सीमोल्लंघन तथा आर्थिक नाकेबन्दी की गई है जिससे कि वह अपनी स्वतन्त्रता से वंचित रह जाय। १३ सितम्बर को भारतीय सेना ने राज्य की ओर कूच किया और घोषणा की जैसे ही हमारा कार्य समाप्त हो जायगा हैदराबाद की जनता को अपने भविष्य तथा भारत से सम्बन्ध के बारे में निर्णय करने का पूर्ण अवसर दिया जायगा। भारत ने कहा कि हैदराबाद सुरक्षा परिषद में प्रश्न उठाने योग्य नहीं

क्योंकि यह स्वतंत्र नही है। इतिहास मे उसे कभी भी स्वतंत्रता का दर्जा प्राप्त नही हुआ और न ही अगस्त १९४७ से पूर्व, न ब्रिटेन द्वारा जारी की गई किसी घोषणा से और न ही ब्रिटिश संसद द्वारा स्वीकृत किसी विधेयक से इसे स्वतंत्र सत्ता प्राप्त हुई है जिससे कि यह सुरक्षा परिषद में आकर मामला उपस्थित करने का अधिकार पाता। जांच करने पर यह सिद्ध हो गया कि हैदराबाद सरकार द्वारा प्रोत्साहित, निजी सेना, जिन्हे रजाकार कहा जाता है द्वारा हत्या, आग लगाने, लूटने तथा बलात्कार की मर्मभेदी कथाओ से, जिनकी पुष्टि जांच से हो गई थी हैदराबाद मे आतंक का राज्य स्थापित हो गया था जिससे वहां पुलिस कार्यवाही आवयक समझी गई। सुरक्षा परिषद ने पाकिस्तान द्वारा हस्तक्षेप करने पर भी कोई निर्णय देने का प्रयास नही किया।

जर्मनी:—२९ सितम्बर १९४८ को महामंत्री श्री ली को अमेरिका, ब्रिटेन तथा फ्रांस द्वारा भेजी गई परिचयात्मक टिप्पणियां प्राप्त हुई जिसमें उनका ध्यान, बर्लिन तथा जर्मनी के पश्चिमी अधिकृत क्षेत्रो के बीच सोवियत संघ द्वारा यातायात तथा सचार पर लगाये गए प्रतिबन्ध से उत्पन्न गम्भीर स्थिति की ओर आकृष्ट किया गया था। टिप्पणी मे कहा गया था कि यह आदेशपत्र (चार्टर) के अनुच्छेद का उल्लघन है। सोवियत प्रतिनिधि ने कहा कि यह प्रश्न परिषद के अधिकार से बाहर का है क्योंकि आदेशपत्र (चार्टर) के अनुच्छेद १०७ के द्वारा 'इस प्रश्न का हल सीधा सम्बन्धित देशों द्वारा होता है और विदेश मंत्रियों की परिषद बुलाने का सुझाव दिया। ३ अक्तूबर १९४८ को सुरक्षा परिषद द्वारा बर्लिन करेंसी तथा व्यापार पर तटस्थ देशों द्वारा मनोनीत वित्तीय विशेषज्ञो की एक टैक्निकल समिति नियुक्त कर दी गई। १५ मार्च १९४९ को टैक्निकल समिति सोवियत संघ के साथ किसी समझौते पर पहुँचने में असफल हो गई। इसी बीच सुरक्षा परिषद तथा महासभा का मध्यस्थता प्रयास १२ मार्च १९४९ को रूसी प्रतिबन्ध उठ-

वाने में सफल हो गया। २० दिसम्बर १९५१ को महासभा ने सम्पूर्ण जर्मनी में उचित ढंग से स्वतंत्र तथा गुप्त चुनाव कराने की सम्भावना की जांच के लिए आयोग नियुक्त किया। इस प्रस्ताव द्वारा पूर्वी तथा पश्चिमी जर्मनी के अधिकारियों को कहा गया कि इस आयोग को सम्पूर्ण क्षेत्र में स्वतंत्रतापूर्वक यात्रा करने की अनुमति देकर ऐसे व्यक्तियों, स्थानों तथा उपयोगी दस्तावेजों तक पहुँचने दिया जाय जो इसके कार्य सम्पादन के लिए आवश्यक है। १ सितम्बर १९५२ को सोवियत संघ के असहयोग के कारण आयोग ने अपनी असफलता की सूचना दी।

फिलस्तीनः—महायुद्ध के बाद फिलस्तीन समस्या बड़ी गम्भीर समस्या थी। इससे अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा और शांति का भयंकर प्रश्न उठ खड़ा हुआ। इसमें न केवल विश्व के तीन एकेश्वरवादी धर्म यहूदी, ईसाई और इस्लाम मत ही फंसे हुए थे वरन् इसमें 'बड़े पांच' में से तीन सदस्य, अमेरिका ब्रिटेन और रूस तथा अरब लीग के समस्त सदस्यों का लाभ भी निहित था। सन् १९४७ से यह समस्या संयुक्त राष्ट्र के सारे कार्यक्रम की धूरी बनी हुई है। महासभा, सुरक्षा परिषद, प्रन्यासिक परिषद और समाज तथा आर्थिक परिषद अपने अनेकों अधिवेशनों में इस विषय पर विचार कर चुकी हैं। शताब्दियों तक फिलस्तीन तुर्की साम्राज्य का एक भाग रहा। यहूदी इसे अपना ऐतिहासिक गृह मानते हैं, ईसाई से ईसा-मसीह की जन्मभूमि जान कर पूजते हैं और मुसलमानों के लिए यह तीर्थ-यात्रा का केन्द्र है। प्रथम महायुद्ध में ब्रिटेन ने इस पर विजय प्राप्त की और यहूदियों के लिए एक राष्ट्रीय गृह का वायदा किया। १९१९ के पेरिस शांति सम्मेलन ने फिलस्तीन का अन्तर्राष्ट्रीयकरण किया और इसे 'लीग आफ नेशन्स' के 'ए' श्रेणी के आज्ञापत्र के अन्तर्गत ब्रिटेन को सौंप दिया। प्रत्येक देश द्वारा तिरस्कृत और पीड़ित यहूदियों ने ज्योनिस्ट आंदोलन (Zionist movement) आरम्भ कर दिया और मांग की कि

फिलस्तीन केवल यहूदियों के अधिकार में होना चाहिए। इससे यहूदियों का आवास फिलस्तीन में भारी संख्या में होने लगा। ब्रिटेन ने कुछ विशिष्ट सुविधाएँ यहूदियों को दीं और zionist संस्था को अधिकार दिया कि यहूदी बस्ती के निपटारे के सभापतित्व को मना ले।

इसका परिणाम यह हुआ कि यहूदियों की जन संख्या सन् १९२२ में ८३७९० से १९४६ में ६०८२२५ तक बढ़ गई। १९३६ में जर्मनी में पीड़ित होने के कारण यहूदी आवासियों की संख्या बढ़ गई और अरबों ने यहूदियों और अंग्रेजों के विरुद्ध आतंकवादी युद्ध छेड़ दिया। सन् १९३९ में ब्रिटेन ने एक नवीन नीति की घोषणा जिसके अनुसार आगामी पांच वर्ष में केवल ७५००० आवासी अरब की स्वीकृति से फिलस्तीन जा सकते थे। १९४६ के आरम्भ में महासभा के प्रथम अधिवेशन में ही ब्रिटेन ने कहा था कि फिलस्तीन को स्वतन्त्र राज्य बनाने के लिये पग उठाये जायें और आंग्ल-अमेरिकी जांच समिति इस कार्य के लिये नियुक्त हुई। छः मास के पश्चात् समिति ने सूचना दी कि फिलस्तीन को एक आदेश पत्र के अन्तर्गत १००००० यहूदियों को देश में अन्दर आने की आज्ञा दे दी जाय जब तक कि कोई प्रन्यासिक अर्थात् संरक्षण समझौता हो। अरब लीग ने इसका घोर विरोध किया क्योंकि समिति में कोई अरब प्रतिनिधि न था। इसी बीच में यहूदियों ने अपने स्वधर्मी शरणार्थियों को फिलस्तीन में भरना जारी रखा। और अरबों ने यहूदियों के विरुद्ध आर्थिक युद्ध आरम्भ कर दिया। स्थिति भयंकर हो गई और वास्तविक युद्ध आरम्भ हो गया।

२ अप्रैल १९४७ में ब्रिटेन ने महासभा का ध्यान फिलस्तीन पर से "शासनादेश हटाने तथा इसकी स्वतन्त्रता की घोषणा" के प्रश्न की ओर आकृष्ट किया। दो माह विचार विमर्श के पश्चात् ११ सदस्यों (आस्ट्रेलिया, केनेडा, चेकोस्लोविका, गोटिमाला, भारत, ईरान, नीदरलड्स, पीरू स्वीडन, यूरोगवे तथा युगोस्लाविया) की फिलस्तीन पर एक विशेष समिति

(UNSCOP) सभी प्रश्नों की विस्तृत अधिकार के साथ जांच तथा सिफारिश देने के लिये नियुक्त की। १ सितम्बर को विशेष समिति ने एकमत होकर रिपोर्ट दी की यथा शीघ्र किसी सम्भावित तिथि को फिलस्तीन को स्वतंत्र कर दिया जाय। यद्यपि बहुमत ने सुझाव दिया था कि इसको तीन क्षेत्रों—अरब राज्य, यहूदी राज्य, सिटी ऑफ जेरुसलम म विभाजित कर दिया जाय। नवम्बर में महासभा ने बहुमत से निर्णय किया कि अरब राज्य में पश्चिमी गलिली, बीरशिव्र, गाजा, जाफा, तथा समुद्र तट के किनारे की पट्टी और यहूदी राज्य में पूर्वी गेलिली, हैफा तेल एवीव, एसड्रेलन तथा नेजीव सम्मिलित होंगे। जे सलम नगर वैथलम सहित संयुक्तराष्ट्र द्वारा नियुक्त अन्तर्राष्ट्रीय प्रन्यासिक के आधीन 'पृथक् इकाई' रहेगा। दोनों राज्य १ अक्तूबर १९४८ से पूर्व स्वतन्त्र नहीं होंगे तथा आर्थिक तथा सामाजिक परिषद द्वारा निर्वाचित तीन विदेशी राज्यों के तीन प्रतिनिधियों को मिलाकर सम्पूर्ण फिलस्तीन की रेलवे, बन्दरगाह, करेंसी तथा चुंगी आदि का प्रवन्ध, आर्थिक संगठन के हेतु, एक संयुक्त आर्थिक मंडल द्वारा किया जायगा। अरबों ने इस योजना का विरोध करने का निर्णय किया तथा उपद्रव प्रारम्भ हो गए। एक फिलस्तीन आयोग ने, जिसकी नियुक्ति १ अगस्त १९४८ तक विभाजन कर देने के लिए हुई थी, २ अप्रैल को सूचित किया कि यहूदियों तथा अरबों के सशस्त्र उपद्रवों, ब्रिटेन से सहयोग का अभाव तथा आवश्यक सशस्त्र सहायता के अभाव से महासभा के प्रस्ताव को कार्यान्वित करना असम्भव रहा है। १४ मई को महासभा ने मामला सुरक्षा परिषद के सुपुर्द कर दिया तथा अन्तर्राष्ट्रीय रेडक्रौस के उपाध्यक्ष काउन्ट फौक बर्नाडौट (स्वीडन) को फिलस्तीन में युद्ध विराम के प्रबंध के लिये संयुक्त राष्ट्रीय मध्यस्थ नियुक्त किया। उसी दिन ब्रिटेन ने अपने आदेश ७८ दिन पूर्व ही हटा लिये तथा यहूदियों ने इजरायल को स्वतंत्र राज्य घोषित कर दिया, किंतु ईराक, लेवनान, सीरिया तथा ट्रांसजोर्डन ने अरबों की रक्षा के लिये

फिलस्तीन पर आक्रमण कर दिया और इजरायल को सोवियत संघ की मान्यता प्राप्त हो गई। ११ जून को मध्यस्थ वर्नाडौट अरब तथा यहूदियों में चार सप्ताह के लिये युद्ध विराम समझौता कराने में सफल हो गए। इस समय के बाद पुनः लड़ाई आरम्भ हो गई। १८ जुलाई को सुरक्षा परिषद ने एकदम युद्ध विराम का आदेश दिया जिसे अरब और यहूदियों दोनों ने मान लिया। सितम्बर में यहूदियों द्वारा नेजीब पर, जोकि अरबों द्वारा मांगा गया था, अधिकार कर लेने के कारण पुनः गडबड़ी शुरू हो गई। १७ सितम्बर को काउन्ट-वर्नाडौट जबकि यहूदी सैन्य सुरक्षा में यरुसलम में से होते हुए जा रहे थे इजरायली वेषभूसा धारण किये व्यक्तियों द्वारा गोली से मार दिये गये। सुरक्षा परिषद ने डा० राल्फ जे. बुँच को कार्यवाहक मध्यस्थ नियुक्त किया। २९ दिसम्बर को तीसरी बार युद्ध विराम स्थापित हुआ और २४ फरवरी १९४९ को दोनों राज्यों ने महासभा द्वारा नियुक्त समझौता आयोग के माध्यम से एक संधि पर हस्ताक्षर किये। मई में इजरायल को संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता प्राप्त हो गई। अरब क्षेत्र ट्रांसजोर्डन के अधिकार में आ गया और दक्षिण-पश्चिम किनारे की पट्टी मिश्र के आधीन आ गई। जे सलम, इजरायल तथा जोर्डन सेनाओं के आधीन रहा। १० दिसम्बर को महासभा ने ८० लाख डालर का संयुक्त राष्ट्रीय बजट जेरुसलम जोकि प्रन्यासिक परिषद के आधीन रखा गया था, के अन्तर्राष्ट्रीयकरण के लिए स्वीकार किया। २ जून १९५० को इजरायल तथा जोर्डन दोनों ने प्रन्यासिक परिषद द्वारा बनाए गए विधान को अस्वीकार कर दिया तथा पवित्र नगर जेरुसलम से अपनी सेनाएँ हटाने से इन्कार कर दिया। काउन्ट बर्नाडौट की हत्या की क्षतिपूर्ति के लिए इजरायल ने५४६२८डालर दिये। वर्ष की समाप्ति तक इजरायल को भारत की स्वीकृति प्राप्त हो गई। सशस्त्र संधि अभी तक चल रही है तथा इजरायल तथा उसके चार अरब पड़ौसियों के बीच स्थायी शांति समझौता होना अभी शेष है। महासभा ने निकट-

पूर्व में फिलस्तीन के शरणार्थियों की संयुक्त राष्ट्रीय सहायता तथा कार्य संस्था (UNRWAPRNE) की स्थापना की है जोकि संरक्षण, संस्थापक तथा क्षतिपूर्ति का कार्य कर रही है और १ जुलाई १९५१ से ३० जून १९५२ तक के लिए ३ करोड़ डालर का चंदा दिया है। ८० हजार शरणार्थियों का दल निकट-पूर्व की शांति तथा व्यवस्था के लिए एक गम्भीर संकट है। १९५० में डाक्टरी तथा शैक्षणिक सहायता के लिये यूनिकेफ (UNICEF) द्वारा ३० लाख डालर, विश्व स्वास्थ संघ (WHO) द्वारा ४२८५७ डालर तथा यूनेस्को (UNESCO) द्वारा ५० हजार डालर चंदे के रूप में दिये गए हैं। २६ जून १९५२ को छठी महासभा ने फिलस्तीन समझौता आयोग जारी रखने तथा १ जुलाई १९५२ से फिलस्तीन के शरणार्थियों के लिये ३ वर्ष तक २५०० लाख डालर चंदा देने का कार्यक्रम बनाने का निर्णय किया है। यद्यपि सङ्कट समाप्त हो गया है फिर भी न्यूयार्क में होने वाली सातवीं बैठक के कार्यक्रम में फिलस्तीन की समस्या पर विचार करना निश्चित है।

कोरियाई समस्या—१७ सितम्बर १९४७ को अमरीका ने महासभा के दूसरे अधिवेशन में कोरिया की स्वतन्त्रता का प्रश्न प्रस्तुत किया। विषय के तथ्य निम्न हैं:—द्वितीय महायुद्ध में मित्र-राष्ट्रों ने अपनी काहिरा (दिसम्बर १९४३) तथा पोटसडम (जुलाई १९४५) की घोषणाओं में स्वतंत्र कोरिया की घोषणा की थी। २ सितम्बर १९४५ को जब जापान ने आत्मसमर्पण किया तो सोवियत यूनियन ने कोरिया की ३८ वीं समानान्तर रेखा के उत्तर में अधिकार कर लिया तथा अमेरिका ने इस रेखा से दक्षिण के भाग पर अधिकार किया। मास्को समझौता के अनुसार अमेरिका, रूस तथा ब्रिटेन में, कोरिया को संयुक्त और जनतंत्र राज्य प्राप्त कराने तथा अस्थाई कोरियाई सरकार निर्माण करने के लिये एक रूसी-अमेरिकी संयुक्त आयोग की स्थापना का समझौता हुआ। आयोग ने दो वर्ष (१९४६-४७) में २४ बैठकें की किंतु किसी भी समझौते पर पहुँचने में असफल रहा।

सोवियत संघ की यह मांग, कि आयोग को साम्यवादी दल के अतिरिक्त किसी कोरियाई जनतन्त्र दल से वार्ता नहीं करनी चाहिए तथा स्थायी सभा के लिये उत्तर तथा दक्षिण से समान प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए (यद्यपि ३ करोड़ की सारी जन संख्या में से २ करोड़ दक्षिण कोरिया में रहते हैं) अमरीका द्वारा एकदम अस्वीकार कर दी गई। १४ नवम्बर १९४७ को सभा ने निश्चय किया कि एक राष्ट्रीय सभा तथा राष्ट्रीय सरकार स्थापना के लिये कोरिया में चुनाव कराया जाय जो कि अधिकार रखने वाली सेनाओं की वापसी का प्रबन्ध करे। कोरिया के लिए चुनाव शीघ्र कराने के लिये ९ देशों का एक अस्थायी आयोग बनाया गया (जिसमें भारत सम्मिलित है लेकिन अमेरीका और सोवियत संघ सम्मिलित नहीं)। आयोग उत्तरी कोरिया में प्रवेश पाने में असमर्थ रहा तथा महासभा द्वारा नियुक्त आन्तरिक समिति से विचार विमर्श करने के बाद उसने दक्षिण कोरिया में १० मई १९४८ को चुनाव करा दिये जिसके फलस्वरूप २५ अगस्त १९४८ को कोरिया गणतन्त्र सरकार की स्थापना हो गई। १७ दिन पश्चात अमेरिका ने गणतंत्र का अधिकार दक्षिण कोरिया सरकार को जिसका नेतृत्व सिंगमैनरी कर रहे थे सौंप दिया। इसी बीच (२५ अगस्त १९४८) में जेनरल किम-इल संग की अध्यक्षता में उत्तर कोरियाई म आम चुनावों के बाद कोरिया गणतन्त्र कायम हो गया। महासभा के तीसरे अधिवेशन में (दिसम्बर १९४८) दक्षिण कोरिया सरकार को वैध मान लिया गया और अमेरिका से सिफारिश की गई कि वह अपनी सेनाएं हटा ले। इसने एक संयुक्त राष्ट्रीय कोरियाई आयोग की नियुक्ति की। सोवियत संघ ने कहा कि महासभा कोरिया के सम्बन्ध में कोई पग नहीं उठा सकती क्योंकि यह प्रश्न मास्को समझौते के आधीन है और उस पर विचार सम्बन्धित मित्र-राष्ट्रों द्वारा किया जाना चाहिए। २५ दिसम्बर १९४८ को रूस ने उत्तरी कोरिया से अपनी सेनाओं की वापसी की घोषणा की। दक्षिण में अमरीकी सैनिकों को २९ जून

१९४९ को वापिस बुला लिया गया था जिसकी पुष्टि संयुक्त राष्ट्रीय कोरियाई आयोग द्वारा की गई थी। १९४९ में (२१ अक्तूबर) महासभा ने अपने पांचवें अधिवेशन में कोरिया एकीकरण के लिये कमीशन (आयोग) जारी रखने का निर्णय किया और उससे कोरिया में सैन्य संघर्ष से उत्पन्न स्थिति की सूचना देने को कहा।

२५ जून १९५० को उत्तरी कोरिया ने दक्षिण कोरियाई गणतन्त्र पर आक्रमण कर दिया। सात देशों के संयुक्त राष्ट्रीय कोरिया आयोग (जिसकी अध्यक्षता भारत के श्री बी. एन. राव कर रहे थे, और जिसमें अमेरिका तथा रूस सम्मिलित नहीं थे,) रिपोर्ट दी कि आक्रमण बिना सूचना दिये पूर्व आयोजित तथा पूरी तैयारी के साथ, किया गया था। सुरक्षा परिषद की तुरन्त बैठक हुई और निर्णय दिया गया कि 'शान्ति भंग' हुई है। उपद्रवों की शीघ्र समाप्ति तथा ३८ वीं समानान्तर रेखा से उत्तरी कोरियाइयों की वापसी का आदेश दिया। इसमें संयुक्त राष्ट्रीय सदस्यों से प्रस्ताव के कार्यान्वित होने में सहायता तथा उत्तरी कोरियाई अधिकारियों को सहायता देने से बचने को भी कहा। सोवियत संघ, जिसने साम्यवादी चीन को संयुक्त राष्ट्र का सदस्य बनाने के प्रश्न के बारे में इसका बहिष्कार कर रखा था, इस बैठक में अनुपस्थित था। दो दिन बाद जब परिषद की बैठक दुबारा हुई तो अमरिका के प्रतिनिधि ने बताया कि राष्ट्रपति ट्रूमेन ने फारमूसा पर आक्रमण होने से बचाने के लिये दक्षिण कोरियाई दस्तों की सहायता के रूप में अमरीका को सेनाएँ तथा नौ सेनाएँ भेजने का आदेश दे दिया है। सुरक्षा परिषद ने फिर सिफारिश की कि संयुक्त राष्ट्रीय सदस्यों को कोरिया राज्यतन्त्र की सहायता तथा सशस्त्र आक्रमण का उत्तर देने तथा अन्तर राष्ट्रीय शांति की स्थापना के लिए सहायता देनी चाहिए। १६ सदस्यों ने सेनाएं, ५ ने चिकित्सक दस्ते तथा ५० ने आर्थिक सहायता प्रदान की। श्री राव ने कहा—भारत किसी अन्तर्राष्ट्रीय विवाद को आक्रमण से सुलझाने के विरुद्ध है इसलिए हमने इस प्रस्ताव को

स्वीकार कर लिया है और कोरिया में क्षेत्रीय ऐम्बुलस भेजी हैं। ७ जुलाई को परिषद ने संयुक्त कमांड स्थापित की तथा जनरल मेकार्थर को कोरिया में संयुक्त राष्ट्रीय सेनाओं का सेनापति बना दिया। सोवियत संघ ने इस प्रस्ताव को 'कलंकी' कहा और अमरीकी सैन्य हस्तक्षेप को बिना शर्त वापिस हटाने की मांग की।

७ अक्तूबर को संयुक्त राष्ट्र ने कोरियाई एकीकरण तथा पुनर्वास के लिए एक आयोग नियुक्त किया। एक माह पश्चात् मेकार्थर ने रिपोर्ट दी कि उत्तरी कोरिया की साम्यवादी सेना को चीनी साम्यवादी सेनाएँ सहायता दे रही हैं। सुरक्षा परिषद ने चीनी गणतंत्र के प्रतिनिधि को विवाद में भाग लेने के लिये आमन्त्रित किया। वार्ता असफल हो गई क्योंकि ची ी प्रधान मंत्री तथा विदेश मंत्री श्री चाउ-इन-ली ने कोरिया से सभी संयुक्त राष्ट्रीय सेनाओं को वापिस हटाने, फारमोसा छोड़ने तथा संयुक्त राष्ट्र में स्थान की माग की। १४ दिसम्बर को महासभा ने युद्ध विराम के लिए एल. बी. पियरसन (केनेडा), श्री बी. एन. राव (भारत) तथा श्री यू. ऐंतजम (ईरान) का एक ग्रुप कोरिया में एक संतोषप्रद संधि की स्थापना के लिये नियुक्त किया किन्तु शांतिपूर्ण समझौते के सभी प्रयास असफल रहे। राजनीतिक मामलों पर बोलते हुए आज्ञा का उल्लंघन करने पर मेकार्थर को १३ अप्रैल को वापिस बुला लिया गया और उनके स्थान पर जेनरल रिजवे की नियुक्ति हुई। दो माह बाद (जून १९५१) उत्तरी कोरियाई युद्ध विराम के लिये विचार विमर्श करने को तैयार हो गए और १८ माह तक वार्ता चलती रही। यद्यपि विराम रेखा के बारे में समझौता हो गया है परन्तु केवल एक बड़ी समस्या—युद्ध बन्दियों की वापसी अभी तक हल नहीं की जा सकी है। इस समय संयुक्त राष्ट्रीय कमांड के पास १२१००० युद्धबंदी हैं जब कि उत्तरी कोरियाइयों के पास केवल ११५०० हैं। पहली संख्या में से १३००० हजार स्थानांतरण चाहते हैं और शेष दक्षिण कोरिया में ही रहना चाहते हैं। बिना समझौता हुए

यही आधारभूत समस्या रह गई है कि युद्धवन्दियों को विना उनकी इच्छा के जवरदस्ती वापिस भेजा जाय या नहीं। १५ नवम्बर १९५२ को रूस ने युद्ध वन्दियों के सम्वन्ध में भारतीय प्रस्ताव को पूर्णतया अस्वीकार कर दिया और अव संयुक्त राष्ट्रीय कूटनीतिज्ञ कोरिया के प्रश्न पर एक शांतिपूर्ण समझौते में भारी निराशावादी वने हुए हैं। १९५२ के प्रथम भाग में संयुक्त राष्ट्रसंघ में कोरिया के प्रश्न पर खींच-तान जारी रही। समस्या को सुलझाने के लिए भारत अपने प्रस्ताव में दो वार संशोधन कर चुका है, किन्तु इस पर भी साम्यवादी देशों ने इसको ठुकरा दिया। वड़े दिन पर मार्शल स्टालिन ने कहा कि रूस कोरिया में युद्ध की समाप्ति चाहता है और इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए राजनीतिक कार्रवाई में सहयोग देने को तैयार है। उन्होंने पुनः यह आश्वासन दिया कि अमरीका तथा रूस में युद्ध अवश्यम्भावी नहीं। परन्तु कोरियाई शान्ति वार्तालाप में कोई प्रगति नहीं हुई। गत ५ मार्च (१९५३) में मार्शल स्टालिन की मृत्यु के वाद प्रधान मन्त्री श्री मालेनकोव ने फिर से कोरिया-युद्ध समाप्त करने के इच्छा प्रकट की। चीनी जन सरकार के प्रधान मन्त्री श्री चाउ-इन-ली ने प्रस्ताव रखा कि पहले कोरिया में अविलम्ब युद्ध वन्द हो और फिर ११ राष्ट्रों का एक सम्मेलन वुलाया जाय जो कि युद्धवन्दियों के वापिस अपने घर जाने के प्रश्न का निर्णय दे। किन्तु उनकी इस घोषणा का पश्चिमी देशों ने कोई स्वागत नहीं किया और उसे यह कह कर टाल दिया कि यह तो रूसी प्रस्ताव की नकल है। अप्रैल में कोरिया में घायल और रोगी युद्धवन्दियों की अदला-वदली का कार्य शुरू हो गया। पानमुनजोन में पुनः युद्ध-विराम वार्ताएं शुरू हो गई हैं। ८ जून को युद्ध-विराम रेखा के निर्धारण के वारे में साम्यवादियों और संयुक्त राष्ट्र में एक समझौता हो गया। परन्तु यह निश्चय हुआ कि स्वदेश वापिस लौटने को अनुत्सुक वन्दियों की कोरिया, में पांच तटस्थ राष्ट्रों का एक आयोग, देख-भाल ९० दिन तक करे।

पांच राष्ट्रों में स्विट्जरलैंड, स्वीडन, पोलैंड, चेकोस्लोवाकिया तथा भारत के नाम हैं। आयोग के किसी राष्ट्र को निषेधिकार प्राप्त नहीं होगा और सभी निर्णय बहुमत से किए जाएंगे। इस समझौता पर हस्ताक्षर होने के पहिले ही दक्षिण कोरिया के राष्ट्रपति सिंगमन री ने २५ हजार उत्तर कोरियाई युद्धबन्दियों को नजरबन्दी शिविरों से मुक्त कर समझौता की पीठ में छुरा भोंक दिया। कहा जाता है कि उक्त बन्दियों ने री सरकार के प्रति वफादारी प्रकट की थी और अब री उन्हें अपनी सेना में भरती करना चाहता है। डा० री के इस कांड से संयुक्त राष्ट्रों की प्रतिष्ठा को भारी आघात पहुँचा है। साम्यवादियों का कहना है कि री के इस कांड के पीछे अमरीका का स्पष्ट हाथ है। युद्ध-बन्दियों को पुनः पकड़ा जा रहा है। इस प्रकार कोरियाई युद्ध ने चतुर्थ वर्ष में पदार्पण किया और शान्ति युद्ध-जर्जरित कोरिया के द्वार तक आई और आकर लौट गई।

वर्मा—वर्मा के उत्तर-पूर्वी प्रदेश में चीनी राष्ट्रवादी सेनाओं की उपस्थिति के विरुद्ध वर्मा ने संयुक्त राष्ट्रसंघ म अपनी शिकायत पेश कर दी है। ये सेनाएं अनेक वर्षो से वर्मा की भूमि पर मौजूद हैं और वहीं से पुनः चीन की मुख्य भूमि पर चढाई करने का विचार कर रहीं हैं। कुछ महीनों से उनके उत्पात काफी बढ़ गए हैं। उन्होंने अनेक गांवों को लूटा और जलाया तथा विद्रोहियों को सरकार के वि द्ध सहायता दी हैं। निर्विवाद रूप से उन्होंने वर्मा की सार्वभौमिकता का उल्लंधन किया है। वर्मा ने अमेरिका की सहायता शर्तो को रद्द कर दिया है। यह एक खुला रहस्य है कि उक्त सेनाओं को युद्ध की सामग्री फारमोसा सरकार से थाईलैंड होकर प्राप्त होती है और इस काण्ड में अमरीका का भी पूरा हाथ है। संयुक्त राष्ट्रीय महासभा ने इस प्रश्न पर विचार करने के पश्चात् एक प्रस्ताव पास किया जिसमें वर्मा स्थित समस्त चीनी राष्ट्रवादी छापामार सैनिकों के तत्काल निशस्त्रीकरण

और नजरबन्दी या वहिष्कार की मांग की गई है। यह उल्लेखनीय है कि इस प्रस्ताव में चीनी राष्ट्रवादियों के स्थान पर "विदेशी सैनिकों" का ही प्रयोग किया गया है। उक्त प्रस्ताव से वर्मा को सन्तोष नही हुआ क्योंकि उसमें केवल वर्मा स्थित विदेशी सेनाओं को हटाने की ही वात है जब कि सुरक्षा-परिषद में पेश किये गये मूल प्रस्ताव में कुमितांग के आक्रमण की निन्दा करने और लड़ाई वन्द करने की सिफारिश की गई थी। यह समस्या अभी भी राष्ट्रसंघ के विचाराधीन है।

चेकोस्लोवाकिया की समस्या—फरवरी १९४८ में चेकोस्लोवाकिया म साम्यवादी सरकार शासन में आ गई। पिछली सरकार द्वारा संयुक्त राष्ट्र में नियुक्त चेक प्रतिनिधियों ने सुरक्षा परिषद में शिकायत की कि सोवियत संघ द्वारा शक्ति के प्रयोग से चेकोस्लोवाकिया की स्वतंत्रता को संकट पैदा हो गया है जिसको रूस ने अस्वीकार कर दिया। नये चेक प्रतिनिधियों ने परिणाम विहीन उन विवादों में भाग लेने से इन्कार कर दिया जिन पर ९ सम्मेलनों में परिषद ने विचार किया था। जांच के लिए उप-समिति के लिए चिली के प्रस्ताव को सोवियत संघ ने विटो कर लिया और कोई पग नहीं उठाया गया। प्रश्न का महत्व केवल प्रचारात्मक रहा।

युगोस्लावी शिकायत—दिसम्वर १९५१ में युगोस्लाविया ने सुरक्षा परिषद में शिकायत की कि सोवियत संघ की वलगेरिया, हंगरी, रूमानिया, अल्वेनिया आदि राज्यों में गड़बड़ी की हलचलों से उसकी सुरक्षा तथा शान्ति गम्भीर संकट में पड़ गई है। गम्भीरता से विचार करते हुए महासभा ने १४ दिसम्वर को सम्वन्धित सरकार के लिए निम्न सिफारिशें कीं: (अ) संयुक्त राष्ट्रीय आदेश-पत्र की भावना के के अनुसार अपने विवाद शान्त करें तथा अपने सम्वन्ध अच्छे वनावें; (व) मिली-जुली सीमा आयोग द्वारा सीमा सम्वन्धी विवाद हल करें तथा कूटनीतिक विनिमय द्वारा अपने विवाद हल करें। ५ सदस्यों के सोवियत गुट ने इस प्रस्ताव के विरोध में मत दिया। युगोस्लाविया

ने इन सिफारिशों पर अमल करने का वायदा किया।

आंग्ल-ईरानी तेल विवाद—२९ सितम्बर १९५१ को ब्रिटेन ने सुरक्षा परिषद में आंग्ल–ईरानी तेल विवाद को प्रस्तुत किया। ब्रिटिश प्रतिनिधि ने शिकायत की कि ईरानी मजलिस द्वारा १ मई को पारित राष्ट्रीयकरण विधेयक, जिससे आंग्ल-ईरानी तेल कम्पनी के अधिकार समाप्त होते है, १९३३ के तेल सुविधा समझौते की शर्तों का उल्लंघन करता है। समस्या अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के सुपुर्द की गई जिसने ५ जुलाई को एक अन्तरिम निषेधादेश जारी करके आंग्ल ईरानी तेल कम्पनी को न्यायालय के निर्णय तक अपना कार्य करते रहने का आदेश दिया। २५ सितम्बर को इस आदेश के विरोध में अबादान शोधशाला बन्द कर दी गई तथा ३५० ब्रिटिश प्रविधिकों को तेल क्षेत्रों से निष्कासित कर दिया गया। परिषद ने ईरानी प्रधान मन्त्री डा० मुसद्दीक को आमन्त्रित किया। उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद की निन्दा की तथा आंग्ल-ईरानी तेल कम्पनी के आरोपों को अस्वीकार कर दिया। परिषद ने किसी सुझाव के लिए बहुमत एकत्रित करने में असफल होने पर मामला बन्द कर देने का निर्णय किया। इसी बीच ब्रिटिश प्रतिनिधि ईरान से निष्कासित कर दिए गए तथा २२ जुलाई १९५२ को अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने निर्णय दिया कि तेल राष्ट्रीयकरण पर आंग्ल-ईरानी तेल कम्पनी का विवाद उसके अधिकार क्षेत्र से बाहर है। १४ अक्तूबर को ब्रिटेन ने तेल विवाद के आंशिक-हल के लिए ईरान की ४९० लाख पौंड की मांग को पूर्ण अस्वीकृत कर दिया तथा अन्तिम समझौते के लिए तेहरान में अपना मिशन भेजने से इन्कार कर दिया। ब्रिटेन ने माग की कि ५० करोड़ पौंड के तैल उद्योग की ईरानी राष्ट्रीयकरण से हुई क्षति की पूर्ति ४० वर्ष के लाभ से की जाय। दो दिन बाद ईरान ने ब्रिटेन के साथ राजनैतिक सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। विवाद अभी भी मध्य-पूर्व की शांति के लिए एक शक्तिशाली संकट बना हुआ है।

मोरक्को तथा ट्यूनीसिया का प्रश्न---नवम्बर १९५१ में, महासभा के छठे अधिवेशन में अरब लीग के ६ सदस्यों ने शिकायत की कि फ्रांस मोरक्को में चार्टर के सिद्धान्तों की अवहेलना कर रहा है। फ्रांस तथा मोरक्को के सम्बन्ध में हस्तक्षेप न करने की फ्रांस की अपील के कारण विचार स्थगित हो गया। १३ अरब एशियाई सदस्यों ने १६ अक्तूबर, १९५२ को महासभा के सातवें सम्मेलन की कार्यक्रम सूची में ट्यूनिस तथा मोरक्को के प्रश्न को पुनः रख दिया। यह कहा गया कि इन देशों में साम्राज्यवादी फ्रांसीसी वासियों द्वारा जनता की नागरिक स्वतन्त्रता तथा जनतांत्रिक अधिकारों का पूर्ण अपहरण मध्य-पूर्व में अत्यधिक विस्फोटक स्थिति का निर्माण कर रहा है। यह समस्या अभी भी विचाराधीन है।

संयुक्त राष्ट्रीय राजनीतिक समिति ने दक्षिण अमरीका के ११ देशों द्वारा संचालित और पाकिस्तान द्वारा संशोधित एक प्रस्ताव स्वीकार कर फ्रांस और मोरक्को से अपील की है कि मोरक्को वासियों को स्वशासन प्रदान करने के लिए वे तत्काल बातचीत करें। परन्तु फ्रांस ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। उधर ट्यूनीसिया में उपद्रव फिर से भड़क उठा है। ट्यूनीसिया के कामकर संघ के नेता एम फहरत हाशिद की किसी ने निर्मम हत्या कर दी जिसके प्रतिशोधस्वरूप कई फ्रांसीसी मार दिए गए। इस पर फ्रांसीसी सरकार ने ट्यूनीसिया के सभी राष्ट्रवादी नेताओं को गिरफ्तार करके नजरबन्द कर दिया है। मोरक्को में भी भीषण हिंसात्मक उपद्रवों के समाचार मिले हैं। श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित ने ट्यूनीसिया को विश्व का एक "खतरनाक स्थल" बताया और कहा कि यदि विश्व के इस महत्वपूर्ण क्षेत्र में शान्ति रखनी है, तो ट्यूनीसिया की जनता को शीघ्र ही आत्मनिर्णय का अधिकार दिया जाना चाहिये। राष्ट्रसंघ की अपील की उपेक्षा कर फ्रांस ने स्थिति को ओर भी जटिल बना दिया है। वर्तमान में फ्रांस की कठोर दमन-नीति जारी है।

ने इन सिफारिशों पर अमल करने का वायदा किया।

आंग्ल-ईरानी तेल विवाद—२९ सितम्बर १९५१ को ब्रिटेन ने सुरक्षा परिषद में आंग्ल–ईरानी तेल विवाद को प्रस्तुत किया। ब्रिटिश प्रतिनिधि ने शिकायत की कि ईरानी मजलिस द्वारा १ मई को पारित राष्ट्रीयकरण विधेयक, जिससे आंग्ल-ईरानी तेल कम्पनी के अधिकार समाप्त होते हैं, १९३३ के तेल सुविधा समझौते की शर्तों का उल्लंघन करता है। समस्या अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के सुपुर्द की गई जिसने ५ जुलाई को एक अन्तरिम निषेधादेश जारी करके आंग्ल ईरानी तेल कम्पनी को न्यायालय के निर्णय तक अपना कार्य करते रहने का आदेश दिया। २५ सितम्बर को इस आदेश के विरोध में अवादान शोध-शाला बन्द कर दी गई तथा ३५० ब्रिटिश प्रविधिकों को तेल क्षेत्रों से निष्कासित कर दिया गया। परिषद ने ईरानी प्रधान मन्त्री डा० मुसद्दीक़ को आमन्त्रित किया। उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद की निन्दा की तथा आंग्ल-ईरानी तेल कम्पनी के आरोपों को अस्वीकार कर दिया। परिषद ने किसी सुझाव के लिए बहुमत एकत्रित करने में असफल होने पर मामला बन्द कर देने का निर्णय किया। इसी बीच ब्रिटिश प्रतिनिधि ईरान से निष्कासित कर दिए गए तथा २२ जुलाई १९५२ को अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने निर्णय दिया कि तेल राष्ट्रीयकरण पर आंग्ल-ईरानी तेल कम्पनी का विवाद उसके अधिकार क्षेत्र से बाहर है। १४ अक्तूबर को ब्रिटेन ने तेल विवाद के आंशिक-हल के लिए ईरान की ४९० लाख पौंड की मांग को पूर्ण अस्वीकृत कर दिया तथा अन्तिम समझौते के लिए तेहरान में अपना मिशन भेजने से इन्कार कर दिया। ब्रिटेन ने मांग की कि ५० करोड़ पौंड के तैल उद्योग की ईरानी राष्ट्रीयकरण से हुई क्षति की पूर्ति ४० वर्ष के लाभ से की जाय। दो दिन बाद ईरान ने ब्रिटेन के साथ राजनैतिक सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। विवाद अभी भी मध्य-पूर्व की शांति के लिए एक शक्तिशाली संकट बना हुआ है।

मोरक्को तथा ट्यूनीसिया का प्रश्न—नवम्बर १९५१ में, महासभा के छठे अधिवेशन में अरब लीग के ६ सदस्यों ने शिकायत की कि फ्रांस मोरक्को में चार्टर के सिद्धान्तों की अवहेलना कर रहा है। फ्रांस तथा मोरक्को के सम्बन्ध में हस्तक्षेप न करने की फ्रांस की अपील के कारण विचार स्थगित हो गया। १३ अरब एशियाई सदस्यों ने १६ अक्तूबर, १९५२ को महासभा के सातवें सम्मेलन की कार्यक्रम सूची में ट्यूनिस तथा मोरक्को के प्रश्न को पुनः रख दिया। यह कहा गया कि इन देशों में साम्राज्यवादी फ्रांसीसी वासियों द्वारा जनता की नागरिक स्वतन्त्रता तथा जनतांत्रिक अधिकारों का पूर्ण अपहरण मध्य-पूर्व में अत्यधिक विस्फोटक स्थिति का निर्माण कर रहा है। यह समस्या अभी भी विचाराधीन है।

संयुक्त राष्ट्रीय राजनीतिक समिति ने दक्षिण अमरीका के ११ देशों द्वारा संचालित और पाकिस्तान द्वारा संशोधित एक प्रस्ताव स्वीकार कर फ्रांस और मोरक्को से अपील की है कि मोरक्को वासियों को स्वशासन प्रदान करने के लिए वे तत्काल बातचीत करें। परन्तु फ्रांस ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। उधर ट्यूनीसिया में उपद्रव फिर से भड़क उठा है। ट्यूनीसिया के कामकर संघ के नेता एम फहरत हाशिद की किसी ने निर्मम हत्या कर दी जिसके प्रतिशोधस्वरूप कई फ्रांसीसी मार दिए गए। इस पर फ्रांसीसी सरकार ने ट्यूनीसिया के सभी राष्ट्रवादी नेताओं को गिरफ्तार करके नजरबन्द कर दिया है। मोरक्को में भी भीषण हिंसात्मक उपद्रवों के समाचार मिले हैं। श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित ने ट्यूनीसिया को विश्व का एक "खतरनाक स्थल" बताया और कहा कि यदि विश्व के इस महत्वपूर्ण क्षेत्र में शान्ति रखनी है, तो ट्यूनीसिया की जनता को शीघ्र ही आत्मनिर्णय का अधिकार दिया जाना चाहिये। राष्ट्रसंघ की अपील की उपेक्षा कर फ्रांस ने स्थिति को और भी जटिल बना दिया है। वर्तमान में फ्रांस की कठोर दमन-नीति जारी है।

प्रादेशिक प्रबन्ध—आदेश-पत्र अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा की स्थापना के लिये वर्तमान प्रादेशिक प्रबन्धों को स्वीकार करता है (धारा ५२) किन्तु कहा गया है कि बिना सुरक्षा परिषद से अधिकार प्राप्त किये कोई भी सैनिक कार्रवाई नही की जा सकती। सात अरब राज्यों लेबनान, मिस्र, ट्रांसजोर्डन, ईराक, सउदी अरब, सिरिया तथा यमन ने पारस्परिक राजनैतिक तथा सैनिक सहयोग के लिये अरब लीग की स्थापना की। पारस्परिक सहयोग की अन्तः अमरीकी संधि पर ३ मार्च १९४५ को हस्ताक्षर हुए। ३० अगस्त १९४७ को इसका नवीकरण किया गया जिसमें कहा गया कि किसी भी अमरीकी राज्य के खिलाफ आक्रमण सभी के खिलाफ अक्रमण समझा जायेगा। २२ सितम्बर को यूरोप के १७ राज्यों ने मार्शल सहायता योजना पर हस्ताक्षर किये। इसी बीच सोवियत संघ ने १९४७ की मोलटोव योजना के अंतर्गत चेकोस्लोवाकिया, युगोस्लाविया, पोलैंड, बल्गेरिया, रूमानिया, हंगरी, अल्बानिया, उत्तरी कोरिया, कम्युनिस्ट चीन, बिलरूसिया तथा यूक्रेन के साथ कई व्यापारिक तथा सैनिक समझौते किये। १७ मार्च १९४८ को ब्रिटेन फ्रांस, बेल्जियम, नीदरलैंड तथा लक्सेम्बर्ग ने पारस्परिक सैनिक सहयोग, आर्थिक, सहयोग तथा सांस्कृतिक आदान-प्रदान के ५० वर्षीय ब्रुसेल्स समझौता पर हस्ताक्षर किये। ४ अप्रल १९४९ को वाशिंगटन में एक प्रादेशिक सुरक्षा समझौता पर हस्ताक्षर किया गया। हस्ताक्षर करने वाले थे: अमरीका, ब्रिटेन, बेल्जियम, कनाडा, डेन्मार्क, फ्रांस, इटली, आइसलैंड, लक्सेम्बर्ग, नीदरलैंड, नार्वे और पुर्तगाल। इस समझौते का नाम उत्तरी अतलांतिक संधि संस्था रखा गया। २० फरवरी १९५२ को यूनान और तुर्की इसमें शामिल कर लिये गये। इसके अतिरिक्त यूरोपीय सुरक्षा संस्था के नाम से एक और संस्था स्थापित की गई। १ जुलाई १९५० को मार्शल योजना दल ने एक यूरोपीय अदायगी संस्था की स्थापना की। यूरोपियन इस्पात और कोयला वर्ग अर्थात् शूमां योजना जनवरी १९५१ में ही पश्चिमी राष्ट्रों में

आर्थिक सहयोग कायम करने की कोशिश करती आ रही है। अमरीका ने भी आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और जापान के साथ कई प्रशान्त सुरक्षा समझौते किये।

अणु नियंत्रण

अणु शक्ति पर नियंत्रण के लिये प्रथम महासभा ने परमाणु शक्ति आयोग (कमीशन) की स्थापना की, जिसमें सुरक्षा परिषद के सदस्य और कनाडा को रखा गया। इसने राष्ट्रीय शस्त्रीकरण से अणु-शक्ति के प्रयोग को रोकने का बीड़ा उठाया। उक्त आयोग की प्रथम बैठक अमरीका के बर्नार्ड बरूच के नेतृत्व में १४ जून १९४६ को न्यूयार्क में हुई। अमरीका ने संयुक्त राष्ट्रसंघीय अणु विकास संस्था की स्थापना पर जोर दिया जिसका उद्देश्य अणु शक्ति पर नियंत्रण कायम करना होगा। सोवियत संघ ने कहा कि सबसे पहले जिसके पास अणुबम हैं उन्हें नष्ट कर दिया जाय उसके बाद अणु नियंत्रण की ओर कदम उठाया जाय। इससे अणु नियंत्रण के मामले में गतिरोध पैदा हो गया। ११ जनवरी १९५१ को छठवीं महासभा ने उच्च आयोग को भंग कर दिया और सेना में विघटन के लिये १२ राष्ट्रों के एक निशस्त्रीकरण आयोग की स्थापना की। २८ मई १९५२ को अमरीका, ब्रिटेन, और फ्रांस ने निश्चय किया कि रूस में अमरीका और कम्युनिस्ट चीन की सेनाएं १५ लाख हो जानी चाहिये और फ्रांस तथा ब्रिटेन के सैनिकों की संख्या ७ लाख और ८ लाख के बीच होनी चाहिये। सोवियत संघ ने उक्त प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। १२ सितम्बर १९४९ को प्रेसिडेन्ट ट्रूमेन ने घोषणा की कि रूस में अणुबम का विस्फोट हुआ है। २६ सितम्बर १९५२ को ब्रिटिश अणुबम का प्रयोग मोटेवेला द्वीपों में किया गया और अमरीकी उद्जन बम का प्रयोग ४ नवम्बर को मार्शल द्वीप के पास किया गया। मार्च, १९५३ में संयुक्त राष्ट्रीय महासभा की राजनीतिक समिति ने १४ राष्ट्रों का एक प्रस्ताव स्वीकार कर लिया

जिसमें निशस्त्रीकरण पर बात चीत जारी रखने की मांग की गई। प्रस्ताव के पक्ष में ५० तथा विपक्ष में ५ मत रहे। भारत तटस्थ रहा।

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय सयुक्त राष्ट्रसंघ का मुख्य न्यायिक अंग है। । संघ का यह अंग नवीन नहीं है। यह वही पुरानी अंतर्राष्ट्रीय अदालत है जिसे राष्ट्रसंघ ने १९२१ मे हेग में स्थापित किया था। चार्टर (धारा ९२–९६) ने उक्त पुराने न्यायालय में केवल जान डाली है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के तमाम सदस्य अंतर्राष्ट्रीय अदालत के आधीन हैं न्यायिक प्रश्नों पर आधारित सदस्य राज्यों के सभी झगड़ों का निर्णय इस न्यायालय में अन्तर्राष्ट्रीय विधान के अनुसार होता है (धारा ९२–९६)। वह देश भी जो संयुक्त राष्ट्र का सदस्य नहीं है, सुरक्षा परिषद की सिफारिशों के आधार पर महासभा द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के विधान की पार्टी बनाया जा सकता है। व्यक्तिगत तौर पर अपने मामले न्यायालय के सामने नहीं रखे जा सकते है। केवल राज्य न्यायालय के सम्मुख उपस्थित हो सकते हैं।

इस न्यायालय में १५ न्यायाधीश होते है और विधि के अनुसार ये व्यक्ति उच्च नैतिक चरित्र तथा अपने राज्य के कानून के विशेषज्ञ अथवा अन्तर्राष्ट्रीय न्याय में पारदर्शी होने चाहियें। कोई दो न्यायाधीश एक ही राज्य के नही होने चाहियें। न्यायाधीशों का साधारण कार्य काल ९ वर्ष है और वे पुनः निर्वाचित हो सकते हैं। प्रथम चुनाव में ५ तीन वर्ष के लिये, ५ छः वर्ष के लिये तथा शेष ५ नौ वर्ष के लिये चुने गये थे। न्यायाधीशों की निर्वाचन प्रणाली पेचीदी है। राष्ट्रीय कानून विशेषज्ञ द्वारा चार प्रसिद्ध नियमज्ञों को नामजद किया जाता है परन्तु उसमें दो से अधिक अपने राष्ट्र से सम्बन्धित नहीं होने चाहियें। इस प्रकार नामजद सूची में से न्यायाधीशों का निर्वाचन महासभा तथा सुरक्षा परिषद एक दूसरे से स्वतन्त्र रहकर करती है। विधि में कहा गया है कि विश्व की सभी प्रमुख विधियों को न्यायालय में प्रतिनि-

धित्व मिलना चाहिये। जो कानून विशेषज्ञ सुरक्षा परिषद और महासभा में पूर्ण बहुमत प्राप्त कर लेते हैं वे स्वभावतः ही चुन लिये जाते हैं। साधारणतया किसी मामले की सुनवाई १५ न्यायाधीश एकत्रित मिलकर करते हैं किन्तु कम से कम ९ न्यायाधीश उपस्थित रहने से राय दे सकते हैं। न्यायालय के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष तीन वर्ष के लिये न्यायालय द्वारा चुने जाते हैं और वे पुनः निर्वाचित भी हो सकते हैं। न्यायाधीशों का वार्षिक वेतन २१००० डालर (लगभग ५२५० पौंड) होता है किन्तु इसके अतिरिक्त अध्यक्ष को विशेष भत्ता मिलता है। स्मरण रहे कि कोई भी न्यायाधीश कोई राजनैतिक अथवा शासन सम्बन्धी अथवा किसी दूसरे पेशे में योगदान नही कर सकता। केवल न्यायालय को ही न्यायाधीशों के वर्खास्त करने का अधिकार है परन्तु इस विषय में अन्य न्यायाधीशों का एकमत होना आवश्यक है। सव न्यायाधीश अपने अपने कार्यकाल में कुटनीतिज्ञ सुविधाओं के अधिकारी होते हैं। झगड़ा करने वाले राज्यों के न्यायाधीशों को भी न्यायालय में भाग लेने के लिये आमंत्रित कर सकते है यदि उस राज्य के प्रतिनिधि अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायाधीश न हों। गैर सदस्य राज्य अपने राज्य के प्रतिनिधि के रूप में दूसरे सदस्य राज्य के न्यायाधीश को मनोनीत कर सकते है यदि उस राज्य के प्रतिनिधि अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायाधीश न हों।

सदस्य राज्य द्वारा रखे गये प्रत्येक न्यायिक प्रश्न तथा संयुक्त राष्ट्र आदेश पत्र में अनुबंधित मामलें तथा सभी लागू संधियां और रीतियाँ इसके अधिकार क्षेत्र में हैं। न्यायालय के सामने निम्नलिखित मामले पेश किये जाते है। (१) एक सदस्य राज्य का अधिकार है कि वह दूसरे किसी राज्य के साथ अपने झगड़े को इसके सामने उपस्थित कर सकें। (२) अन्तर्राष्ट्रीय संधियों, समझौतों तथा परम्पराओं के सम्बन्ध में यदि कोई वाद-विवाद हो तो वह इनके सामने पेश किया जा सकता है। (३) कोई राज्य यदि अल्प काल अथवा सदा के लिये अपने मामलों का निर्णय इस न्यायालय से कराने का नि.

तो ऐसे राज्यों के मामले स्वभावतः ही इस न्यायालय के विचाराधीन हो जाते हैं। इस प्रकार पुराने न्यायालय की भांति नये न्यायालय के भी 'अनिवार्य" तथा "एच्छिक" अधिकार हैं। (४) इसके अतिरिक्त महासभा तथा सुरक्षा परिषद किसी वैधानिक प्रश्न का न्यायालय से मंत्रणा पाकर विचार कर सकती है। सुरक्षा परिषद अथवा राष्ट्र संघ की विशिष्ट संस्थाओं के कोई भी अंग, जैसे आर्थिक तथा सामाजिक परिषद, संरक्षक परिषद आदि, महासभा द्वारा विशेष अधिकार पाकर परामर्श सम्बन्धी विचार विनिमय कर सकते हैं। यह न्यायालय अन्तर्राष्ट्रीय परम्परा, पुरातन रीति, स्वीकृत विधि, विशिष्ट मामलों के निर्णय आदि सिद्धान्त के आधार पर राय देता है। स० रा० के प्रत्येक सदस्य को न्यायालय के निर्णय को, जिस किसी भी मामलों से वह सम्बंधित हो अंगीकार करना पड़ता है। यदि कोई पार्टी न्यायालय के निर्णय को अस्वीकार करती है तो अन्य पार्टी सुरक्षा परिषद को इस निर्णय को क्रियान्वित करने के लिये उपयुक्त निर्देश दे सकती है।

अन्तर्राष्ट्रीय मामलों की सभी कार्यवाहियां जनता के सम्मुख होती हैं और सभी निर्णय उपस्थित न्यायाधीशों के बहुमतों से होता है। न्यायिक अवकाशों के अतिरिक्त न्यायालय का कार्यक्रम स्थायी रूप से चलता रहता है। वर्तमान में नीदरलैंड (हालैंड) के हेग शहर के शान्ति प्रासाद (पीस पैलेस) में स्थित है, किन्तु उसकी बैठक कहीं भी हो सकती है। न्यायालय का उद्घाटन अधिवेशन ३ अप्रैल १९४६ में हुआ। इस समय श्री आरनोल्ड डी मैक्नैयर (ब्रिटेन), इसके अध्यक्ष हैं। हमारे विधान निर्माताओं में कानून विशेषज्ञ श्री बी० एन० राव नवम्बर १९५२ में नौ वर्ष के लिये अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायाधीश चुने गये हैं। संक्षेप में न्यायालय की निष्पक्षता सर्वमान्य है।

(क) साधारण-विवाद का निर्णय—न्यायालय के कार्यकलाप

की आलोचना करते समय हमें दो प्रकार के मामलों का ध्यान रखना चाहिए। पहला, विभिन्न राज्यों का साधारण न्यायिक झगड़ा; दूसरा, संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रमुख अंगों में उत्थापित विवाद। न्यायालय पहले में निर्णय देता है और दूसरे में परामर्श देता है।

(१) २१ अक्तूबर १९४६ में ब्रिटेन के चार जहाज अल्बेनिया के तट के किनारे कोर्फू चैनेल में सामुद्रिक बम्ब (माइन) के विस्फोट के कारण क्षतिग्रस्त हुए। उसमें २४ ब्रिटिश नाविक मृत्युग्रस्त हुए और अनेक घायल हुए। अल्बेनिया सं० रा० संघ का सदस्य नहीं था। ब्रिटेन ने इस घटना के लिए अल्बेनिया को उत्तरदायी समझा और क्षतिपूर्ति के लिए दावा किया। सुरक्षा परिषद ने इस जटिल प्रश्न पर अल्पकाल विचार करने के बाद इसे अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय को सौंप दिया। अल्बेनिया ने चेकोस्लोवाकिया के न्यायाधीश ईकर को अपना प्रतिनिधित्व करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में भेजा। बहुमत से न्यायालय ने दिसम्बर १९४९ में अल्बेनिया से एक करोड़ बीस लाख रुपया क्षतिपूर्ति लेने का निर्णय दिया। अभी तक अल्बेनिया ने इस क्षतिपूर्ति को देना स्वीकार नहीं किया और समस्या का हल नहीं हुआ है।

(२) ३ जनवरी १९४९ को एक पिरुवियन राजनैतिक नेता श्री डीलाटोरे ने कोलम्बिया के दूतावास में शरण ली और कोलोम्बिया के राजदूत ने पिरुवियन सरकार को उक्त शरणार्थी को विदेश जाने की आज्ञा देने के लिए अनुरोध किया। इस पर पिरुवियन सरकार ने टोरे को राजनैतिक शरणार्थी स्वीकार नहीं किया बल्कि उस पर फौजदारी का दोषारोपण किया। इस झगड़े को अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में पेश किया गया। इसमें दो जटिल प्रश्न थे—पहला क्या कोलम्बिया की सरकार को अधिकार है कि वह टोरे के राजनीतिक अपराधी होने के विषय में अपना निर्णय दे सके? दूसरा क्या पिरुवियन सरकार अपराधी को विदेश जाने की आज्ञा देने के लिए बाध्य है? अन्तर्राष्ट्रीय

न्याय में ऐसा कोई विधान नहीं है जिसके अनुसार इस समस्या का समाधान हो सकता। गम्भीर आलोचना के बाद न्यायालय ने २०, नवम्बर १९५० को निर्णय दिया कि कोलम्बिया को पिरुवियन नेता को अभय दान देने का कोई अधिकार नहीं है।

(३) १९५२ के नवम्बर में तीन वर्ष पुरातन आंग्ल-नार्वेजियन मछली विवाद का निर्णय दिया। सन् १९३५ में नार्वे की सरकार ने अपने तट के कुछ भागों में एक विशेष घोषणा द्वारा मछली पकड़ना निषिद्ध कर दिया था। ब्रिटेन का कहना है कि इस मामले में विगत महायुद्ध के अन्त तक नार्वे से कोई समझौता नहीं हुआ था। इसलिए ब्रिटेन के मछुवों को क्षति हुई। उसकी पूर्ति के लिये नार्वे पर दावा किया। न्यायालय ने नार्वे के पक्ष में अपना निर्णय दिया।

(४) मई १९५१ में ब्रिटेन ने आंग्ल–ईरानियन तेल विवाद को (पृ० १९४ म देखिए) न्यायालय के सामने उपस्थित किया। ईरान के प्रधान मन्त्री मुसद्दिक ने स्वयं न्यायालय में अपने मामले की वकालत की। उन्होंने आंग्ल–ईरानियन तेल सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण का समर्थन किया। न्यायालय के ब्रिटिश अध्यक्ष मेकनैयर को इस मामले में अध्यक्षता से वंचित होना पड़ा, क्योंकि ब्रिटेन इस मामले में संयुक्त था। इसलिये एल० साल्वाडर के डा० गुरार्म जो कि उपअध्यक्ष थे, अध्यक्ष बने। रूसी न्यायाधीश गोलुंस्की बीमारी के कारण अनुपस्थित थे। डा० मुसद्दिक ने स्पष्ट कहा कि "आप धमकी से एक छोटे राज्य के अधिकार को (ब्रिटेन जैसे कुटिल राज्य के आर्थिक शोषण नीति से) वंचित नहीं कर सकते।" २२ जुलाई सन् १९५२ को न्यायालय ने इस समस्या को हल करने में अपनी असमर्थता प्रकट की। परिणाम स्वरूप ब्रिटेन की क्षतिपूर्ति का दावा अपूर्ण रह गया। न्यायालय ने हाल ही में जर्मन दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका में ब्रिटेन के अधिकार के मामले में राय दी।

(ख) **परामर्श सूचक विचारः**—नवम्बर १९४७ में महासभा ने न्यायालय से निम्नलिखित दो प्रश्नों पर मंत्रणा मांगी।

(१) क्या कोई सदस्य अपने अंगीकार मत (वोट) को किसी शर्त पर दे सकता है ?

(२) क्या कोई सदस्य अपने अंगीकार मत को प्रवेश प्राथियों के विषय में ऐसी शर्त के आधीन कर सकता है जिसका कि चार्टर की धारा ४ में कोई उल्लेख नहीं है ? २८ मई १९४८ में न्यायालय ने दोनों प्रश्नों का उत्तर "ना" दिया। पुनः मार्च १९५० में दो और सलाह सुरक्षा परिषद ने न्यायालय से मांगीं।

(१) यदि किसी राज्य का प्रतिनिधि, सदस्य अथवा गर सदस्य, रा० सं० के विशेष आयोग के कर्त्तव्य पालन करते समय क्षतिग्रस्त हो, तो, राष्ट्रसंघ अपराधी राज्य से पूर्ति का दावा कर सकता है या नहीं।

(२) इसी प्रकार यदि राष्ट्रसंघ की जान या माल की क्षति हो तो रा० सं० उस राज्य पर दावा कर सकता है या नहीं। न्यायालय ने दोनों प्रश्नों का उत्तर रा० सं० के पक्ष में दिया।

वर्तमान समय में न्यायालय २५ विभिन्न जटिल विषयों का अध्ययन कर उन पर अन्तर्राष्ट्रीय विधान प्रस्तुत कर रहा है। इनमें मध्यस्थ प्रणाली, राज्य के उत्तरदायित्व, शरण देने का अधिकार, संधि का नियम, समुद्र की सीमा आदि सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय न्याय आयोग (१५ सदस्य) अन्तर्राष्ट्रीय-अपराध-कानून, जिनमें शान्ति के विरुद्ध अपराध, युद्ध अपराध और मानवता के विरुद्ध अपराध है—तथा राज्य के अधिकार और कर्त्तव्य सम्बन्धी घोषणा-पत्र तैयार कर रहा है।

आर्थिक तथा सामाजिक परिषद

धारा ५५ का वाचन है कि राष्ट्रों में शांति तथा मित्रतापूर्ण सम्बन्धों

के लिए आवश्यक स्थिरता पूर्ण स्थिति तथा कल्याण के निर्माण के लिए आर्थिक तथा सामाजिक परिषद का निर्माण हुआ था। यह (अ) उच्चतर जीवन स्तर, पूर्ण नौकरियां, आर्थिक तथा सामाजिक प्रगति तथा विकास के लिए स्थितियां; (ब) अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक, सामाजिक, स्वास्थ्य तथा सम्बन्धित समस्याओं के हल तथा अन्तर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक सहयोग और (स) मानव अधिकारों तथा किसी जाति, लिंग, भाषा तथा धर्म के भेदभाव के विना मूलभूत स्वतंत्रता की स्वीकृति, को आगे बढ़ाती है। सभी सदस्य इन प्रयोजनों की प्राप्ति के लिए संयुक्त राष्ट्र के साथ संयुक्त तथा पृथक सहयोग देने की प्रतिज्ञा करते है। आर्थिक तथा सामाजिक परिषद में १८ सदस्य होते हैं। जिनमें छः प्रतिवर्ष महासभा द्वारा ३ वर्ष के लिए निर्वाचित किए जाते हैं। निवृत्त होने वाले (रिटायरिंग) सदस्य तुरन्त पुनर्निर्वाचन के योग्य होते हैं। वर्तमान समय में इसमें क्यूबा, चेकोस्लोवाकिया, मिस्र, अर्जेंटाइना, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, यूरेगवे (uruguay), स्वीडन, चीन, वेल्जियम, फ्रांस, पोलैंड, रूस, आस्ट्रेलिया, भारत, टर्की, वेंजुऐला, ब्रिटेन, फिलिपाइन्स आदि है। मैसूर के दीवान श्री रामास्वामी मुदालियर १९४६ में इसके प्रथम अध्यक्ष चुने गए थे। मतदान इसमें साधारण बहुसंख्या द्वारा होता है। प्रत्येक सदस्य का एक मत होता है। परिषद आयोग और समितियों द्वारा कार्य करती है। नौ कार्यकारी आयोग स्थापित किए गए है जिनके सदस्यों की संख्या कोष्ट में दे दी गई है—आर्थिक तथा वृत्ति (१५); यातायात और संचार (१५); राजकर सम्बंधी (१५); सांख्यिकी (१२); जनसंख्या (१५); सामाजिक (१८); मानव अधिकार (१८); महिलाओं का पद (१५); नशीली दवाइयों (१५); तीन प्रादेशिक आयोग भी स्थापित किए गए है: यूरोप के लिए आर्थिक आयोग (१८); एशिया और सुदूरपूर्व के लिए (१३ पूर्ण सदस्य तथा ९ सम्बन्धित सदस्य); लेटिन अमेरिका के लिए (१५)।

इसके अतिरिक्त, आर्थिक तथा सामाजिक परिषद 'विशिष्ट ऐजें-सियों' जो कि विशिष्ट अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को हल करने के लिए स्थापित अन्तर्राष्ट्रीय संगठन हैं, की-गतिविधियों में सहयोग देती है। वे (संगठन) हैं—अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ (आइ० एल० ओ०), खाद्य तथा कृषि संघ (एफ० ए० ओ०), संयुक्त राष्ट्रीय शक्षणिक, वज्ञानिक तथा सांस्कृतिक संघ (यूनेस्को), अन्तर्राष्ट्रीय पुर्ननिर्माण तथा विकास बैंक (बैंक), अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष (फंड), विश्व डाक संघ (U. P. U.), अन्तर्राष्ट्रीय तार संचार संघ (I. T. U.), विश्व स्वास्थ्य संघ (W. H. O.), अन्तर्राष्ट्रीय शरणार्थी संघ (I. R. O.)। संक्षेप में आज्ञापत्र (चार्टर) निर्माताओं ने, जिन्हें ध्यान था कि आर्थिक तथा सामाजिक कुप्रबन्ध से प्रायः युद्ध छिड़ जाते हैं, मनुष्य मात्र को इस आवश्यकता से जो कि 'शान्ति का मूलतत्व है' मुक्त करने का विचार किया।

जब से संयुक्त राष्ट्रसंघ की उत्पति हुई, वह तभी से भूख, बीमारी, निर्धनता और अज्ञानता का मुकाबला करता आ रहा है। १९५० में उसने अविकसित देशों की सहायता के लिए टैक्निकल सहायता योजना चालू की। इस योजना का बजट ८ करोड़ ६० लाख डालर का था। इसका उदेश्य कृषि, उद्योग, शिक्षा तथा स्वास्थ्य में विकास लाना है। व्यापारिक गतिरोधों को दूर कर विश्वव्यापी व्यापारिक व्यवस्था चालू करने के लिए तटकर तथा व्यापार सम्बन्धी आय समझौता किया गया। ५५ महीने तक काम करने के बाद अन्तर्राष्ट्रीय शरणार्थी संस्था ३१ जनवरी १९५२ को भंग कर दी गई। इसने १० लाख शरणार्थियों को बसाया, ७३००० का स्थानान्तरण किया और मध्य-पूर्व के १६ लाख शरणार्थियों की सहायता की। ४ वर्षों में अन्तर्राष्ट्रीय बैंक ने लेटिन अमरीका, यूरोप और एशिया को ७१६,०००००० डालर ऋण प्रदान किया।

संरक्षक परिषद (ट्रस्टीशिप कौंसिल)

संयुक्त राष्ट्रीय सदस्यों ने आधीन व्यक्तियों के कल्याण तथा विकास और स्वायत्त शासन की ओर उनके प्रगति जनक विकास को बढ़ाना अपना पुण्य कर्तव्य स्वीकार किया। यह प्रणाली उन प्रदेशों पर लागू होती है जो पहले लीग आफ नेशन्स के शासनादेश के आधीन कर लिये गये थे, द्वितीय विश्व युद्ध समाप्ति पर शत्रु से लिये गये प्रदेश, तथा वह प्रदेश जो स्वयं संरक्षक परिषद के अंतर्गत आ गए है। वह देश जो संयुक्त राष्ट्र का सदस्य है इस ट्रस्टीशिप कौंसिल से शासित नहीं हो सकता। ट्रस्टीशिप सिस्टम के उद्देश्य निम्नलिखित है: (अ) आन्तरिक शांति व सुरक्षा को आगे बढ़ाना; (ब) प्रन्यासित प्रदेश (Trust territories) के वासियों को स्वायत्त शासन या स्वतंत्रता की ओर बढ़ाना; (स) मानव-अधिकारों के लिये आदर भावना का प्रोत्साहन और विश्व के व्यक्तियों के पारस्परिक आश्रय की स्वीकृति तथा (द) न्याय प्रशासन की दृष्टि में सब के साथ समानता। (धारा ७३-९१)

संरक्षक परिषद में प्रन्यासित प्रदेशों के प्रशासक सदस्य, सुरक्षा परिषद के वे स्थायी सदस्य जो प्रन्यासित प्रदेश का शासन नहीं करते हैं, तथा (महासभा द्वारा तीन वर्ष के लिये निर्वाचित) अन्य पर्याप्त सदस्य, प्रन्यासित प्रदेशों के शासक देश तथा उक्त प्रदेशों का शासन न करने वाले देशों में बराबर विभाजन के लिये होते हैं। इसके निम्न-कार्य हैं.—प्रन्यासित प्रदेश निवासियों के विकास के लिये प्रश्नावली तैयार करना, प्रशासनिक अधिकारियों की रिपोर्ट पर विचार तथा परीक्षण, निवासियो के आवेदन पत्रों का परीक्षण तथा समय-समय पर निरीक्षण करना। इस परिषद में मतदान साधारण बहुसंख्या से होता है। अभी तक २७०० लाख व्यक्ति, १३० लाख वर्गमील क्षेत्र विदेशी शासन के आधीन हैं। इस समय ब्रिटेन, टांगीनीका केमरून्स तथा टोगोलैंड के आधे भाग पर; फ्रांस, केमरून्स तथा टोगोलैंड के अन्य आधे

भाग पर; बेल्जियम, थांडा युरुंडी पर; आस्ट्रेलिया, न्यूगिनी तथा नोरू पर; न्यूजीलैंड, पश्चिमी समोआ पर शासन कर रहे हैं। 'कपट क्षेत्र' के लिये एक प्रन्यासिक समझौते को सुरक्षा परिषद का समर्थन प्राप्त हो गया है, यह जापानी पूर्वादेशित प्रायः द्वीपों, मार्शल्स, मेरीनास तथा केरोलाइन्स जिन्हें अब 'प्रशांत प्रायः द्वीपों का प्रवेश' कहते हैं और जो संयुक्त राष्ट्र अमेरिका द्वारा प्रशासित है, से सम्बन्धित है। १९४९ में महासभा ने इटली के सोमालीलैंड को १० वर्ष के लिये प्रन्यासिक परिषद के आधीन कर दिया जिसके बाद यह स्वतंत्र हो जायगा। इटली प्रशासनिक अधिकारी घोषित हुआ था। प्रन्यासिक अधिकार के लिये कोई समय सीमा निश्चित नहीं है।

सचिवालय

इसमें सुरक्षा परिषद की सिफारिश पर महासभा द्वारा नियुक्त महामंत्री तथा वे कर्मचारी वृन्द, जिनकी आवश्यकता होती है, होते हैं। महामंत्री के कार्य निम्न होते हैं (धारा ९८, ९९)--(१) संयुक्तराष्ट्र का मुख्य प्रशासक होना; (२) आंतरिक शान्ति तथा सुरक्षा के लिये खतरनाक मामलों को सुरक्षा परिषद को सौंपना; (३) संयुक्त राष्ट्र के कार्य की वार्षिक तथा आवश्यक पूरक रिपोर्ट बनाकर महासभा को देना। संयुक्त राष्ट्र के किसी सदस्य की किसी भी संधि को रजिस्टर करना तथा प्रकाशित करना। सचिवालय के सदस्यों के चुनाव तथा सेवा की शर्तें नियुक्त करते समय कार्यदक्षता, योग्यता तथा सत्यता का ध्यान रखना किन्तु आदेशपत्र (Charter) में यह नियम है कि स्टाफ (कर्मचारी वृन्द) का चुनाव जहाँ तक हो सके विस्तृत भौगोलिक आधार पर होना चाहिये। उसमें यह भी कहा गया है कि महामंत्री तथा उसके कर्मचारी वृन्द को 'किसी सरकार तथा संस्था से बाहर की किसी

शक्ति से कोई आदेश या परामर्श नहीं लेना चाहिये और उन्हें किसी भी ऐसे कार्य से बचना चाहिये जो उनके संस्था के उत्तरदायित्वपूर्ण पदों को प्रभावित करे। प्रत्येक सदस्य राज्य, महामंत्री तथा उसके कर्मचारीवृन्द का आदर अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर करता है और उनको प्रभावित करने का प्रयास नहीं करना चाहिये। सचिवालय में सात विभाग होते हैं :—सुरक्षा परिषद के मामलों का, सामाजिक मामलों का; ट्रस्टीशिप का; जन सूचना का; सम्मेलन तथा साधारण सेवाओं का, आर्थिक मामलों का, प्रशासनिक तथा वित्तीय सेवाओं का, प्राविधिक सहयोग प्रशासन का; तथा वैधानिक विभाग। इस समय ४१००० कर्मचारी स्टाफ में है जिनमें से ३२२५ संयुक्त राष्ट्र के नये प्रमुख शिविर न्यूयार्क में हैं तथा अन्य ८७५ अन्य कार्यालयों में। हाल ही में संयुक्त राष्ट्रीय महासभा का स्थायी सभा भवन न्यूयार्क के ईस्ट रिवर के किनारे पर, १८ एकड़ भूमि में १,२२,५०,००० डालर की लागत से बनकर तैयार हुआ है। इस ३९ मंजिल वाले सभा भवन में ८०० दर्शक और ७२ प्रतिनिधि-मंडल अच्छी तरह बैठ सकते हैं।

महामंत्री की नियुक्ति ५ वर्ष के लिये होती है और उसे २०००० डालर (लगभग ५ हजार पौंड) जिस पर कर नहीं होता, वेतन मिलता है। इसके अतिरिक्त प्रतिनिधित्व वेतन २०००० डालर मिलता है। संयुक्त राष्ट्र उसके सरकारी निवास-स्थान का भी व्यय उठाता है। पांच वर्ष की कालावधि के पश्चात् उसकी नियुक्ति पुनः की जा सकती है। १ फरवरी १९४६ को नार्वे के विदेश मंत्री श्री ट्रिग्वेली संयुक्त राष्ट्र के प्रथम महामंत्री नियुक्त हुए थे। नवम्बर १९५० में उनकी कार्यावधि ३ वर्ष के लिये बढ़ा दी गई थी। १० नवम्बर १९५२ को उन्होंने साम्यवादी गुट द्वारा शांति-निर्मता अस्वीकार किये जाने, संयुक्त राष्ट्रीय बजट में सलग्न कार्रवाइयों तथा संयुक्त राष्ट्र सीनेट द्वारा नि ुक्त मेकेरन आंतरिक सुरक्षा ममिति द्वारा संयक्त राष्ट्र में नौकर २० अमरीकी साम्यवादियों की जांच के कारण अपना

त्यागपत्र दे दिया। अप्रैल १९५३ में स्वीडन के प्रजाजन श्री डाग हैमरसोल्ड को संयुक्त राष्ट्र का महामंत्री नियुक्त किया गया है।

विविध संस्थाएँ:—पूर्व निर्दिष्ट १० विशिष्ट एजेंसियों में से तीन पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ, जिसका शिविर जिनेवा में है, अन्तर्राष्ट्रीय कार्य द्वारा श्रम स्थितियां तथा जीवन स्तरों को उठाने तथा आर्थिक एवं सामाजिक स्थिरता की प्रगति के लिये कार्य कर रहा है। पहले पहल इसकी स्थापना ११ अप्रैल १९१९ में हुई। इसके वर्तमान महानिर्देशक (डायरेक्टर जेनरल) डेविड ए० मोर्स (संयुक्त राष्ट्र अमेरिका) हैं। ४ नवम्बर, १९४६ को, जनता की पारस्पारिक समझ के विकास के लिये, संस्कृति तथा उचित शिक्षा के प्रसार को नवीन स्फूर्ति देने के लिये यूनेस्को का आविर्भाव हुआ। इसका उद्देश्य युद्ध की समाप्ति है क्योंकि युद्ध मनुष्य के मस्तिष्क में प्रारम्भ होता है। इसकी मशीनरी में जनरल कांफ्रेंस के सभी सदस्य, उसके द्वारा चुने गये १८ सदस्यों का एक कार्यकारिणी मंडल एव पेरिस में एक महानिर्देशक के अधीन सचिवालय होता है। श्री एस० राधाकृष्णन, हमारे उप-राष्ट्रपति, १२ नवम्बर १९५२ को सातवीं वार्षिक पेरिस कांग्रेस में १९५३ के लिये यूनेस्को के अध्यक्ष चुने गये हैं। जेम टी० वोडेट (मेक्सिको) इसके महानिर्देशक हैं। खाद्य तथा कृषि सघ की स्थापना १६ अक्तूबर १९५१ में सभी खाद्य तथा कृषि उत्पादन के वितरण तथा उत्पादन दक्षता में सुधार लानें तथा इस प्रकार जीवनस्तर तथा पोषण स्तर को उठाने के लिये हुई थी। इसका एक वार्षिक सम्मेलन प्रत्येक सदस्य राज्य से एक प्रतिनिधि चुनने के लिये होता है। इसका प्रमुख शिविर वाशिंगटन है। इस समय नोरिस ई. डौड (संयुक्त राष्ट्र अमेरिका) इसके महानिर्देशक हैं।

संशोधन—आदेश-पत्र के अनुच्छेद में किसी प्रकार के परिवर्तन या परिवर्धन का एकमात्र मार्ग संशोधन है। इस सम्बन्ध में आदेश पत्र में

दो उपबन्ध दिये गये हैं। या तो आमसभा स्वयं या इस प्रयोजन के लिये बुलाई गई विशिष्ट जनरल कांफ्रेन्स (महासभा) केवल उपस्थित मत-दाताओं में से ही नहीं अपितु सभी सदस्यों के दो तिहाई मत से इस आदेश-पत्र के किसी उपबन्ध में संशोधन कर सकती है। यदि महासभा के दो तिहाई सदस्य या सुरक्षा परिषद के कोई सात सदस्य चाहें तो एक जनरल कांफ्रेंस बुलाई जा सकती है। दोनों ही मामलों में संशोधन की स्वीकृति उसी समय होगी जबकि उनको सदस्य राज्यों का दो तिहाई और सुरक्षा परिषद् के पाचों, स्थाई सदस्यों की स्वीकृति प्राप्त हो। यदि महासभा के १०वें अधिवेशन से पूर्व कोई जनरल कान्फ्रेंस नहीं बुलाई गई तो इसको बुलाने का सुझाव महासभा के १० वें वार्षिक अधिवेशन के कार्यक्रम में रख दिया जायगा।

मूल मानव अधिकार

श्रीमती रूजवेल्ट की अध्यक्षता मे मानव अधिकार आयोग ने मानव अधिकार का आदेश-पत्र (चार्टर) तैयार किया। १० दिसम्बर १९४९ को महासभा ने मानव अधिकारों का विश्व घोषणा-पत्र स्वीकार किया जिसमें मनुष्य के आधारभूत अधिकारों की अन्तर्राष्ट्रीय घोषणा की गई। घोषणा-पत्र में मनुष्य के सम्मान और मूल्य को महत्व दिया गया। इनमें कहा गया कि सभी व्यक्तियों को स्वतन्त्र रहने का अधिकार है और सम्मान और अधिकारों की दृष्टि मे सभी समान हैं (धारा १)। घोषणा-पत्र में उल्लिखित अधिकारों और स्वतन्त्रता के लिये सभी व्यक्ति हकदार हैं (धारा २)। सभी व्यक्तियों को जीवन, स्वतन्त्रता और सुरक्षा का अधिकार प्राप्त है (धारा ३)। कोई भी व्यक्ति गुलाम नहीं रखा जा सकता। गुलामी और गुलामों का व्यापार हर तरह से प्रतिबन्धित होगा (धारा ४)। किसी भी व्यक्ति के साथ अत्याचार अथवा अमानवीय व्यवहार नहीं किया जा सकता (धारा ५)। कानून के सामने सभी को सभी जगह मनुष्य के रूप में स्वीकृति का

अधिकार प्राप्त है (धारा ६)। कानून के सामने सभी व्यक्ति बराबर हैं और सभी को कानून का बराबर सरक्षण प्राप्त होने का अधिकार है (धारा ७)। कानून द्वारा स्वीकृत मौलिक अधिकारों का उल्लंघन अथवा नाजायज लाभ उठाने वालों के खिलाफ अदालती कार्रवाई करने का सबको अधिकार प्राप्त है (धारा ८)। कोई भी व्यक्ति बिना उचित कारण के गिरफ्तार अथवा नजरबन्द नहीं किया जा सकता। सभी व्यक्तियों को अपने प्रति लगाये गये आरोपों और अपराधों की सुनवाई निष्पक्ष अदालत द्वारा करवाने का हक होगा (धारा १०)। जब तक अदालत से कोई व्यक्ति अपराधी न मान लिया जाय तब तक उसे अपराधी नही कहा जा सकता (धारा ११) किसी भी व्यक्ति के घरेलू अथवा निजी काम में बाहरी हस्तक्षेप स्वीकार नही किया जा सकता। इसके अतिरिक्त उसके सम्मान और प्रतिष्ठा पर किसी तरह की चोट नहीं की जा सकती (धारा १२)। सभी व्यक्तियों को आवागमन और निवास का समान अधिकार प्राप्त है (धारा १३)। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी रक्षा के लिये दूसरे देश का आश्रय लेने का अधिकार है (धारा १४)। सभी को राष्ट्रीयता का अधिकार है (धारा १५)। प्रत्येक व्यक्ति को शादी करने और परिवार बसाने का अधिकार है (धारा १६)। सभी को सम्पत्ति प्राप्त करने का अधिकार है (धारा १७)। सभी को मनन करने, अपने विचार दूसरों को प्रकट करने, शांतिपूर्ण तरीके से सभाएँ तथा संघ कायम करने का अधिकार है (धारा १८-२०)। सभी को अपने देशकी सरकार में भाग लेने और नौकरियों में आने का अधिकार है। सभी व्यक्तियों को अपना मत गुप्त रूप से प्रकट करने का अधिकार होगा। सभी को काम करने, वेतन के साथ आवश्यक छुट्टियां पाने, बेकारी के विरुद्ध संरक्षण, काम के अनुसार वेतन व ट्रेड यूनियन में शामिल होने का अधिकार, तथा नौकरी ढूंढने की स्वतन्त्रता प्राप्त है। संक्षिप्त में घोषणा-पत्र में किसी भी मानवीय अधिकार को छोड़ा नहीं गया है।

प्रन्यासित प्रदेश

यद्यपि संयुक्त राष्ट्रसंघ में ६० सदस्य राष्ट्रों द्वारा विश्व की अधिकांश जनता का प्रतिनिधित्व हो रहा है किन्तु अभी भी २० करोड़ ऐसे व्यक्ति हैं जो गुलाम हैं और जिन्हें स्वायत्त शासन का अधिकार प्राप्त नहीं। सभी सदस्य राज्य जो परतन्त्र क्षेत्रों पर शासन करते हैं, उन्हें आदेश-पत्र (चार्टर) के द्वारा शपथ-ग्रहण कराई गई है कि वे शासित देशों की जनता की भलाई का ध्यान रखेंगे। इस सम्बन्ध में संयुक्त राष्ट्रसंघ को सभी शासित देशों के बारे में रिपोर्ट सदैव मिलती रहती है जिसके आधार पर संरक्षक परिषद द्वारा परतन्त्र लोगों के विकास के सुझाव दिये जाते हैं। संयुक्त राष्ट्रसंघ के आयोग समय-समय पर प्रन्यासित प्रदेशों का दौरा करते रहते हैं। लिबिया, जो इटली के हाथ मे उपनिवेश के रूप में चला गया था, १ जनवरी १९५१ को स्वतन्त्र बना दिया गया। इटालियन सोमालीलैंड १९६० में स्वतंत्रता प्राप्त करेंगे। इरिट्रिया १५ सितम्बर १९५२ को एक संघीय विधान के अन्तर्गत इथोपिया में शामिल हो गया। पश्चिमी अफ्रीका का भूतपूर्व प्रन्यासित प्रदेश जिसे दक्षिण अफ्रीका सरकार ने संरक्षण समिति के आधीन करने से इन्कार कर दिया था काफी दिनों तक सर दर्द का विषय बना रहा। ६ दिसम्बर १९४९ को महासभा की चौथी बैठक में उक्त मामले को अन्तर्राष्ट्रीय अदालत को सौंपा गया। अदालत ने निर्णय किया कि प्रादेशित प्रदेश पर दक्षिणी अफ्रीका संघ का अधिकार गैर कानूनी है। किन्तु दक्षिण अफ्रीका ने उक्त निर्णय की न केवल उपेक्षा की बल्कि उसे अवैध बताया।

संयुक्त राष्ट्रसंघ तथा राष्ट्रसंघ

जहां तक दोनों की उत्पत्ति तथा आधारभूत सिद्धान्तों का सम्बन्ध है दोनों संस्थाएँ काफी मिलती-जुलती हैं। दोनों अंतर्राष्ट्रीय संस्थाएँ अमरीकी राष्ट्रपतियों द्वारा आयोजित की गई थीं (विल्सन ने १९१९

में और ट्रूमैन ने १९४५ में)। दोनों संस्थाएँ ऐसे समय में पैदा हुईं जब विश्व की हालत बिल्कुल जर्जर अवस्था में थी और वह राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं की चोट से कराह रहा था। दोनों संस्थाओं के मामले में विश्व की बड़ी शक्तियों ने युद्ध को रोकने और शान्ति स्थापना की ओर कदम उठाया। दोनों सस्थाओं के जीवन में घृणात्मक भावना को दूर करने के लिये समझौता और संधियों द्वारा सामूहिक सुरक्षा का प्रयास किया गया।

एक निष्पक्ष प्रेक्षक की दृष्टि से संयुक्त राष्ट्रसंघ कई प्रकार से राष्ट्रसंव का विकसित रूप है। जहाँ संयूक्त राष्ट्रसंव का आदेश-पत्र (चार्टर) एक पृथक अग है वहाँ राष्ट्रसंत्र का प्रतिश्रव १९१९ की वर्सेल संधि से सम्बद्ध था। संयुक्त राष्ट्रसंव में सदस्यों की संख्या वढ़ जाने से वह राष्ट्रसंत्र से वड़ा हो गया है। संयुवत राष्ट्रसंव ने वीटो शक्ति प्रयोग करने का अधिकार केवल पांच वड़ों तक सीमित कर दिया परन्तु राष्ट्रसंव ने मित्रता के सिद्धान्त को अपनाया जिससे उसे अपनी कार्रवाइयां करने में वाधा का सामना करना पडा। मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोपणा मनुष्य के मूलभूत अधिकारों की प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता थी। राष्ट्रसंव के विल्कुल उल्टा संयुक्त राष्ट्रसंव के चार्टर (आदेश-पत्र) ने प्रादेशिक सुरक्षा को महत्व दिया। संरक्षक व्यवस्था जिसने आदेश व्यवस्था का स्थान लिया प्रन्यासित प्रदेशों की जनता के विकास के लिए अधिक हितकारी सिद्ध हुई।

सँयुक्त राष्ट्रसंघ की अफसलता के कारण

कोरिया युद्ध का आरम्भ होना, कोरियाई युद्ध विराम समझौता में गतिरोध उत्पन्न होना, हिन्द-चीन और मलाया में सैनिक आतंक, जर्मनी और आस्ट्रिया के साथ शांति संधि का अभाव, पराजित देशों के भविष्य और नियन्त्रण पर रूस और अमरीका में तनाव, दक्षिणी अफ्रीका में जातीय भेदभाव, उपनिवेशवाद की ओर जोर पकड़ती मनोवृत्ति तथा शीत युद्ध का जारी रहना—यह सव शान्ति स्थापना और न

देशों के बीच सम्बन्ध कायम करने में बाधक सिद्ध हुए जिसके कारण संयुक्त राष्ट्रसंघ असफल हुआ। संयुक्त राष्ट्रसंघ कई त्रुटियों के कारण आज बदनाम हो रहा है इसकी स्थापना को ७ वर्ष हो गये किन्तु अभी भी विश्व की ४२ प्रतिशत जनता का प्रतिनिधित्व पाने से यह वंचित है। इसके अतिरिक्त अभी लगभग १७ राष्ट्र ऐसे हैं जिनका प्रतिनिधित्व संयुक्त राष्ट्र अभी तक प्राप्त नही कर सका है। जनवादी चीन को जिसकी आबादी ४५ करोड़ है अभी तक संयुक्त राष्ट्र में स्थान नही दिया गया। इसने अभी तक कोई शक्तिशाली अन्तर्राष्ट्रीय सेना की व्यवस्था नही की जिससे कि अविलम्ब कार्रवाई की जा सके। संयुक्त राष्ट्रसंघ के निर्णय केवल सिफारिश मात्र होते है, जिन्हें सदस्य राष्ट्रों को अस्वीकार करने में कठिनाई नही होती और वे अपनी इच्छा के अनुसार अपनी स्वार्थ-भावना को पूरा करने के लिए खुलेआम अत्याचार करते है। इधर सोवियत संघ और पश्चिमी राष्ट्रों में तानाशाही, साम्राज्यवाद और जनतंत्र तथा समाजवाद की विचारधारा सम्बन्धी मतभेद और तनाव पैदा हो जाने से शस्त्रीकरण को कम करना असम्भव हो गया है। फरवरी १९५१ में छठवी महासभा के अधिवेशन की समाप्ति पर सोवियत प्रतिनिधि जैकब मलिक ने कहा था कि—"वास्तव में तीसरा विश्वयुद्ध अभी से आरम्भ हो गया है और युद्ध छेड़ने वाली तीन साम्राज्यवादी औपनिवेशिक शक्तियां (अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रांस) एशिया और अफ्रीका के लोगों को अपना शिकार बना रही है।" श्री मलिक का वक्तव्य ठीक हो अथवा गलत, हमें यह तो मानना ही पड़ेगा कि आज हम एक भयंकर अन्तर्राष्ट्रीय संकट से गुजर रहे है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के अध्यक्ष डा० पाडिला नर्वो ने कहा था कि "आज भी विश्व की स्थिति इतनी गंभीर हो गई है कि शान्ति की आशा बिल्कुल ओझल हो गई है।" श्री राधाकृष्णन ने भी कहा था कि "जिस समय जनतन्त्र जनतन्त्र की स्थापना को मंजूर कर लेगा, उस समय विश्व काफी साफ रास्ते पर आ जायेगा और असुरक्षा का भय समाप्त हो जायगा।"

व्याख्यान ७

भारतीय विदेश नीति

भूमिका—८ मार्च १९४८ को लोकसभा में विदेश नीति पर भाषण देते हुए प्रधान मंत्री पं० नेहरू ने कहा था—"बड़े राष्ट्रों की पारस्परिक विरोधी गुटबन्दियों से पृथक रहना तथा प्रत्येक राष्ट्र से मित्रता—बिना किसी संधि, सामरिक अथवा असामरिक, जो कि हमें किसी लड़ाई की ओर ले जाय—का सम्बन्ध रखना ही हमारी विदेश नीति का मूल सिद्धान्त है।" अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध में भारत ने सर्वदा मध्यम मार्ग को ही अपनाया है, परन्तु भारत स्वीट्जरलैंड की भांति शान्तिवादी राष्ट्र नहीं है और उसकी नौ, भू और वायु सेना आत्म-रक्षा के लिए सर्वदा प्रस्तुत है। "यदि देश पर कोई संकट या आपत्ति आय तो हम इनका प्रयोग करेंगे।" पंडितजी ने कहा—"भारत किसी अन्य राष्ट्र पर अपना आधिपत्य नहीं जमाना चाहता है, हमारा उद्देश्य केवल शान्ति से रह कर देश की समस्याओं का समाधान करना है। जहां तक सम्भव है हम दूसरे राष्ट्र को सहायता तथा सहयोग देंगे। दूसरे राष्ट्र के साथ बिना किसी उद्वेग तथा रोष के, हम शान्तिपूर्ण तरीके से समस्याओं को हल करेंगे। संसार के सभी राष्ट्रों से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रखना ही भारतीय विदेश नीति का प्रधान उद्देश्य है।"

मूल सिद्धान्त—किसी देश की विदेश नीति वर्तमान परिवर्तनशील

जगत् में स्थिर नहीं रह सकती। परिस्थिति और समय के परिवर्तन के अनुसार विदेश नीति को भी बदलना पड़ता है। पिछले ६ वर्ष के इतिहास का यदि हम ध्यानपूर्वक अध्ययन करें तो देखेंगे कि स्वाधीन भारत का उत्थान और उसका एक महाशक्ति में परिणत होना एक महत्वपूर्ण घटना है। हमारी विदेश नीति पूज्य बापू के अहिंसा और शान्ति के सिद्धान्त पर आधारित है। हमें यह भूलना नहीं चाहिये कि आज विश्व में भारत को जो गौरव और प्रतिष्ठा प्राप्त है, वह हमारे विदेश मंत्री पंडित नेहरूजी के सुचारु रूप से विदेश नीति का परिचालन का परिणाम है। १५ वर्ष पूर्व कांग्रेस के स्वाधीनता संग्राम में ही आज की विदेश नीति की नींव पंडितजी ने अपने भाषण तथा लेखन द्वारा डाल दी थी। हम अपनी विदेश नीति का निम्नलिखित विश्लेषण कर सकते हैं:—
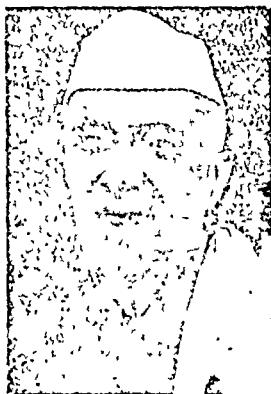
पंडित नेहरू

१. विदेश नीति का निष्पक्ष और स्वाधीन होना।

२. किसी राष्ट्र की गुटबन्दी में सम्मिलित नहीं होना।

३. आर्थिक और अन्य स्वार्थ के लिए दक्षिण पूर्वी एशिया राज्यों का संघ बनाना।

४. समय तथा सुयोग के अनुसार विश्व की शान्ति की रक्षा की यथासाध्य चेष्टा करना।

५. संसार के निर्यातित तथा दलित जातियों के आत्म-निर्णय के अधिकार का पूर्ण रूप से समर्थन करना।

६. संयुक्त राष्ट्रसंघ के सिद्धान्त में विश्वास रखना और उसे कार्यान्वित

करने के लिए कोशिश करना।

७. साम्राज्यवाद और फासिस्टवाद नीति का तीव्र प्रतिवाद करना।

८. रंग-भेद व जाति-भेद की तीव्र निन्दा करना।

९. विश्व के प्रमुख राष्ट्रों के साथ कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित करके विश्व से अपने आपको परिचित कराना।

१०. यदि शान्ति को कोई खतरा हो और न्याय की उपेक्षा हो, तो वहां निष्पक्षता का परित्याग करना।

११, राष्ट्रीय तथा व्यक्तिगत स्वाधीनता की सुरक्षा करना।

१२. बीमारी, अज्ञानता तथा अभाव को दूर करना और शक्ति-संचय करना।

निष्पक्ष रहने का कारण––हमारी विदेश नीति में निष्पक्ष मनोभाव की गम्भीर आलोचना लोकसभा तथा विदेशी पत्रिकाओं में हुई है। किसी-किसी को दृष्टि में इस नीति का अनुसरण करने में भारत को लाभ की अपेक्षा क्षति अधिक हुई है, क्योंकि एक गुट में सम्मिलित होकर जो फायदा हमें हो सकता था, उससे हम वंचित रहे। दूसरे किसी के अनुसार हम कहते एक हैं और करते एक हैं। इसलिए यह नीति निन्दनीय है। पर हमें स्मरण रखना चाहिए कि इस नीति से कई लाभ हैं। पहला––मसानी के शब्दों में "विश्व के दोनों शक्ति गुट–एक ओर अमरीकी पूंजीपति और दूसरी ओर सोवियत साम्यवादी––में कोई अन्तर नहीं है। वस्तुतः भारत की दृष्टि में दोनों के गुण तथा स्तर समान हैं और इसीलिए हम दोनों के गुट से पूर्ण रूप से पृथक रहना चाहते हैं।" गुटबन्दी में सम्मिलित होने से लाभ भी हो सकता है और क्षति भी हो सकती है। भारत जैसे शिशु राष्ट्र को लाभ से क्षति होने का भय अधिक है। दूसरा––स्वाधीनता प्राप्त करने के पश्चात् भी भारत को पश्चिमी राष्ट्रों की दृष्टि में अभी भी ब्रिटिश

उपनिवेश समझा जाता है। यदि हमें अपनी स्वाधीनता को बनाये रखना है तो इसी मार्ग से ही सफलता प्राप्त हो सकती है।

तीसरा—गरीब भारतवासी तथा अमीर अमरीका के जीवन स्तर में इतना अन्तर है कि हम आसानी से उनके साथ घुल-मिल नहीं पाते। अमरीका के आदि निवासियों के प्रति अमरीकी सरकार के भेदभाव की नीति भारत की दृष्टि से प्रशंसनीय नहीं है। इसी प्रकार साम्यवादियों के साथ हाथ मिलाने में हमारा कोई विशेष लाभ नहीं दिखलाई देता। इसीलिये रूस और अमरीका के दानवीय युद्ध में हम शान्ति की वाणी का प्रचार करते हैं।

वस्तुतः स्थायी निष्पक्षता का अवलम्बन करना असम्भव है। विज्ञान की प्रगति ने एक राज्य को दूसरे राज्य के काफी निकट ला दिया है और ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी है जिससे उनका पृथक रहना कठिन हो गया है। नेहरू जी ने अपने स्पष्ट भाषण में एक बार कहा था कि—"यदि कोई महायुद्ध छिड़ जाय तो ऐसा कोई कारण नहीं है कि हमें उसमें सम्मिलित होना ही पड़े परन्तु वर्तमान काल में विश्व युद्ध में तटस्थ रहना आसान नहीं है।"

उन्होंने कहा भारत किसी भी युद्ध में शामिल नहीं होगा, शामिल होने के लिये उसे मजबूर होना ही पड़ा तो वह उस गुट का साथ देगा जो उसके लिये लाभदायक प्रतीत होगा। हमारी विदेश नीति के समालोचकों को पंडित जी के इस दृष्टिकोण को समझना चाहिये।

भारत और संयुक्त राष्ट्रसंघ

हमारे विधान के निर्देशात्मक सिद्धान्तों के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सहयोग के लिये सं० रा० सं० का समर्थन करना हमारी विदेश-नीति का मुख्य उद्देश्य है। इसीलिये नेहरूजी कहते हैं, "हम भारत के स्वार्थ का विश्व सहयोग तथा विश्व शान्ति के आधार पर विचार करते हैं। हम चाहते हैं कि सब राष्ट्रों से हमारा मैत्री सम्बन्ध चिरस्थायी

हो और रूस तथा अमरीका दोनों ही हमारे परम मित्र हों।" सं० रा० सं० के विभिन्न अंग और सहायक संस्थाओं में भारत पूर्णतया भाग ले रहा है। अणुशक्ति नियंत्रण आयोग, कोरियाई शांति निरीक्षण आयोग, सं० रा० शैक्षिक, वैज्ञानिक सांस्कृतिक संगठन, अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ, विश्व स्वास्थ्य संघ, संयुक्त राष्ट्र संघीय आर्थिक तथा सामाजिक परिषद, यातायात आयोग आदि, तथा फिलिस्तीन विशेष आयोग में भारतीय प्रतिनिधि पूर्ण रूप से भाग ले रहे हैं। हमारे देश के अन्यतम प्रतिनिधि श्री रामास्वामी मुदालियर स० रा० सं० के आर्थिक तथा सामाजिक परिषद के कई वर्ष तक प्रधान अध्यक्ष रहे। वर्तमान में हमारे उपराष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन सं० रा० सं० युनेस्को के प्रधान अध्यक्ष चुने गये हैं। श्री बी० एन० राव ९ वर्ष के लिये अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायाधीश निर्वाचित हुए हैं। इसके अतिरिक्त फिलस्तीन विभाजन समस्या, हिन्देशिया का प्रश्न, विशेष कोरियाई आदि आयोग संस्थाओं में किस प्रकार भारत ने भाग लिया है उसकी चर्चा पिछले व्याख्यानों में की जा चुकी है। स० रा० सं० के सिद्धान्तों के अनुसार ही दक्षिण अफ्रीका तथा काश्मीर मामलों को ५ वर्ष पहले सुरक्षा परिषद में पेश किया गया था। फिलस्तीन प्रश्न में हमारे प्रतिनिधि ने विभाजन के बजाय विधान का सुझाव राष्ट्रसंघ में दिया था। हमने राष्ट्रसंघ में निषेधाधिकार का समर्थन किया था, क्योंकि हम रूस को नाराज नहीं करना चाहते थे। मत देते समय हमारे प्रतिनिधि प्रत्यक समस्या में भारत का स्वार्थ तथा गुण की छानबीन करते ह। इसके

डा० राधाकृष्णन

पंडित जी ने एक बार स्पष्ट ही कहा था कि यद्यपि हम समुद्र-पार भारतीयों की अवस्था की उन्नति तथा उनके स्वार्थ की रक्षा करने के लिये उचित कार्रवाई करेंगे किन्तु उन्हें चाहिये कि वे भी विदेशियों के साथ प्रत्येक विषय में समानाधिकार की मांग न करें।" संशोधन विधेयक को स्थगित रखने के लिये लंका के भारतीयों ने कांग्रेस सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ कर दिया था। फलस्वरूप सेनानायक ने एक ऐसा अधिनियम बनाया जिससे एक छोटे बच्चे के भी श्री लंका में निवास सिद्ध न होने पर सारा परिवार ही नागरिकता के अधिकार से वंचित हो जायगा। लंका की स्थिति के सम्बन्ध में नेहरू जी ने लोकसभा में कहा था "मैं इस बात के लिये भी तैयार हूँ कि मामला किसी ऐसे स्वतन्त्र अधिकारी के सामने रखा जाय जिसे दोनों पक्ष स्वीकार कर सकें।" किन्तु सेनानायक सरकार ने इस घोषणा का भी कोई उत्तर नहीं दिया। हाल ही में राष्ट्रमण्डलीय प्रधान मंत्री सम्मेलन में इस समस्या की आलोचना हुई है। कहा जाता है कि बातचीत मैत्रीपूर्ण वातावरण में हुई फिर भी कोई समझौता नहीं हो सका। यह भूलना नहीं चाहिये कि १९५० में केवल ८ हजार भारतवासियों को ही मतदान का अधिकार दिया गया था। नवीन अधिनियम के अनुसार नागरिकता का अधिकार उन भारतवासियों को दिया गया है जो प्रमाण कर सकते हैं कि १९३९ अथवा विवाह की तारीख के बाद लंका में ही क्रमागत रूप से निवास कर रहे हैं। लंका के कुछ पत्रकारों ने ५।। लाख भारतीयों को नागरिकता प्रदान करके शेष को वापस भेजने के सुझाव दिये हैं लेकिन भारत ने ऐसा कोई प्रस्ताव नहीं किया। भारत के उच्चायुक्त श्री देसाई ने हाल ही में घोषणा की कि सेनानायक सरकार श्री लंका में स्थित चार लाख भारतीयों की नागरिकता स्वीकार कर लेगी।

समुद्र-पार के अन्य भारतीय

फीजी द्वीप समूह में १ लाख २५ हजार अथवा ४७ प्रतिशत, ब्रिटिश पश्चिम द्वीप समूह, टंगानिका, पूर्व अफ्रीका, मारिशस, मलाया आदि स्थान

में प्राय: एक तृतीयांश तथा वर्मा में ७ लाख भारतीय हैं। राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने समुद्र-पार के भारतवासियों की ओर संकेत करते हुए कहा था "हमारा उपदेश है आप सब अपने अपने निवास स्थानों को ही मातृभूमि समझ कर वहां की जनता से सहिष्णुतापूर्वक वर्ताव करें।" हमारे विदेश मंत्री ने स्पष्ट ही कहा था कि "हमारे लिये समुद्र-पार भारतीयों के विशेष अधिकार का संरक्षण करना असम्भव है।" विदेश में अधिकांश भारतीय गरीब तथा श्रमिक वर्ग के हैं और इसीलिये उनको भारत में वापस लाकर उनकी आर्थिक स्थिति का वर्तमान में सुधार करना असम्भव है।

दक्षिण अफ्रीका की रंग-भेद नीति

दक्षिण अफ्रीका की रंग-भेद नीति के सम्बन्ध में चर्चा आगे की गई है। दक्षिण अफ्रीका की भेदभाव नीति के फलस्वरूप विश्वशान्ति को दिन पर दिन खतरा बढता जा रहा है। दक्षिण अफ्रीका की सरकार न केवल मानवीय अधिकार सम्बन्धी नियमों का उल्लघन ही कर रही है बल्कि सं० राष्ट्रीय घोषणा पत्र द्वारा जो प्रत्येक नागरिक को स्वतंत्रता का बुनियादी अधिकार दिया गया है उस पर भी आघात कर रही है। भारत ने ७ वीं बार रा० स० के सामने दक्षिण अफ्रीका की रंग-भेद नीति की शिकायत की है। पृथक्करण की नीति, केवल आवास क्षेत्र में ही सीमित नहीं है परन्तु डाकखानों, रेलवेस्टेशनों, होटलों तथा सार्वजनिक पार्कों आदि में सूचना-पट लगे हुये हैं—"काले लोगों का प्रवेश निषेध है।" इस अन्याय व अत्याचार के विरुद्ध हमारे भारतवासी द० अ० में आन्दोलन कर रहे हैं। रा० सं० के सद्भावना आयोग, जिसमें श्री शान्ताक्रुज, हेनरी तथा वेलगार्डी हैं, द० अ० की सरकार की जाति भेद नीति की जांच के लिये उक्त सरकार से प्रवेश पत्र मांगा है। इधर द० अ० के न्याय मंत्री श्री स्वार्ट ने स्पष्ट घोषणा की "कि पुलिस को कठोर तथा तत्काल कार्रवाई करने के लिये व्यापक अधिकार दिये गये हैं और आवश्यकता होने पर जहाँ तहाँ गोली

चलाने का भी अधिकार दिया गया है।" २८ जन १९५३ में जोहान वर्ग में द० अ० भारतीयों के एक सम्मेलन पर सशस्त्र पुलिस ने आक्रमण किया और भारतीय कांग्रेस मंत्री को गिरफ्तार कर लिया। इस हिंसात्मक और दमनपूर्ण नीति की निन्दा करते हुए पं० नेहरू ने हाल ही में कहा है कि "अफ्रीका की समस्या का समाधान जातीय भेद भाव अथवा अफ्रीकी जनता के दमन से नहीं हो सकता।" भारत की करोड़ों जनता आशापूर्ण नेत्रों से रा० स० के फैसले की ओर देख रही है कि किस प्रकार इस अमानुषिक अत्याचार का अन्त किया जायगा।

पाकिस्तान से सम्बन्ध

विभाजन के पश्चात् पाकिस्तान से हमारा सम्बन्ध कई मामलों जैसे—आर्थिक समस्या, सिंचाई के लिए नहर के पानी का प्रश्न, भारत-पाकिस्तान आव्रजन तथा प्रव्रजन समस्या, निष्क्रान्त सम्पत्ति के मुआवजे का प्रश्न, काश्मीर तथा हैदराबाद प्रश्न—ने बिगाड़ दिया है। भूगोल, अतीत का इतिहास, सांस्कृतिक सम्बन्ध, ने दोनों राष्ट्रों के पारस्परिक सहयोग तथा मैत्री के लिए पृष्ठ-भूमि तैयार कर दी थी, किन्तु पाकिस्तान के निर्माण के पश्चात् काश्मीर पर आक्रमण (२५ अक्तूबर १९४७) और इस समस्या को हल करने के लिए स० रा० सं० में उपस्थापन तथा सुरक्षा परिषद के निर्णय का वर्णन पहले ही किया जा चुका है। ऐसी स्थिति में दोनों देशों के बीच तनाव पैदा हो गया। नेहरू जी ने कहा था कि "यद्यपि काश्मीर से भारत का भौगोलिक, आर्थिक तथा मान-वता की दृष्टि से घनिष्ट सम्पर्क है फिर भी निष्पक्ष जनमत के आधार पर ही काश्मीर के भविष्य का निर्णय हो सकता है। पाकिस्तान के विरुद्ध हम में कोई हिंसात्मक भावना नहीं है। हम चाहते हैं कि पाकिस्तान फले और फूले और हम उससे मैत्री का सम्बन्ध रखें।" सुरक्षा परिषद के २३ दिसम्बर १९५२ के प्रस्ताव को भारत ने

भारतवर्ष

सन् १९५२ ई० में

अस्वीकार कर दिया। (पृष्ठ १७७ देखिए)। नेहरू जी ने एक पत्रकार सम्मेलन में बोलते हुए यह स्पष्ट कर दिया कि "भारत सुरक्षा परिषद द्वारा थोपे गए काश्मीर सम्बन्धी सुझाव को किसी हालत में स्वीकार नही करेगा क्योंकि इसमें पाकिस्तान के साथ खुल्लम खुल्ला पक्षपात किया गया है।" युद्ध विराम रेखा के पाकिस्तानी अधिकृत प्रदेशों की ओर छः हजार सशस्त्र सेना रखना निष्पक्ष और स्वतन्त्र जनमत गणना के विरुद्ध है। इसलिए काश्मीर वार्ता पहले जैसी विकट हो गई है और आगे के लिए बातचीत के द्वार एक प्रकार से बन्द हो गए हैं। हाल ही मे काश्मीर में परिषद के आन्दोलन ने हमारे अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध को ठेस पहुँचाई है और समस्याओं को अधिक जटिल बना दिया है। भारत व पाकिस्तान के मध्य चार वर्ष से चले आ रहे सिंचाई के लिए नहर के पानी का झगडा अप्रैल १९५२ में विश्व बैंक की मध्यस्थता से समाप्त हो गया है। गत १५ अक्टूबर १९५२ से भारत और पाकिस्तान में आने-जाने वालो के लिए पार-पत्र (पास पोर्ट) का प्रयोग अनिवार्य हो गया किन्तु १९५३ के मध्य भाग में पुनः दोनो राष्ट्रों के बीच मैत्री स्थापित हो रही है। भारत से काबुल जाने वाले विमानों को कराची तथा लाहौर में प्रवेश के लिए अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक उड्डयन संस्थाओं की मध्यस्थता से २५ मील चौड़े दो गलियारे दिये गये हैं। मार्च १९५३ में पाकिस्तान से एक व्यापारिक समझौता हो गया जिसके अनुसार पाकिस्तान ने पटसन पर शुल्क (लाइसैन्स) और निर्यात कर हटाना स्वीकार कर लिया है तथा भारत ने पाकिस्तान को १८ हजार टन कोयला प्रति माह देना स्वीकार कर लिया है। भारत ने जूट-कोयला समझौता करके पकिस्तान के प्रति सद्भावना प्रकट की है यद्यपि उसे ऐसा करने में लाभ से अधिक हानि ही हुई है।

पाकिस्तान ने भूपत डाकू को भारत को सौपने तथा पश्चिमी पाकिस्तान स्थित निष्क्रान्त सम्पत्ति का मुआवजा उत्थापितों को

दन के प्रश्नों पर अपने पहले रुख को नहीं बदला। हमारे प्रधान मन्त्री पाक के प्रधान मन्त्री मुहम्मद अली के साथ चर्चा करने के लिए शीघ्र कराची जाने वाले हैं।

भारत में विदेशी बस्तियां

भारत स्वाधीन हुआ किन्तु कोढ़ के निशानों की भांति उसकी कुछ बस्तियां, चन्द्रनगर, पांडीचेरी, गोआ आदि, अभी भी फ्रांस और पुर्तगाल के हाथ में है। नेहरूजी ने इन स्थानों को भारत के साथ अपनी इच्छानुसार मिला देने का प्रस्ताव किया था परन्तु इन बस्तियों के गौरांग प्रभुओं ने भारत की शान्ति से समस्या को हल करने की नीति का गलत अर्थ लगाया। उन्होंने उन बस्तियों में गुण्डों का राज्य स्थापित कर दिया है। चन्द्रनगर का १९५१ में जनमत से प० बंगाल के साथ विलय हो गया है। गोआ में पुर्तगालियों के अत्याचार के विरोध में भारत ने लिसबन में अपना दूतावास बन्द कर दिया। हाल में नेहरू जी ने एक बार फिर यह स्पष्ट कर दिया है कि "फ्रांसीसी-भारत की समस्या पर फ्रांस सरकार के साथ इसी शर्त पर समझौता हो सकता है कि उसे भारत में मिला दिया जाय। पर हम शान्तिपूर्ण तरीके से प्रश्न का समाधान करना चाहते हैं।"

कोरियाई गत्यावरोध

कोरियाई गत्यावरोध को दूर करने के लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ के सातवें अधिवेशन में भारतीय प्रतिनिधि श्री कृष्ण मेनन ने दोनों पक्षों की स्वीकृति शर्तों के आधार पर प्रस्ताव पेश किया था। भारत ने अपने प्रस्ताव में अनिच्छुक युद्ध-वन्दियों के मानव अधिकारों पर जोर देते हुए एक निष्पक्ष आयोग के निरीक्षण में वन्दियों को ९० दिन तक रखने का सुझाव दिया था। परन्तु यह प्रस्ताव चीन व उत्तरी कोरिया ने ठुकरा दिया। पानमुनजोन में ८ जून में युद्ध-वन्दियों की अदला-बदली के बारे में समझौता हो गया किन्तु राष्ट्रपति री (द० कोरिया) ने २५ हजार युद्ध-वन्दियों को मुक्त कर

दिया। जिससे विराम-संधि पर हस्ताक्षर स्थगित हो गया। हाल ही में नेहरूजी ने राष्ट्र संघ के अध्यक्ष पीयर्सन को एक पत्र में रा० सं० का एक एक विशेष अधिवेशन बुलाने की प्रार्थना की। परन्तु रा० सं० के महामंत्री के मत में महासभा (जनरल असेम्बली) का अधिवेशन अभी असामयिक है।

नवीन एशियाई नीति

साम्यवादी रूस और पूंजीपति अमरीका के विरोध के शान्तिपूर्ण समझौता के लिए भारत एक नवीन स्वाधीन एशियाई संघ की स्थापना का प्रयत्न कर रहा है। १९४७ में नेहरूजी ने देहली में एक एशियाई सम्मेलन का आह्वान किया था। २० जनवरी १९४९ में हिन्देशियाई समस्या के समाधान के लिए नेहरूजी के आमंत्रण पर देहली में १९ राष्ट्रों के प्रतिनिधि दूसरे एशियाई सम्मेलन में सम्मिलित हुए। उन्होंने पश्चिमी राष्ट्रों को यह चेतावनी दी कि नवीन जागृत एशिया साम्राज्यवादी दमन नीति सहन नहीं करेगा। औपनिवेशिक प्रभुत्व का अवसान अवश्य होगा और इसके लिए एशियाई राष्ट्रों के एकमत तथा लोकमत का संगठन होना अत्यन्त आवश्यक है।

पं० नेहरू ने पश्चिमी राष्ट्रों को चुनौती देते हुए कहा था कि "कोई भी यूरोपीय राष्ट्र अपनी सेना को एशियाई जनता के दमन के लिए प्रयोग में नहीं ला सकता है। यदि कोई भी ऐसा करेगा तो एशिया इसको सहन नहीं करेगा। एशियाई भूमि में विदेशी सेना की उपस्थिति हमारे लिए अपमान सूचक है।" लोकमत के संगठन के फलस्वरूप हिन्देशिया एक स्वाधीन राष्ट्र हो गया। भारत ने साम्यवादी चीन को स्वीकार किया और सं० रा० सं० में उसके प्रवेशाधिकार का समर्थन किया। जापान के साथ एक पृथक शान्ति-संधि (९ जून १९५२) करके भारत ने मित्रता का प्रमाण दिया है। बर्मा, मलाया तथा हिन्देशिया के साथ हमने कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित किए हैं। छोटे राज्य भारत को एशिया का नेता मानते हैं और बड़े राज्य इसको निष्पक्ष मध्यस्थ समझते हैं।

संयुक्त राष्ट्रसंघ में एशियाई गुट की आवाज एक चौथाई से भी कम है, यद्यपि विश्व की एक तिहाई जनता इसके आधीन है। वास्तव में रा० सं० में हमारे गुट का प्रतिनिधित्व बहुत कम है। यही कारण है कि हमारी समस्याओं को आसानी से टाल दिया जाता है और पाश्चात्य गुट का आदर होता है। हाल ही में वर्मा ने राष्ट्रवादी चीनी सेना का प्रश्न रा० सं० में उपस्थित किया था और भारत ने उसको पूर्ण सहयोग दिया। संक्षेप में यह कहना अनुचित नहीं है कि एशिया की कोई भी अन्तर्राष्ट्रीय समस्या का भारत के नेतृत्व के बिना शान्तिपूर्ण रूपसे समाधान नहीं हो सकता। यह भूलना नहीं चाहिए कि नेहरू जी बार-बार इस पर जोर देते है कि भारत किसी राष्ट्र में हस्तक्षेप नहीं करना चाहता है बल्कि पारस्परिक मैत्री और प्रेम चाहता है।

भारत और मध्यपूर्वी सगठन

समाचार पत्र के पाठकों को यह स्मरण होगा कि पाकिस्तान मध्यपूर्व के रक्षा संगठन में सम्मिलित होना चाहता है। आंग्ल-अमरीकी गुट इस संगठन को साम्यवाद के विरुद्ध प्रस्तुत कर रहे हैं। यह समस्या अत्यन्त जटिल है। नेहरू जी ने कहा था कि "मुझे इस बात का खेद है कि मध्यपूर्व में स्थिति अत्यधिक विषम हो गई है। यदि पाकिस्तान मध्यपूर्व संगठन में सम्मिलित हो जाय तो निःशस्त्र या और कोई युद्ध छिड़ सकता है।" किन्तु हर्ष की बात यह है कि मध्यपूर्व रक्षा संगठन स्थापित होने की फिलहाल कोई संभावना नहीं। यद्यपि अमरीका के विदेश मंत्री डलेस मध्य और सुदूर पूर्वी राष्ट्रों का दौरा करके इस बारे में बातचीत भी कर चुके हैं।

मिस्र के साथ हमारी मित्रता दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। हाल में ही मिस्र के राष्ट्रपति जनरल नजीब ने पं० नेहरू को पूर्व के महान नेता करके सम्बोधित किया है। दोनों नेताओं ने पारस्परिक प्रेम तथा आदर का प्रदर्शन भी किया। रा० सं० में भारतीय प्रतिनिधि ने फिलिस्तीन विभाजन का विरोध किया था किन्तु इसके अस्वीकृत

होने से आज अरब और इजराइल का क्रमागत संघर्ष जारी है। यह स्मरण रहे कि भारत ने ही सर्वप्रथम नवीन राष्ट्र इजराइल को मान्यता दी थी। मिस्र में अंग्रेजों के विरुद्ध मुहम्मद नजीब के नेतृत्व में स्वाधीनता संग्राम चल रहा है और भारत उससे सहानुभूति कर रहा है। ट्यूनीसिया तथा मोरोको, की स्वतन्त्रता के लिए भारत ने रा० स० के सप्तम अधिवेशन में एक प्रस्ताव रखा था परन्तु वोट की कमी से यह प्रस्ताव ठुकरा दिया गया। भारत के प्रतिनिधि (श्री सेन) के नेतृत्व में सूडान में संसदीय चुनाव के लिये पूर्ण प्रबन्ध किया जा रहा है।

मंतव्य—श्री अशोक मेहता ने हमारी विदेश नीति की समालोचना करते हुए कहा है कि "नेहरू जी की विदेश नीति दुर्बल गृह नीति, असंतुलित तथा पूंजीवादी सिद्धान्तों पर आधारित है। जनता पार्टी और सरकार का इस नीति में, पूर्ण सहयोग का अभाव है। हिन्द-चीन में भारत सरकार न तो बाओदाई और न ही चीनमिन्ह को मान्यता देती है।" इसका उत्तर देते हुए श्री मोहनलाल गौतम ने कहा है कि "पिछले कई वर्षों में एक ओर आंग्ल-अमरीकी गुट दूसरी ओर सोवियत साम्यवादी गुट के बीच से भारत सम्मान तथा सफलतापूर्वक एक स्वतंत्र शान्ति का आन्दोलन कर रहा है। वास्तव में भारत धीरे धीरे एक तृतीय विश्व शक्ति में परिणत हो रहा है।" भारी संघर्ष के बाद देश आजाद हुआ है और क्रांति काल की भांति शान्ति काल की जिम्मेवारी भी नेहरू जी के कंधों पर पड़ी है। यह कम गौरव की बात नहीं है कि भूतपूर्व ब्रिटिश स्वास्थ्य मंत्री बेवन ने हाल ही में कहा था कि "नेहरू समग्र विश्व के लिये एशिया की प्रकृत आवाज है जो मानव के वर्तमान संकट में ज्ञान, सभ्यता और संस्कृति का आलोक प्रदान करती है।" संसार में भारत की प्रतिष्ठा और गौरव विदेश नीति के कारण है और यह कहना अत्युक्ति न होगी कि भारत की विदेश नीति पं० नेहरू के कारण ही प्रभाशाली है। साम्यवादी चीन के नेता माओ ने सत्य ही कहा था कि "निष्पक्षता नीति एक सामयिक आवरण मात्र है।"

अस्वीकार कर दिया। (पृष्ठ १७७ देखिए)। नेहरू जी ने एक पत्र-कार सम्मेलन में बोलते हुए यह स्पष्ट कर दिया कि "भारत सुरक्षा परिषद द्वारा थोपे गए काश्मीर सम्बन्धी सुझाव को किसी हालत में स्वीकार नहीं करेगा क्योंकि इसमें पाकिस्तान के साथ खुल्लम खुल्ला पक्षपात किया गया है।" युद्ध विराम रेखा के पाकिस्तानी अधिकृत प्रदेशों की ओर छः हजार सशस्त्र सेना रखना निष्पक्ष और स्वतन्त्र जनमत गणना के विरुद्ध है। इसलिए काश्मीर वार्ता पहले जैसी विकट हो गई है और आगे के लिए बातचीत के द्वार एक प्रकार से बन्द हो गए हैं। हाल ही में काश्मीर में परिषद के आन्दोलन ने हमारे अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध को ठेस पहुँचाई है और समस्याओं को अधिक जटिल बना दिया है। भारत व पाकिस्तान के मध्य चार वर्ष से चले आ रहे सिंचाई के लिए नहर के पानी का झगडा अप्रैल १९५२ में विश्व बैंक की मध्यस्थता से समाप्त हो गया है। गत १५ अक्टूबर १९५२ से भारत और पाकिस्तान में आने-जाने वालों के लिए पार-पत्र (पास पोर्ट) का प्रयोग अनिवार्य हो गया किन्तु १९५३ के मध्य भाग में पुनः दोनों राष्ट्रों के बीच मैत्री स्थापित हो रही है। भारत से काबुल जाने वाले विमानों को कराची तथा लाहौर में प्रवेश के लिए अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक उड्डयन संस्थाओं की मध्यस्थता से २५ मील चौड़े दो गलियारे दिये गये हैं। मार्च १९५३ में पाकिस्तान से एक व्यापारिक समझौता हो गया जिसके अनुसार पाकिस्तान ने पटसन पर शुल्क (लाइसैन्स) और निर्यात कर हटाना स्वीकार कर लिया है तथा भारत ने पाकिस्तान को १८ हजार टन कोयला प्रति माह देना स्वीकार कर लिया है। भारत ने जूट-कोयला समझौता करके पकिस्तान के प्रति सद्भावना प्रकट की है यद्यपि उसे ऐसा करने में लाभ से अधिक हानि ही हुई है।

पाकिस्तान ने भूपत डाकू को भारत को सौंपने तथा पश्चिमी पाकिस्तान स्थित निष्क्रान्त सम्पत्ति का मुआवजा उत्थापितों को